मानव एवं आर्थिक भूगोल

संपादक-मंडल

प्रो० मुनीस रज़ा (अध्यक्ष)

प्रो० सी० डी० देशपाण्डे

प्रो० सत्येश चक्रवर्ती

प्रो० एन० अनन्तपद्मनाभन

प्रो० भा० स० पारख (संयोजक)

मानव एवं आर्थिक भूगोल

कक्षा XII के लिए पाठ्यपुस्तक

माजिद हुसैन

विद्ययाऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अप्रैल 1978 : चैत्र 1900
पुनर्मुद्रण
मई 1981 : वैशाख 1903
मार्च 1983 : फाल्गुन 1904

P.D. 5T – D.P.S.

मूल्य : रु० 4.90

प्रकाशन विभाग में श्री विनोद कुमार पंडित, सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा एलाइड पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, ए-104 मायापुरी फेज़ II, नई दिल्ली 110064 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

यह पुस्तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षाओं के लिए निर्मित पाठ्यक्रम में दिए गए दृष्टिकोण पर आधारित है।

प्रोफेसर मुनीस रज़ा की अध्यक्षता में माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए भूगोल विषयक एक सम्पादक-मण्डल की स्थापना की गई। सम्पादक-मण्डल ने पर्याप्त समय लगाकर नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षाओं के लिए भूगोल के पाठ्यक्रम को विकसित किया। तत्पश्चात् इस पाठ्यक्रम पर आधारित विभिन्न पुस्तकों की पाण्डुलिपियां तैयार की गईं।

प्रस्तुत पुस्तक "मानव एवं आर्थिक भूगोल" बारहवीं कक्षा के लिए निर्मित दो पाठ्यपुस्तकों में से एक है। इस स्तर पर हमारा यह प्रयास रहा है कि पाठ्यक्रम को अधिकाधिक विकसित किया जाए जिससे वह व्यावहारिक तथा समस्या-मूलक सिद्ध हो सके। आगे चलकर आधार रूप में यह उन विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी हो सके जो विभिन्न महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों अथवा व्यावसायिक संस्थानों में उच्च शिक्षा के लिए जाएंगे।

हम प्रो० मुनीस रज़ा तथा उनके संपादन-मंडल के सहयोगियों के प्रति आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने इन पुस्तकों के पाठ्यक्रम तथा पाण्डुलिपियों को तैयार करने में सहायता दी। हम श्री माज़िद हुसैन के प्रति आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को तैयार करने में अथक परिश्रम किया। इस पुस्तक के मानचित्र श्री पुरुषोत्तम द्वारा तैयार किए गए हैं। हम श्री डी० एस० यादव को भी धन्यवाद देते हैं जिन्होंने अल्पकाल में इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद किया।

पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तक निर्माण के लिए पर्याप्त कुशलता एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। पुस्तक के निर्माण में सुनिश्चित योजना, अनुवेक्षण तथा पुनर्विलोकन अनिवार्य है। अन्त में मुद्रण के समय भी काफी ध्यान देना पड़ता है। इन सबके लिए मैं सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के अपने सहयोगियों, विशेष रूप से प्रो० भा० स० पारख, डा० के० एल० जोशी तथा श्रीमती सविता सिन्हा का आभारी हूं। वास्तव में डा० के० एल० जोशी एवं श्रीमती सविता सिन्हा की संलग्नशीलता और श्रम के फलस्वरूप ही पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका। पाठ्यक्रम तथा पाठ्य-सामग्री का विकास एक निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है, अतः शिक्षकों द्वारा सुझावों का सहर्ष स्वागत है तथा इन सुझावों का इस पुस्तक के संशोधित संस्करण में उपयोग भी करेंगे।

शिव के० मित्र
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्

अप्रैल, 1978
नई दिल्ली

प्रस्तावना

नई शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत 10+2 स्तर, पाठ्यक्रम की कार्य-शृंखला में एक आवश्यक कड़ी है। इसके द्वारा यह अभीष्ट है कि विद्यालय में, पहले दस वर्षों में प्राप्त सामान्य शिक्षा की नींव पर आधारित शिक्षा के अनुसार विद्यार्थी ज्ञान की किसी एक शाखा में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर सके। तदनुसार यह आवश्यक है कि इस निर्णायक स्तर पर विद्यार्थियों के भूगोल के ज्ञान को विस्तृत तथा सुदृढ़ किया जाए जिससे जो विद्यार्थी इस विषय को वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ना चाहते हैं, उनमें इसके प्रति गहरी बौद्धिक रुचि का विकास हो सके जो उनके दैनिक जीवन में तथा विशेषज्ञता के क्षेत्र में सहायक हो सके। इसके अतिरिक्त भूगोल एक ऐसा विषय है जो अन्य विषयों, विशेषत: प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में वनस्पति शास्त्र तथा प्राणी शास्त्र और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में अर्थ विज्ञान, राजनीति विज्ञान, समाज शास्त्र सदृश अन्य विषयों के अध्ययन में सहायक होता है।

इसी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए संपादक-मंडल ने अनेक शिक्षकों तथा विभिन्न संस्थानों, जिनकी रुचि भूगोल-शिक्षण में सुधार लाने में थी, के सहयोग से, विभिन्न स्तरों के लिए सम्बद्ध रूप में पाठ्यक्रम की एक रूपरेखा तैयार की है। इसमें दो सत्रों (अर्द्धवर्षीय) के लिए क्रमबद्ध भूगोल तथा शेष दो सत्रों के लिए भारत के प्रादेशिक भूगोल के शिक्षण की योजना बनाई गई है।

भौतिक भूगोल की पुस्तक ग्यारहवीं कक्षा के लिए है जिसके पहले दो अध्याय विषय के रूप में भूगोल की प्रकृति एवं क्षेत्र से तथा ज्ञान-जगत में इसके स्थान से सम्बन्धित हैं। वास्तव में ये दो अध्याय चार सत्रों में विभक्त पूरे पाठ्यविषय की भूमिका है।

प्रस्तुत पुस्तक "मानव एवं आर्थिक भूगोल" कक्षा बारहवीं के लिए बनाई गई दो पुस्तकों में से एक है। इन दो खण्डों में जिन सिद्धान्तों के समन्वय पर विचार किया गया है, उनका व्यावहारिक रूप में विवेचन अन्य दो खण्डों में किया गया है। यथा (1) भारत—सामान्य भूगोल (2) भारत—प्रादेशिक भूगोल। भारत तथा उसके प्रादेशिक भूगोल के महत्व स्वत: ही स्पष्ट हैं।

संपादक-मंडल का यह विचार है कि प्रयोगशाला एवं क्षेत्रों के व्यावहारिक पक्ष का अध्ययन उतना ही आवश्यक है जितना कि सैद्धान्तिक पक्ष। अत: इन दोनों के अध्ययन के अभाव में भूगोल का अध्ययन तथा उसकी प्रकृति एवं कार्य का अनुमूल्यन अपूर्ण रह जाएगा। अत: इस पाठ्य-विषय में पर्याप्त क्षेत्रीय-कार्य एवं व्यावहारिक कार्य को स्थान दिया गया है और इसी शृंखला में एक अन्य पुस्तक 'भूगोल में क्षेत्रीय कार्य एवं प्रयोगशाला प्रविधियां' का निर्माण किया गया है।

इसके अतिरिक्त कक्षा 11 और 12 के लिए 'भूगोल-अभ्यास पुस्तिका' संपादक-मण्डल द्वारा निर्मित पाठमाला की एक दूसरी पुस्तक है। इस प्रयास को शिक्षकों द्वारा व्यापक रूप में प्रशंसा प्राप्त हुई है।

हम श्री माजिद हुसैन के आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक का प्रणयन किया। हम श्री डी० एस० यादव के भी

कृतज्ञ हैं जिन्होंने अल्प समय में इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद किया। इस पुस्तक के मानचित्र तथा आरेख पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ के श्री पुरुषोत्तम द्वारा बनाए गए हैं। इस कार्य के लिए हम उनके भी कृतज्ञ हैं। मैं राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के डा० के० एल० जोशी एवं श्रीमती सविता सिन्हा का विशेष आभार प्रकट करता हूं जिन्होंने प्रारंभ से अन्त तक इस पुस्तक को प्रकाशन के योग्य बनाया। उनके निष्ठापूर्ण एवं संलग्नशील कार्य के बिना इस पुस्तक का प्रकाशित होना संभव न था।

पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों का निर्माण एक निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है, अतः अनुभवी शिक्षकों के सुझावों का सहर्ष स्वागत है। इस पुस्तक का नया संस्करण तैयार करने में उन सुझावों का उपयोग किया जाएगा।

अप्रैल, 1978
नई दिल्ली

मुनीस रज़ा
अध्यक्ष
भूगोल संपादक-मंडल

विषय-सूची

मानचित्रों एवं आरेखों की सूची

तालिकाओं की सूची

अध्याय 1

पृथ्वी के प्रमुख साधन

साधन प्रकृति द्वारा प्रदान की गई अथवा मानव निर्मित वह सम्पदा है जिसके उपयोग से मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है। जल, वायु, सूर्य का प्रकाश, भूमि, मृदा, वन, वन्यप्राणी, मछलियां, खनिज एवं शक्ति के साधन प्रकृति द्वारा प्रदान किए ऐसे उपहार हैं जो मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं और इसीलिए इन्हें साधन अथवा संपदा कहा जाता है। प्रागैतिहासिक मानव को पृथ्वी के गर्भ में छिपी विशाल खनिज संपदा का ज्ञान नहीं था। वह इसके उपयोग से अनभिज्ञ था। अतः खनिज उसके लिए साधन नहीं थे और न ही वे उसके जीवन को प्रभावित करते थे। जब तक किसी साधन को ढूंढ कर उपयोग नहीं किया जाता, मानव के लिए उसका कोई महत्व नहीं होता। मनुष्य ने पालदार जहाज जब तक नहीं बनाए और बाद में पवन चक्कियों का निर्माण नहीं किया, उसके लिए तब तक पवन की उपयोगिता बहुत ही कम थी। जल प्रपातों का उपयोग प्राचीनकाल से आरा-मिलों के पहियों को चलाने में हो रहा है। परन्तु जब से उनका प्रयोग जल-विद्युत के निर्माण में होने लगा, जल-प्रपातों की उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ गई है। यूरेनियम का अभी हाल तक मानव के लिए कोई महत्व नहीं था परंतु अब वह परमाणु-ऊर्जा का अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है। मानव के लिए कोई भी साधन कहां तक उपयोगी है, यह उसकी बुद्धिमत्ता एवं उसके वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के स्तर पर निर्भर करता है। मानव की इच्छा-पूर्ति जिन साधनों द्वारा होती है उनका विकास प्रकृति, मानव और उसकी संस्कृति के बीच लगातार होने वाली क्रियाओं एवं अंतःक्रियाओं के परिणामस्वरूप होता है। लेकिन मानव की इच्छाएं दिन पर दिन बढ़ती जा रही हैं। अतः वह नये-नये साधनों को खोजता रहता है और अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधनों के सर्वोत्तम उपयोग की जानकारी प्राप्त करता रहता है।

साधनों की परिवर्तित संकलपना

'प्राकृतिक संपदा' शब्द का अर्थ मानव की विश्व के साथ विभिन्न प्रकार के बढ़ते हुए संबंधों की जानकारी के परिणामस्वरूप समयानुसार बदलता रहा है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में प्राकृतिक संपदा का अर्थ उन प्राथमिक वस्तुओं से लिया जाता था जिनसे मानव के लिए विभिन्न पकार की उपयोगी वस्तुएं प्राप्त की जाती

थीं। वे वातावरण में उपस्थित वह कच्चा माल समझा जाता था जिसे मनुष्य उपयोगी वस्तुएं बनाने के लिए उपयोग करता था, उदाहरणार्थ खनिज और ईंधन, वन एवं चरागाह, वन्यप्राणी, मछलियां आदि। अब प्राकृतिक संपदा के अन्तर्गत संपूर्ण वातावरण लिया जाता है अर्थात पृथ्वी की संपूर्ण सतह, प्राकृतिक संपदा का अंग मानी जाती है क्योंकि इसके प्रत्येक भाग का मानव के लिए कुछ न कुछ उपयोग अवश्य होता है और इसी पर मनुष्य अपने लिए विभिन्न प्रकार की उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करता है। इस दृष्टिकोण से वायुमंडल, समुद्र तथा पृथ्वी के धरातल के विभिन्न क्षेत्रों एवं उनके गर्भ में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की जैवीय एवं अजैवीय वस्तुओं को प्राकृतिक संपदा का बहुमूल्य अंग माना जाता है। इन सभी साधनों का प्रबंध एवं उपयोग बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए जिससे उनके द्वारा विभिन्न प्रकार की आवश्यकता की वस्तुएं प्राप्त करने के साथ उन्हें आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जा सके।

साधनों का वर्गीकरण

जिस वातावरण में हम रहते हैं उसमें अनेक प्रकार के प्राकृतिक साधनों का भंडार है। इन साधनों की सुव्यवस्थित जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्हें कई श्रेणियों में बांटा जाता है। (1) जीवीय और आजीवीय साधन, (2) समाप्त और असमाप्त होने वाले साधन, (3) संभाव्य और विकसित साधन, (4) कच्चा माल और ऊर्जा के साधन, (5) कृषि और पशुचारणिक साधन तथा (6) खनिज और औद्योगिक साधन।

जीवीय और आजीवीय साधन

साधनों के वर्गीकरण में परंपरागत तरीका उन्हें जीवीय और आजीवीय साधनों में बांटा जाना है।

जीवीय साधन : जीवीय प्राकृतिक साधनों को बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। वन और उनसे प्राप्त विभिन्न उत्पाद, कृषि से संबंधित विभिन्न फसलें, पशुओं का चारा, वन्य एंव पालतू पशु-पक्षी, सरीसृप एंव मछलियां सभी जीवीय साधन के अंतर्गत आते है। इन सभी को जब तक वातावरण की अनुकूल दशाएं एवं पर्याप्त बीज स्रोत मिलते रहते है उनका पुनरुत्पादन और पुनर्जन्म होता रहता है। इसलिए सभी जीवीय साधन नवीकृत होते रहते हैं। जीवीय साधनों का नवीकरण उनकी जाति और क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग होता है। बारहमासी पौधों एवं वृक्षों की नवीकरण-अवधि बहुत छोटी होती है। मेपिल वृक्ष जिसे कश्मीर घाटी में चिनार कहते हैं, की नवीकरण अवधि बहुत लंबी होती है। इसलिए इनको सुरक्षित रखने के लिए सरकार ने चिनार वृक्ष के काटने पर प्रतिबंध लगा दिया है। बहुत से जानवरों की जातियां भी विलुप्त हो रही हैं। उदाहरणार्थ शेर और चीता समाप्त हो रहे है। अत: उनका संरक्षण अति आवश्यक है। हमें इनका शिकार नहीं करना चाहिए।

आजीवीय साधन : आजीवीय साधन के अंतर्गत बेजान वस्तुएं आती हैं। सामान्यत: ये वे साधन हैं जिनका नवीकरण नही हो सकता। खनिज एवं जीवाश्म-ईंधन जैसे कोयला पैट्रोलियम और प्राकृतिक गैस आजीवीय साधनों के उदाहरण हैं, जिनका सम्भवत: न्यूनतम नवीकरण होता है। यह साधन प्रयोग से समाप्त हो जाते हैं और उनके पुन: बनने की प्रक्रिया अत्यन्त धीमी होती है। सभी खनिज पदार्थ आजीवीय साधन हैं और उनका नवीकरण नहीं हो सकता। कुछ आजीवीय खनिज जैसे लोहा और अल्युमीनियम का धरातल पर बहुत ही विस्तृत वितरण है। इसके दूसरी ओर सोना, चांदी, प्लेटीनम आदि कुछ ऐसे खनिज हैं जिनका भंडार अत्यन्त सीमित है। आजीवीय साधनों जैसे शैलों और खनिजों की उपयोगिता उनके संकेंद्रण और उन तक पहुंचने की सुगमता पर निर्भर करती है। आजीवीय साधनों को एक बार प्रयोग करने के बाद फिर से नहीं बनाया जा सकता अत: वे समाप्त होने वाले साधन कहलाते हैं। कर्नाटक राज्य की कोलार की खानों में अब सोने के भंडार लगभग समाप्ति पर हैं और इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका की मसाबी श्रेणी की लोहे की खानें। ये लोहे के भंडार लगभग समाप्त हो चुके हैं।

कुछ आजीवीय साधनों का नवीकरण होता रहता है

उदाहरणार्थ मैंगनीज के भंडार धरातल पर सीमित है परन्तु वह ग्रन्थिकाओं के रूप में समुद्र के पेंदें पर निर्मित होता रहता है। इसी प्रकार कोबाल्टर, निकिल और तांबे की ग्रंथिकाएं भी समुद्री पेंदें पर बनती रहती है। मैंगनीज, कोबाल्ट, निकिल और तांबे की ग्रंथिकाएं भी समुद्री जल से रासायनिक अवश्लेपण द्वारा जिस गति से बनती हैं उनके प्रयोग करने की गति उससे कहीं अधिक है। यद्यपि इन खनिजों को समुद्री जल से निकालने की हमारी तकनीकी जानकारी बहुत कम है फिर भी इस दिशा में निरंतर अनुसंधान हो रहे हैं और अब वह दिन दूर नहीं जब समुद्री पेंदें पर खनन क्रिया के विकास के परिणामस्वरूप हम उन खनिजों को आसानी से प्राप्त कर सकेंगे।

समाप्त और असमाप्त होने वाले साधन

समाप्त होने वाले साधन : धातुएं और विभिन्न प्रकार के खनिज जिन्हें हम पृथ्वी से प्राप्त करते है, सभी समाप्त होने वाले साधनों की श्रेणी में आते है। जब एक बार इन खनिजों को भूमि के अन्दर से निकाल लिया जाता है तो उनकी दुबारा पूर्ति नहीं हो सकती। खनन द्वारा पृथ्वी से प्राप्त की जाने वाली सभी अजीवीय वस्तुएं जिनसे हम अपनी इच्छापूर्ति करते हैं, समाप्त होने वाले साधन कहलाते हैं। कोयला, पैट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, लोह-अयस्क, तांबा, अल्युमिनियम, बाकसाईट, यूरेनियम, थोरियम और गंधक आदि समाप्त होने वाले साधनों के उदाहरण हैं। किसी भी खनिज के लगातार खनन किए जाने के परिणामस्वरूप वह कभी न कभी समाप्त हो जाता है और इसीलिए खनन उद्योग को "लुटेरा उद्योग" कहते है। मनुष्य चाहे कितनी भी आधुनिकतम तकनीक खनिजों को निकालने के लिए लगाए और उसके कण-कण को उपयोग में लाए परन्तु वह उन्हें एक बार प्रयोग करने के बाद फिर से नहीं बना सकता। भू-वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा खनिजों के निर्माण की गति इतनी धीमी होती है कि उसमें करोड़ों वर्षों में कोई खनिज बन पाता है। अत: इस प्रकार उनके निर्माण और उनके खनन में कोई संबंध नहीं है। अत: हम कह सकते हैं कि खनिज ऐसी समाप्त होने वाली संपदा है जिसका उपयोग मनुष्य को बड़ी सावधानी से करना चाहिए।

जीवाश्म-ईंधन अर्थात् कोयला, पैट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस वे जैवीय पदार्थ हैं जो पृथ्वी के गर्भ में होने वाली भौतिक एवं रासायनिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप अपने असली रूप से बदलकर ठोस (कोयला), द्रव (पैट्रोलियम) तथा गैस (प्राकृतिक गैस) का रूप धारण करते हैं। यदि इन पदार्थों को ईंधन के रूप में प्रयोग करके बिल्कुल जला दिया जाए तो वे फिर से नहीं बन सकते। अत: इन खनिजों को जल्दी समाप्त होने वाले साधन कहा जाता है।

हमारी वर्तमान जानकारी के आधार पर ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भूपर्पटी में जीवाश्म-ईंधन का भंडार इतना है कि वह वर्तमान प्रयोग करने की गति के आधार पर सन् 2070 तक समाप्त हो जाएगा। यद्यपि कोयले के हमारे भंडार कहीं अधिक हैं लेकिन उसके इस्तेमाल की दर इतनी तेज है कि वे भी कुछ शताब्दियों से अधिक नहीं चल सकते। परमाणु ईंधन भी जब उनसे तापीय ऊर्जा निर्मित की जाती है तो समाप्त हो जाते हैं। यूरेनियम और थोरियम के भंडार अपेक्षाकृत बहुत अधिक हैं लेकिन वे भी समाप्त होने वाले और अनवीकरण साधन हैं।

धात्विक खनिज जैसे लोहा, तांबा, सीसा, जस्ता, टिन, अल्युमिनियम, चांदी, सोना, ऐंटीमनी, प्लैटीनम, निकिल, मैंगनीज, कोबाल्ट, यूरेनियम, थोरियम एवं टिटेनियम तथा अधात्विक खनिज जैसे अभ्रक, ग्रेफाइट, एसबैसटास, गंधक, फासफेट, जिप्सम और पोटाश आदि के निक्षेप निश्चित मात्रा में हैं और उन्हें न बढ़ाया जा सकता है और न प्रयोग करने के बाद पुन: निर्मित किया जा सकता है। वास्तव में खनिज निक्षेपों के ज्ञात भंडारों को हम इतनी तीव्र गति से प्रयोग कर रहे हैं कि भविष्य में उनकी कमी के कारण हमारी सभ्यता के विघटन का खतरा पैदा हो गया है। यह खतरा तब तक बना रहेगा जब तक हम अपनी खोजों द्वारा उनके नये-नये भंडारों को नहीं ढूंढ निकालते। यूरोप और अमेरिका के विकसित देशों में खनिजों की कमी अब बहुत अधिक महसूस की जाने लगी है। भारत समाप्त होने वाले साधनों में अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति में है। अत: हमें इनका उपयोग

बड़ी मितव्यता और बुद्धिमानी से करना चाहिए जिससे आगे आने वाली पीढ़ियां भी उनसे पर्याप्त लाभ उठा सकें।

असमाप्त होने वाले साधन : साधन जिनका नवीकरण और पुन: उत्पादन भौतिक, यांत्रिक अथवा रासायनिक क्रियाओं द्वारा किया जा सकता है उन्हें असमाप्त होने वाले साधन कहते है। सूर्य-ऊर्जा, वायु, जल, वन्य-प्राणी, वन तथा मनुष्य असमाप्त होने वाले साधनों के उदाहरण हैं।

सूर्य-ऊर्जा चिरस्थाई साधन है और इसका उपयोग मानव अनादि काल से करता आ रहा है और भविष्य में भी करता रहेगा, परन्तु यह कभी भी समाप्त नहीं होगा। किसी स्थान पर सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा की मात्रा उस स्थान की स्थिति उच्चावच एवं वायुमंडल की दशाओं पर निर्भर करती है।

वायु भी मानव के लिए प्रकृति द्वारा प्रदान किया चिरस्थाई उपहार है। यह पेड़-पौधों और विभिन्न प्रकार के प्राणियों के लिए अति आवश्यक है। मानव अपनी क्रिया-कलापों से वायु के संगठन में कहीं-कहीं परिवर्तन ला रहा है जिससे उसके जीवन को खतरा पैदा हो गया है। पृथ्वी पर जीवन के भली प्रकार फलने-फूलने के लिए आवश्यक है कि वायु-मंडल के विभिन्न अवयवों जैसे नाईट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बनडाईऑक्साइड, जल-वाष्प तथा अन्य गैसों के बीच सही संतुलन बना रहना चाहिए।

जल भी असमाप्त होने वाला साधन है क्योंकि पृथ्वी की सतह एवं वायुमंडल मे जितना जल है उस पर मानव की क्रियाओं का बहुत कम प्रभाव पड़ता है। मानव द्वारा प्रयोग किए जाने पर जल समाप्त नहीं होता यद्यपि वह कुछ समय के लिए रासायनिक रूप में अन्य पदार्थों से मिला रह सकता है। पृथ्वी पर जो जल वर्षा के रूप में आता है वह नदियों और सरिताओं के रूप में बहकर समुद्रों और झीलों में चला जाता है। जल समुद्र से वाष्पित होकर वायुमंडल में घनीभूत होता है। यह घनीभूत जल वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरकर, नदियों द्वारा बहकर फिर से समुद्र में पहुंचता है। इस क्रिया को जल-चक्र कहते हैं। जल का यह नवीकरण चक्र इस बात का द्योतक है कि किसी स्थान पर मानव को उपयोग के लिए कितना जल उपलब्ध है। यद्यपि वायु और जल मानव के लिए असीम साधन हैं परन्तु मानव अपनी विभिन्न क्रियाओं द्वारा इन्हें प्रदूषित कर रहा है। औद्योगिक नगरों और बड़े-बड़े शहरी क्षेत्रों में यह प्रदूषण और भी अधिक है। अत: हमें इससे सदैव सावधान रहना चाहिए। यदि मानव को प्रकृति द्वारा नि:शुल्क दी गयी इस विशाल संपदा का निरन्तर प्रयोग करना है तो वह उसे प्रदूषण से बचाए।

सम्भाव्य और विकसित साधन

किसी देश में उपलब्ध सभी जलशक्ति के साधन जिनसे जल-विद्युत निर्माण की जा सकती है, संभाव्य जल-शक्ति के साधन कहलाते है। इसके विपरीत जिन जल-शक्ति साधनों से वास्तविक रूप में जल-विद्युत पैदा की जा रही हैं उन्हें विकसित साधन कहते हैं। नदियों और सरिताओं एवं हिमानियों से पिघलकर बहते हुए जल से जल-विद्युत निर्माण की जाती है। किसी स्थान पर जल-विद्युत का विकास कई कारकों पर निर्भर करता है। इनमें से प्रमुख हैं : पर्वतीय स्थलाकृति, पर्याप्त एवं वर्ष-भर सुवितरित वर्षा, नदी में जल के बहाव की गति एवं उसमें जल की मात्रा, बांध एवं बिजलीघर बनाने के लिए अनुकूल स्थिति, बिजली के उपभोग के लिए बाजार एवं उद्योग तथा किसी कारण जलाशय अथवा नदी में जल की कमी हो जाने के परिणामस्वरूप विद्युत निर्माण के लिए वैकल्पिक साधन आदि। संसार के अधिकांश देशों विशेषतया विकासशील देशों में उनके संभाव्य साधनों का बहुत कम विकास हो पाया है।

जलशक्ति के संभाव्य साधनों का संसार में बहुत ही असमान वितरण है। कुछ देश जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विटजरलैंड, जापान आदि देशों में संभाव्य साधन विशाल हैं। इसके विपरीत यूनाइटेड किंगडम, नीदरलैंड, पाकिस्तान, बंगलादेश आदि देशों में यह साधन बहुत ही सीमित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ देशों में थोड़े बहुत संभाव्य साधन उपलब्ध होने पर वे जल-विद्युत का विकास नहीं करते क्योंकि उनके पास विद्युत बनाने के अन्य सस्ते साधन होते हैं। अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका के बहुत से

देशों तथा सोवियत संघ के एशियाई भाग में जलशक्ति के विशाल संभाव्य साधन होने पर भी इन क्षेत्रों में जनसंख्या के बहुत ही कम होने और बाजार की कमी के कारण इन साधनों का बहुत ही कम विकास हो पाया है।

संसार में उपलब्ध संभाव्य जल-विद्युत के साधनों के अनुमानित भंडारों का केवल पांचवां भाग ही विकसित हो पाया है। यह विकास मुख्यतः यूरोप और अमेरिका के देशों में हुआ है जहां संसार की कुल विकसित जल-विद्युत का 40% है, यद्यपि इन देशों में संसार की कुल संभाव्य जल-विद्युत का केवल 15% ही उपलब्ध है। दी गई तालिका में विभिन्न महाद्वीपों में संभाव्य एवं विकसित जल-विद्युत के सन् 1970 के आंकड़े प्रतिशत में दिए गए हैं।

जल-विद्युत के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका सबसे आगे है। यह अकेले संसार की कुल विकसित जल-विद्युत का 23% उत्पादन करता है। इसके बाद कनाडा का स्थान है। जिसकी उत्पादन क्षमता 15% है। उत्पादन क्रम की दृष्टि से सोवियत संघ, जापान, इटली, फ्रांस, स्वीडन, नार्वे और स्वीटजरलैंड का स्थान आता है। इन सभी देशों की सम्मिलित उत्पादन क्षमता लगभग 43% है। शेष संसार की उत्पादन क्षमता 19% है। उष्ण कटिबंधीय एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका के बहुत बड़े भागों में संभाव्य जल-विद्युत की सर्वोत्तम दिशाएं उपलब्ध होने पर भी इनमें जल-विद्युत का विकास बहुत ही कम हो पाया है। यद्यपि इन क्षेत्रों में संसार की कुछ सबसे बड़ी जल-विद्युत परियोजनाएं विद्यमान हैं। इन क्षेत्रों में विशाल संभाव्य जलशक्ति संपदा के विकास न हो सकने के दो प्रमुख कारण हैं—पूंजी और औद्योगिक विकास का अभाव यूरोप महाद्वीप के देशों में औद्योगिक विकास के लिए विद्युत की बहुत अधिक मांग जलविद्युत विकास का मुख्य कारण है।

संसार की कुछ बड़ी-बड़ी जल-विद्युत परियोजनाएं ये हैं—संयुक्त राज्य अमेरिका में टी. बी. ए. (टेनेसी

तालिका-1

महाद्वीपों में सम्भाव्य और विकसित जल-विद्युत

(संसार के कुल योग का प्रतिशत)

महाद्वीप	संभाव्य जलशक्ति	विकसित जलशक्ति
उत्तरी अमेरिका	8.9	38.6
यूरोप	6.0	34.7
एशिया (सोवियत संघ को छोड़कर)	23.4	10.7
सोवियत-संघ	16.8	9.5
दक्षिणी अमेरिका	16.9	3.6
ओशेनिया	4.9	1.8
अफ्रीका	23.1	1.1
योग	**100.00**	**100.00**

वैली एथोरिटी), संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा की सीमा पर न्यागरा परियोजना, सोवियत संघ में वोल्गा, डैन तथा नीपर नदियों की सम्मिलित परियोजना, अफ्रीका की जैम्बैज़ी नदी पर बना करीबा बांध, भारत की दामोदर घाटी, भाखड़ा-नांगल, हीराकुंड और कोयना परियोजनाएं, दक्षिण-पूर्व एशिया में मीकौंग-नदी योजना तथा मिश्र में नील नदी पर बना अस्वान बांध संसार की कुछ प्रमुख जल-विद्युत परियोजनाएं हैं।

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत कई बहु-उद्देशीय परियोजनाओं का विकास किया गया है। कई नदियों पर बड़े-बड़े बांध बनाए गए हैं। इनमें से प्रमुख बांध सतलुज, गंगा, यमुना, कोसी, दामोदर, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी एवं दक्षिण भारत में कई अन्य द्रुतगामी नदियों पर बनाए गए हैं। भारत में वर्षा के असमान वितरण, लम्बे समय तक शुष्क मौसम के होने और समय-समय पर नदियों में भयंकर बाढ़ आने के परिणामस्वरूप यह आवश्यक हो गया है कि जल के समुचित प्रबंध, उसके संचय करने एवं उसके सिंचाई के लिए उपयोग करने हेतु, नदियों पर बड़े-बड़े बांधों का निर्माण किया जाए। हिमालय के क्षेत्र में पर्वतीय स्थलाकृति का होना एवं वहां नदियों में साल-भर पानी बहना, तथा उत्तरी भारत के मैदानों की घनी आबादी जहां बिजली की निरंतर मांग रहती है, आदि कुछ ऐसे अनुकूल कारक हैं जो उत्तर भारत में विशाल जल-विद्युत परियोजनाओं के विकास में समुचित योगदान दिया है। अब भी उत्तर भारत में कई ऐसी नदियां हैं जो प्रलयकारी बाढ़ के कारण जन, धन को अपार हानि पहुंचाती है। अतः इन पर भी बांध बनाकर इन नदियों का नियत्रण करना और जल-विद्युत निर्माण बहुत आवश्यक है। इस तरह हम कह सकते हैं कि जल-विद्युत के विकास के क्षेत्र में भारत का, विशेषतः उत्तरी भारत का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है।

कच्चे माल और ऊर्जा के साधन

कच्चा माल : किसी उद्योग के लिए कच्चे माल का उपलब्ध होना अति आवश्यक है। आदिम जातियों में भी उद्योग धंधे उन्हीं स्थानों पर चलाए जाते थे जहां कच्चे माल प्राप्त होते थे। आदि मानव अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए प्राकृतिक साधनों पर निर्भर करता था। वे जो कुछ भी उपयोगी वस्तुएं अपने लिए बनाते थे उनके लिए प्रकृति द्वारा प्रदान किए साधन ही मुख्यतः कच्चा माल का काम करते थे। इस बात के बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि आदिम जातियों में जिसके पास जितना अधिक कच्चा माल होता था वह उतना ही अधिक धनी समझा जाता था। आधुनिक काल में भी कच्चे माल पर अधिकार औद्योगिक विकास का आधार बनाता है।

मानव विभिन्न प्रकार के प्राथमिक उत्पाद कृषि, वन, मत्स्य, पशु एवं खानों से प्राप्त करता है। यह सभी उत्पाद हमारे उद्योगों के लिए कच्चा माल है। कपास, ऊन, रेशम तथा पटसन के बने वस्त्रों एवं चीनी उद्योगों के लिए हमें कच्चे माल प्राप्त करने हेतु पूर्णतया कृषि उत्पादों पर निर्भर करना होता है। इसी प्रकार कागज, कागज की लुगदी, गोंद, लाख, तारपीन एवं टिम्बर उद्योगों के लिए वनों से प्राप्त उत्पाद कच्चे माल के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। धातुओं को उनके अयस्कों से निकालने संबंधी सभी उद्योग, लोहा, इस्पात उद्योग, मशीनी औजार निर्माण उद्योग, विद्युत, उपस्कर निर्माण उद्योग, रासायनिक उद्योग, विस्फोटक बनाना तथा मोटर कार निर्माण, वायुयान एवं जलयान निर्माण तथा रेल के इंजन निर्माण के सभी उद्योग कच्चे माल के लिए आंशिक अथवा पूर्ण रूप से खनिज पदार्थों पर निर्भर करते हैं। भोजन पदार्थों के संसाधन उद्योग, डिब्बा-बंदी उद्योग और डेरी उद्योग कच्चे माल के लिए कृषि, मुर्गीपालन एवं पशुपालन व्यवसायों और उनसे प्राप्त प्राथमिक उत्पादों पर निर्भर करते हैं। कुछ उद्योग जैसे कृत्रिम रेशों का निर्माण, इत्र तथा सुगंधित तेल बनाना एवं पैट्रो-रसायन आदि उद्योगों के लिए कोयला और पैट्रोलियम कच्चे माल के रूप में प्रयोग किए जाते हैं।

कृषि, वन, मत्स्य, पशु एवं खनिज जैसे कच्चे माल का विश्व वितरण बहुत ही असमान है। कुछ देशों में कच्चा माल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है और कुछ देशों में उसकी नितांत कमी है। जिन देशों में कच्चे माल की कमी है वे अपने उद्योगों के लिए अन्य देशों से कच्चे माल का आयात करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि संसार के विभिन्न

देश, कच्चे माल की पूर्ति के लिए एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

ऊर्जा के साधन : जिन पदार्थों की मदद से शक्ति प्राप्त होती है और जो मशीनों उद्योगों एवं मोटर कारों तथा रेलों को चलाने में शक्ति प्रदान करते हैं वे सब ऊर्जा के साधन कहलाते हैं। आदिमानव शक्ति के लिए अपने शरीर की शक्ति पर पूर्णतया निर्भर करता था। वह अपना अधिकतर काम हाथों से करता था। प्राचीनकाल में बोझा ढोने, पानी लाने या ले जाने और खेतों की जुताई करने के लिए दासों एवं जानवरों का प्रयोग किया जाता था। आधुनिक मशीनों के आविष्कार से नई और अधिक शक्ति प्रदान करने वाली ऊर्जा के साधनों की आवश्यकता हुई। इन मशीनों को चलाने के लिए अधिक शक्तिशाली ऊर्जा के स्रोत जैसे कोयला और पैट्रोलियम चाहिए। वास्तव में सभी आधुनिक उद्योग पूर्णतया कोयला, पैट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, जल-विद्युत, भूताप, परमाणु ईंधन एवं ज्वारीय शक्ति पर निर्भर करते हैं।

आजकल हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी रूप में ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। खाना पकाने, रोशनी करने, मकानों को गर्म रखने, वाहनों को चलाने एवं कारखानों में मशीनों को चलाने के लिए शक्ति की आवश्यकता पड़ती है।

विभिन्न प्रकार के ईंधन जिन्हें हम शक्ति प्राप्त करने के लिए अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते है वे हैं कोयला, पैट्रोलियम तथा बहता हुआ जल। कहीं-कहीं लकड़ी, प्राकृतिक गैस और परमाणु ईंधन से भी शक्ति निर्माण की जाती है। आजकल उद्योगों में तथा परिवहन में पैट्रोलियम की अत्याधिक मांग है। इसे ईंधन के रूप में प्रयोग करने के अतिरिक्त बिजली तैयार करने, मशीनों को चिकनाई प्रदान करने तथा पैट्रोरसायन उद्योग में कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह अनेक प्रकार के घरेलू एवं औद्योगिक कार्यों में प्रयोग किया जाता है। इसीलिए इसे कभी-कभी काला सोना भी कहते है। प्राकृतिक गैस का पृथ्वी से निकालना और उसका घरों तथा उद्योगों में प्रयोग अभी हाल ही से प्रारंभ हुआ है।

प्राकृतिक गैस अधिकतर प्राप्त होने के स्रोत के निकट ही इस्तेमाल की जाती है इसका निर्यात बहुत ही कम है। पाईप-लाइनों की मदद से इसे दूर-दूर तक ले जाया जा सकता है लेकिन पाईप-लाईनों का बनाना और उनका रख-रखाव बहुत ही मंहगा पड़ता है। कृत्रिम रेशे के निर्माण में प्राकृतिक गैस का प्रयोग बहुत ही महत्वपूर्ण है। कांच एवं सीमेंट उद्योगों में भी प्राकृतिक गैस का प्रयोग होता है। यह मोटरकार उद्योग, जलयान निर्माण, वायुयान निर्माण एवं ईधन निर्माण उद्योगों के लिए उपयुक्त नही है।

बिजली का उपयोग दिनों दिन बढ़ रहा है। इसे घरेलू कार्यों एवं उद्योगों में बड़ी आसानी से प्रयोग कर सकते हैं। जो विद्युत कोयला, पैट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस को जलाकर बनाई जाती है उसे तापीय-विद्युत कहते हैं और जो विद्युत बहते हुए जल को टर्बाईन पर गिरा कर बनाई जाती है उसे जल-विद्युत कहते हैं। परमाणु ईंधनों से जो बिजली बनाई जाती है उसे परमाणु ऊर्जा कहते हैं। जो विद्युत बहते हुए जल से बनाई जाती है वही असमाप्त होने वाला साधन है। कोयले एवं पैट्रोलियम के प्रयोग की अपेक्षा बिजली का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक आसान होता है और इसके प्रयोग से गंदगी भी नहीं होती। इसके अतिरिक्त तारों की लाईनों द्वारा दूर-दूर तक इसका संचरण आसान होता है।

परमाणु ऊर्जा यूरेनियम तथा थोरियम से प्राप्त होती है। यह ऊर्जा का आधुनिकतम साधन है। विज्ञान एवं तकनीकी के बढ़ते हुए ज्ञान द्वारा इस ऊर्जा का घरेलू एवं अन्य कार्यों में उपयोग अपेक्षाकृत आसान हो सकेगा। ऊर्जा का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत अंतःभौयताप है। यह मुख्यतः ज्वालामुखी के फटने एवं गर्म जल के स्रोतों एवं गर्म जल के गाईजरों से प्राप्त होती है। आइसलैंड, इटली तथा न्यूजीलैंड में भूतापी ऊर्जा का प्रयोग होता है। जिन क्षेत्रों में यह ऊर्जा उपलब्ध है वहां यह मानव को चिरस्थाई रूप में मिलती रहती है और इसके उपयोग से विद्युत निर्माण करने में वायु प्रदूषण भी नहीं होता। ज्वारीय ऊर्जा यद्यपि बहुत कम देशों में प्रयोग की जाती है फिर भी यह ऊर्जा का चिरस्थाई साधन है। यह आशा की जाती है कि भविष्य में परमाणु ऊर्जा अन्य सभी ऊर्जा के साधनों का स्थान ले लेगी। क्योंकि इसके द्वारा ही

वायु का प्रदूषण बहुत कम होता है।

कृषि और पशुचारणिक साधन

कृषि साधन : कृषि मानव की मौलिक एवं परंपरागत क्रिया है। इसके अंतर्गत फसलें पैदा करना और पशुओं को पालना आता है। संसार की विविध विशाल संपदाओं में से कृषि भूमि एक महत्वपूर्ण संपदा है। विश्व की सारी जनसंख्या अपने भोजन, वस्त्र तथा आवास की आवश्यकता के लिए मुख्यत: कृषि साधनों पर निर्भर करती है। यह पालतू पशुओं को चारा और विभिन्न प्रकार के उद्योगों को कच्चा माल प्रदान करती है। कृषि साधनों की उपलब्धता और उनका उत्पादन कई कारकों पर निर्भर करता है। उनमें से प्रमुख है, जलवायु जिसके अंतर्गत तापमान, वर्षा, पर्याप्त सूर्य की रोशनी और काफी लंबा वर्धन-काल आता है। भूमि का उच्चावच, मृदा, जलापूर्ति एवं सामाजिक आर्थिक स्तर अन्य प्रमुख कारक हैं। कृषि साधनों का नवीकरण चक्र वार्षिक होता है और इसीलिए उन्हें जीवीय अथवा असमाप्त होने वाले साधन कहे जाते हैं। ये उसी समय तक चिरस्थाई साधन रहते हैं जब तक वातावरण की दशाएं फसलों के अंकुरण वृद्धि एवं पकने के अनुकूल रहती हैं।

कृषि संपदा के अंतर्गत मानव द्वारा उपजाई विभिन्न फसलें आती हैं जिन्हें पांच वर्गों में बांटा जा सकता है। (1) अनाज—इसमें चावल, गेहूँ, मक्का, दालें, राई और ज्वार-बाजरा तथा जौ सम्मिलित हैं, (2) पेय पदार्थ—इसके अंतर्गत तम्बाकू, कहवा, चाय और कोको आते हैं, (3) फल एवं तरकारियां—विभिन्न प्रकार के फल, गन्ना, चुकन्दर, सब्जियां एवं मसाले, (4) रेशा प्रदान करने वाली फसलें : जैसे, कपास, पटसन, हेम्प तथा फलेक्स और (5) व्यापारिक फसलें जैसे रबर, तिलहन, मूंगफली, सोयाबीन आदि।

इन सभी फसलों में अनाज सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि वे विश्व की अधिकांश जनसंख्या की भोजन की आवश्यकता को पूरा करते हैं। चावल, गेहूं और मक्का अनाजों में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। यद्यपि उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में ज्वार-बाजरा की विभिन्न किस्में और शीतोष्ण प्रदेशों में राई तथा जौ निर्धन व्यक्तियों का मुख्य भोजन है।

पशुचारणिक साधन : पशुचारणिक क्रियाओं का अर्थ है, दूध, मांस, ऊन या खालें प्राप्त करने के लिए जानवरों का पालना। यह आस्ट्रेलिया के भेड़ पालन के समान बहुत बड़े पैमाने पर हो सकती है या डेनमार्क के छोटे से डेरी फार्मों की भांति छोटे पैमाने पर हो सकती है। पशुचारणिक खेती चलबासियों की भांति पुरातन हो सकती है अथवा डेनमार्क और हालैंड की भांति अविकसित वैज्ञानिक हो सकती है।

संसार के प्रमुख घास स्थलों, दोनों प्रकार के उष्ण कटिबंधीय एवं शीतोष्ण कटिबंधीय घास भूमियों की सारी अर्थव्यवस्था जानवरों के प्रजनन एवं पालन पर निर्भर करती है। पशुचारणिक साधनों द्वारा मनुष्य को भोजन के रूप में मांस, दूध, मक्खन और पनीर मिलता है। उनसे ऊन, बाल तथा खालें एवं अनेक अतिरिक्त उत्पाद मिलते हैं। ये सभी उत्पाद विभिन्न प्रकार के उपयोगों को आधार प्रदान करते हैं। जानवरों की खालों से जूते, चप्पल, चमड़े तथा फर के कपड़े, बैग, पेटियां, सूटकेस औद्योगिक तथा कृषि की विविध वस्तुएं बनाई जाती हैं। हड्डियों को पीसकर उर्वरक बनाए जाते हैं। सींगों से सजाने की वस्तुएं, घर के बर्तन, चाकू तथा कृपाण के हत्थे बनाए जाते हैं। कुछ जानवरों के मुलायम चमकदार फरों से कीमती कपड़े बनाए जाते हैं। भेड़, अंगोरा बकरी, अल्पाका एवं ऊंट के ऊन विभिन्न प्रकार के वस्त्र निर्माण उद्योग को आधार प्रदान करता है।

किसी देश में पशुचारणिक साधनों का उत्पादन और उनका उपभोग उस देश के जीवन-स्तर का मापदंड होता है। मांस एवं दूध का सबसे अधिक उपयोग यूरोप, उत्तरी-अमेरिका के देश, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में होता है। अफ्रीका और एशिया के विकासशील और अविकसित देशों में मांस और दूध की खपत बहुत कम है। पशुचारणिक साधनों से संसार के विभिन्न प्रकार के भोजन संसाधन उद्योग एवं वस्त्र निर्माण उद्योग को कच्चा माल मिलता है।

खनिज एवं औद्योगिक साधन

खनिज साधन : प्रागैतिहासिक युग में मानव द्वारा खनिज साधनों में से केवल चट्टानों का उपयोग ही किया जाता था। पाषाण युग में मानव फ्लिंट नामक चट्टान से विभिन्न प्रकार के औजार एवं शस्त्र बनाता था। कुछ समय बाद मनुष्य को धातुओं के प्रगलन की कला का ज्ञान हुआ और उसने सबसे पहले कांसे का (कांस्य युग) और बाद में लोहे (लौह युग) का प्रयोग करना सीखा। हमारी आधुनिक सभ्यता का मूल आधार बहुत कुछ धातुओं और खनिजों का बढ़ता हुआ उपयोग है क्योंकि इन्हीं की बदौलत आधुनिक निर्माण उद्योग चल रहे है। विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण देन धातुओं को उनके अयस्कों से वैज्ञानिक विधि द्वारा निकालना और कच्चे लोहे को इस्पात में बदलना है। इस्पात का उपयोग इंजन, जलयान, मोटरकार, प्रतिरक्षा-उपस्कर, मशीन एवं मशीनी-औजार, कटलरी, पुल आदि के बनाने में होता है। अन्य धातुओं के कुछ विशिष्ट उपयोग हैं, जैसे टिन का उपयोग कलई करने; अल्युमिनियम से धातु की हल्की वस्तुएं बनाना, जैसे वायुयान निर्माण; और तांबे का उपयोग इलेक्ट्रानकी तथा टेली कम्युनिकेशन उद्योगों में बिजली के तार बनाने में होता है। आज यद्यपि लोहा-इस्पात हमारी सभ्यता का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्तंभ है, फिर भी अन्य धातुओं का महत्व हमारे लिए कम नहीं है।

विज्ञान, इंजीनियरिंग एवं तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप अब अधिकाधिक मात्रा में खनिजों का निकालना और उनका उपयोग संभव हो सका है। आधुनिक सभ्यता कई प्रकार से खनिजों के अधिकाधिक उत्पादन और उपयोग पर निर्भर कर रही है। मशीन, जहाज, प्रतिरक्षा उपस्कर, भवन, सिक्के, यातायात एवं अन्य सभी वस्तुएं जो किसी न किसी रूप में हमारी आधुनिक सभ्यता से जुड़ी हुई हैं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खनिजों से संबंधित है। लेकिन किसी भी देश में उसकी आवश्यकता के सारे खनिज नहीं पाए जाते। अतः संसार के सभी राष्ट्र विभिन्न खनिजों के लिए एक दूसरे पर निर्भर है।

कृषि के बाद खनन उद्योग में ही संसार के अधिकांश लोग लगे हुए हैं। कृषीय फसलों के विपरीत खनिज संपदा के भंडार निश्चित हैं। इन्हें बढ़ाया नहीं जा सकता। वास्तव में खनिजों का उपभोग दिन पर दिन बढ़ रहा है और भविष्य में इनकी कमी के कारण सभ्यता के विघटन का खतरा पैदा हो गया है। इस खतरे को तभी समाप्त या कम किया जा सकता है जब खनिजों के नये-नये स्रोत और उनके वैकल्पिक उपयोग ढूंढ़े जायें।

संसार में पाये जाने में कुछ प्रमुख खनिज साधन ये हैं--लोहा, सीसा, तांबा, टिन, जस्ता, अल्युमिनियम, चांदी, सोना, पारा, एंटीमनी, प्लैटीनम, मैंगनीज, निकिल, क्रोमियम, मोलोबिडनम, कोबाल्ट, टंगस्टन, यूरेनियम तथा थोरियम। खनिज ईंधन में कोयला, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस आते हैं। अधात्विक खनिजों में अभ्रक, एस्बस्टास, ग्रेफाइट, गंधक, हीरा, फास्फेट, जिप्सम एवं पोटास सम्मिलित हैं।

अभ्यास

समीक्षात्मक प्रश्न

1. निम्न प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :
   (i) साधन की व्याख्या कीजिए और साधन की परिवर्तित संकल्पना को समझाइए।
   (ii) जीवीय और आजीवीय साधनों में अंतर स्पष्ट कीजिए और प्रत्येक के तीन-तीन उदाहरण दीजिए।
   (iii) समाप्त होने वाले और असमाप्त होने वाले साधनों में क्या अंतर है ? प्रत्येक साधन के तीन-तीन उदाहरण दीजिए।
   (iv) संभाव्य एवं विकसित साधनों में क्या अंतर है ? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
   (v) कच्चा माल और ऊर्जा के साधन में अन्तर कीजिए और प्रत्येक के तीन-तीन उदाहरण दीजिए।
   (vi) कृषि एवं पशुचारणिक साधनों में क्या अंतर है ? अपने उत्तर की पुष्टि के लिए उचित उदाहरण भी दीजिए।
2. निम्नलिखित वस्तुओं को प्राकृतिक साधनों की चार प्रमुख श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत कीजिए :
   (i) लौह अयस्क, (ii) लाख, (iii) व्हेल, (iv) एबोनी, (v) थोरियम, (vi) चंदन की लकड़ी, (vii) अल्युमिनियम, (viii) प्राकृतिक गैस, (ix) बहता जल, (x) कपास, (xi) पटसन, (xii) तम्बाकू, (xiii) चाय, (xiv) संगमरमर, (xv) समूर और (xvi) खाल।
3. निम्नलिखित वस्तुओं को (क) समाप्त और असमाप्त होने वाले साधन और (ख) जीवीय तथा आजीवीय साधनों के अंतर्गत बांटिए :
   (i) सूर्य ऊर्जा, (ii) वन, (iii) तांबा, (iv) वायु, (v) कोयला, (vi) वन्य प्राणी, (vii) जल, (viii) थोरियम, (ix) बाक्साइट और (x) अनाज।
4. खनन एवं खनिजों के निष्कर्षण को 'लुटेरा उद्योग' क्यों कहा जाता है ?

ज्ञात कीजिए

(i) उन सभी साधनों की सूची बनाइए जिनकी आजकल बहुत मांग है और जिनका उपयोग उत्पादन बढ़ाने में होता है।
(ii) अपने आस-पास के वातावरण में पाए जाने वाले प्राकृतिक साधनों की सूची बनाइए।

मानचित्र कार्य

संसार के रेखा मानचित्रों पर निम्नलिखित दिखाइए :
(i) प्रमुख कृषि एवं पशुचारणिक क्षेत्र।
(ii) संसार के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र।
(iii) संसार के प्रमुख मत्स्य क्षेत्र।

अतिरिक्त अध्ययन

1. डेविस, डी० एस०, **दि अर्थ एंड मैन**, दि मैकमिलन कंपनी, न्यूयार्क, 1955, पृष्ठ 364-379
2. देशपांडे, बी० डी०, **ज्योग्राफी**, महाराष्ट्र स्टेट बोर्ड आफ सकेंडरी एजूकेशन, पूना, 1974
3. हंटिंगटन, ई०, **प्रिंसिपिल्स आफ ह्यूमन ज्योग्राफी**, न्यूयार्क, 1953
4. मोरगन, जी० सी०, **ह्यूमन एंड इकोनामिक ज्योग्राफी**, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1973
5. परपिलन, ए० बी०, **ह्यूमन ज्योग्राफी**, लांगमैन प्रा० लि०, लन्दन, 1966

अध्याय 2

प्रमुख साधनों का संसार में वितरण

किसी देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति मुख्यत: इस बात पर निर्भर करती है कि उसके पास कितनी विशाल सम्पदा है और उसने किस सीमा तक अपने साधनों का सर्वोत्तम उपयोग करने के साथ-साथ उनके संरक्षण के लिए कहां तक उचित कदम उठाए हैं। वन, मत्स्य, खनिज, उपजाऊ भूमि एवं जल कुछ ऐसे महत्वपूर्ण साधन हैं जो किसी देश के कृषीय और औद्योगिक विकास में योगदान देते हैं और अंतत: उसके लोगों का जीवन स्तर ऊँचा करने में भी मदद देते हैं।

वन-साधन

वन मुख्यत: वृक्षों का एक जटिल परिस्थितिक जीवन तंत्र होता है। प्रारंभिक अवस्था में पृथ्वी का सम्भवत: एक-चौथाई भाग वनों से ढका था। लेकिन बाद में लोगों द्वारा वनों के अति प्रयोग एवं गलत प्रयोग के परिणाम-स्वरूप अब पृथ्वी पर उनका केवल 15% ही रह गया है। मनुष्य ने लकड़ी प्राप्त करने और खेती तथा चरागाह के लिए वनों के विस्तृत क्षेत्रों को साफ कर डाला है।

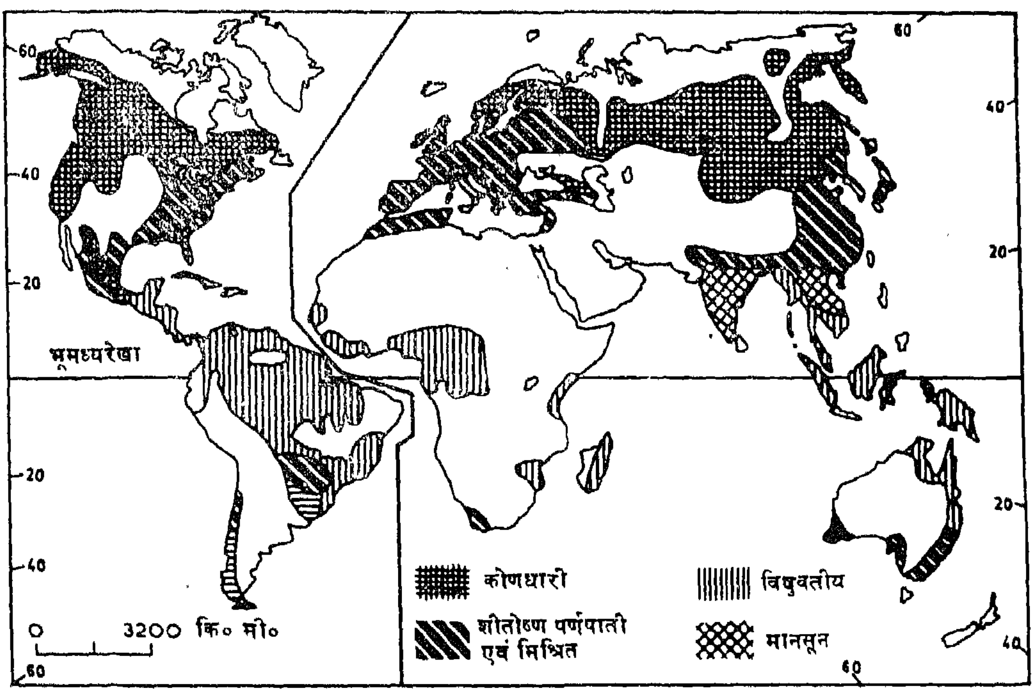
कृषि और खनिजों की तुलना में वनों का विश्व की अर्थ-व्यवस्था में अपेक्षाकृत कम महत्व है। घरेलू एवं औद्योगिक कार्यों में लकड़ी का ईंधन के रूप में उपयोग हमेशा से हो रहा है। कोयले के इस्तेमाल के पूर्व लकड़ी का उपयोग प्राय: लकड़ी के कोयले के रूप में खनिज अयस्कों का प्रगलन करने के लिए किया जाता था। जिन देशों में कोयले के भंडार सीमित हैं, वहां आज भी उद्योगों और इंजनों को शक्ति प्रदान करने तथा विद्युत का निर्माण करने के लिए लकड़ी का प्रयोग करते हैं। भवनों एवं कारखानों के निर्माण तथा फर्नीचर तैयार करने में लकड़ी का महत्वपूर्ण स्थान है। कागज और लुगदी उद्योग का महत्वपूर्ण कच्चा माल लकड़ी ही है। वाणिज्य एवं व्यापार में लकड़ी का इस्तेमाल वस्तुओं को पैक करने में होता है और इस प्रकार विश्वमें लकड़ी की खपत दिनों दिन बढ़ रही है। आधुनिक वस्त्र निर्माण उद्योग में भी लकड़ी प्रयोग की जाती है। वन लकड़ी प्रदान करने के अतिरिक्त अनेक प्रकार की अन्य वस्तुएं भी प्रदान करते हैं, जैसे तारपीन, चमड़ा कमाने की वस्तुएं, विभिन्न प्रकार का गिरी-फल, औषधियां, विभिन्न प्रकार के रंग बनाने की वस्तुएं तथा गोंद और लाख।

वनों के मुख्य प्रकार

वनों का विकास, वृद्धि एवं उनके प्रकार कई कारणों पर निर्भर करते हैं। वनों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक है, स्थिति, मृदा, तापमान, वर्षा, पवन, ऊँचाई, समुद्र से दूरी, ढलान की अभिमुखता तथा सूर्य का प्रकाश। इन कारकों में विविधता होने के कारण विश्व के विभिन्न भागों में अलग-अलग जातियों के वृक्षों एवं पौधों के वन पाए जाते हैं। विश्व के अधिकांश क्षेत्रों में किसी न किसी प्रकार के वन वहां की प्राकृतिक वनस्पति का अंग होते हैं। विश्व के कुछ भागों में जहां की जलवायु अति शीत या अति शुष्क है, वन नहीं पाए जाते। इसके अंतर्गत दो प्रमुख क्षेत्र, ध्रुवीय प्रदेश और मरुस्थल हैं। ध्रुवीय क्षेत्रों में वर्धन काल बहुत ही छोटा होता है, धरातल लगभग वर्ष भर हिम या बर्फ से ढका रहता है और वर्षा भी बहुत कम, लगभग 20 सेन्टीमीटर प्रति वर्ष होती है। इसके विपरीत मरुस्थलों में वर्षा अत्यंत कम, वायुमंडल की आर्द्रता बहुत नीची और मृदा की परत अत्यन्त पतली होती है। जिसके कारण यहां वृक्ष नहीं उग पाते। इसके अतिरिक्त विश्व के विशेषतया मध्य और उच्च अक्षांशों के ऊँचे-ऊँचे पर्वतीय भागों में अतिशीत होने एवं मृदा की कमी के कारण वृक्ष नहीं पाए जाते।

शीतोष्ण एवं उष्ण कटिबंधीय घासभूमियों में भी वृक्षों की कमी है क्योंकि यहां भी शुष्कता अपेक्षाकृत अधिक है और वर्षा, वह भी हल्की, केवल ग्रीष्म ऋतु में होती है। इसके अलावा, सभी को मालूम है कि अधिकांश घासस्थलों की प्राकृतिक वनस्पति को लोगों ने साफ कर डाला है। उदाहरणार्थ सवाना घासभूमि के क्षेत्र मुख्यत: उष्ण कटिबंधीय वनों के सीमांतों पर मिलते हैं। इनमें से अधिकांश क्षेत्रों की प्राकृतिक वनस्पति को गत सैकड़ों वर्षों की अवधि में चरवाहों एवं स्थानांतरी खेती करने वाले लोगों ने जलाकर साफ कर दिया है। उत्तर-पूर्वी भारत, राजस्थान एवं देश के अन्य भागों में वहां की जन-जातियों ने शिकार करने की सुविधा या स्थानांतरी खेती के लिए भूमि प्राप्त करने के उद्देश्य से वहां की प्राकृतिक वनस्पति को समय-समय पर जला दिया।

संसार के आर्द्र, शीतोष्ण एवं उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में प्रमुख तीन प्रकार के वन पाए जाते हैं (चित्र 1)।



1. उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन
2. शीतोष्ण कटिबंधीय वर्णपाती वन
3. कोणधारी वन अथवा टैगा वन

उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन : विषुवत वृत्त के आसपास निम्न अक्षांशों में उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन पाए जाते हैं। ये मुख्यत: दक्षिण अमेरिका के अमेजन बेसिन, अफ्रीका के जायरे बेसिन और दक्षिण-एशिया के मलेशिया, हिन्देशिया, न्यूगिनी, हिन्दचीन, बर्मा, थाईलैंड एवं भारत तथा श्रीलंका में पाये जाते हैं। अमेजन नदी की द्रोणी में इन वनों को 'सेल्वास' कहते हैं। इन क्षेत्रों में वर्ष भर उच्च तापमान और सारे साल भारी वर्षा होने के कारण यहां के वन घने और सदाहरित हैं। इन वनों में वृक्षों के वितान लम्बे-चौड़े, घने झुरमुट, घनी तलझाड़ी और उन पर अनेकों बेलें एवं लताएं लिपटी रहती हैं जिससे सूर्य का प्रकाश भूमि तक नहीं पहुंच पाता। झुरमुट के नीचे अंधेरा, नमी, उमस, एवं नीरसता तथा अनेक प्रकार के बिना शाखा वाले छोटे-छोटे तने एवं पौधों का झुंड होता है। विशालकाय वृक्षों पर अनेक प्रकार की बेलें तथा लताएं ऊपर चढ़ती जाती है और वितान से फिर नीचे की ओर लटकती एवं एक दूसरे से इस प्रकार गुथी रहती हैं कि इन वनों से गुजरना अत्यन्त कठिन होता है।

विषुवतीय वन सदाहरित होते है। यहां की वनस्पति में ऋतु अनुसार परिवर्तन नहीं होता। यहां एक ही समय में कुछ वृक्षों में नई-नई कोंपलें निकल रही होती है, तो कुछ में कलियां फूटती एवं फूल खिल रहे होते हैं। कुछ में उसी समय फल निकलते या पक रहे होते हैं तो कुछ वृक्ष उस समय अपनी पत्तियां गिराते हैं। प्रत्येक जाति के वृक्षों का पत्तियां गिराने का समय अलग-अलग होने के कारण संपूर्ण वन कभी भी पत्ती विहीन नहीं होता और हमेशा हरा भरा रहता है। इन वनों में एक छोटे से क्षेत्र में असंख्य जातियों के वृक्ष पाए जाते हैं। इसलिए किसी जाति विशेष के वृक्षों को व्यापारिक दृष्टि से काटना बहुत कठिन होता है। इन वनों के महत्वपूर्ण वृक्ष महोगनी, इबोनी, रोजवुड, डाइवुड, सीडर, रबर, गटापार्चा, सीबा, ब्राजिल-नट, तैल-ताड़, सिनकोना, एवं लौह-काष्ठ है। मानसूनी क्षेत्रों में एक ऋतु शुष्क होने के कारण ये वन अधिक घने नहीं हैं परन्तु घनी तलझाड़ी और बांस के घने झुंड इनकी विशेषता है। साल, सागौन, ताड़, चन्दन, शीशम, एवं बांस मानसून वनों के प्रमुख वृक्ष हैं। उष्ण कटिबंध के तटीय प्रदेशों में दलदली मैंग्रूव वन पाये जाते है।

उष्ण कटिबंधीय कठोर लकड़ी के वनों से लकड़ी के अलावा बहुत सी वनीय वस्तुएं जैसे लाख, गोंद, चन्दन, रबरक्षीर, कपूर, सिनकोना और गटापार्चा मिलती हैं।

शीतोष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन : शीतोष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन मानसून वनों के उत्तर में पाए जाते है, जहां तापमान तथा वर्षा दोनों अपेक्षाकृत कम होते है। इन वनों के वृक्ष मुख्यत: पर्णपाती हैं अर्थात ये पतझड़ की ऋतु में अपनी पत्तियां गिरा देते हैं और पूरी शीत ऋतु में पत्ती विहीन रहते हैं। इन वनों से विभिन्न प्रकार की कठोर और मुलायम लकड़ी मिलती है। उष्ण कटिबंधीय वनों की भांति इन वनों में भी अनेक जाति के वृक्ष सम्पूर्ण वन में बिखरे रहते हैं और इनमें कई प्रकार की झाड़ियां और छोटे-छोटे पौधे सम्मिलित हैं। लेकिन इन वनों में उष्णकटिबंधीय वनों की भांति विशालकाय लम्बे-लम्बे वृक्ष और घनी तलझाड़ी नहीं होती। इन वनों के वृक्षों की कठोर लकड़ी बहुत ही मजबूत और टिकाऊ होती है और उष्ण कटिबंधीय वनों की कठोर लकड़ी की भांति न यह बहुत भारी होती है और न ही इस पर काम करना कठिन होता है। पर्णपाती वनों के प्रमुख व्यापारिक वृक्ष ओक, एश, बीच, एल्म, और पोपलार हैं।

अन्य वनों की तुलना में **शीतोष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वनों का मनुष्य द्वारा सबसे अधिक विनाश हुआ है। मध्यअक्षांशों की अनुकूल जलवायु और इन क्षेत्रों में जनसंख्या की अतिद्रुतगति से वृद्धि के परिणामस्वरूप कृषि एवं उद्योगों के लिए लोगों ने इन वनों को साफ कर डाला है। अब ये वन जहां कहीं छोटे-छोटे टुकड़ों में मिलते हैं वे सब इन वनों के मूल आवरण का बहुत ही छोटा अंश हैं। शीतोष्ण कटिबंधीय कठोर लकड़ी का प्रयोग गत सैकड़ों वर्षों से भवन निर्माण और ईंधन के रूप में हो रहा है इस कारण भी इन वनों का क्षेत्र निरंतर घटता जा रहा है।** आजकल शीतोष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन विश्व के केवल उन्हीं भागों में पाए जाते हैं

जो कृषि के लिए अनुपयुक्त हैं और जो घनी-घनी बस्तियों के केन्द्रों से बहुत दूर हैं।

शीतोष्ण कटिबंधीय कठोर लकड़ी के वनों के मुख्य क्षेत्र उत्तरी चीन, मंचूरिया और जपान है जहां कृषि कार्य हजारों वर्षों से हो रहा है; पश्चिमी, दक्षिणी और मध्य यूरोप हैं, जहां कृषि और उद्योगों के विकास ने इन वनों का विस्तृत क्षेत्र घेर रखा है; और पूर्वी उत्तर अमेरिका है जो अभी हाल ही में आबाद हुआ है और जहां कृषि और उद्योगों का विकास बहुत तेजी से हो रहा है। वहां बड़े पैमाने पर वनों के शोषण के परिणामस्वरूप उनका क्षेत्र बहुत ही कम हो गया है। शीतोष्ण कटिबन्धी कठोर लकड़ी के कुछ वन दक्षिणी आस्ट्रेलिया विशेषतया तस्मानिया और स्वानलैंड (पश्चिमी आस्ट्रेलिया) में भी पाए जाते हैं।

भूमध्यसागरीय प्रदेश में ग्रीष्म ऋतु शुष्क और शीत ऋतु आर्द्र होती है। यहां के वृक्षों की पत्तियां चौड़ी, जड़ें लम्बी, छाल मोटी और पत्तियां शीशे की तरह चमकदार होती है जिससे शुष्क ऋतु में उनसे कम से कम वाष्पउत्सर्जन हो। भूमध्यसागरीय वनों के प्रमुख वृक्ष ओक ओलिव या जैतून, फिग, पाइन, फर, सीडर, साइप्रस और जुनीपर हैं। गिरीफल, जैतून का तेल, निम्बु जाति के फल और ओक वृक्ष की छाल से प्राप्त कार्क भूमध्य सागरी वनों के प्रमुख उत्पाद हैं।

कोणधारी वन : शीतोष्ण कटिबंधी कोणधारी वनों की एक विस्तृत पेटी 50^0 उ० और 70^0 उ० अक्षांशों के बीच फैली हुई है। साइबेरिया में इन वनों को टैगा कहते हैं। ये वन समुद्रतल से 1500 से 2000 मीटर तक की ऊँचाई के बीच हिमालय और आल्प्स पर्वतों पर पाए जाते हैं। कोणधारी वृक्ष लम्बे, सीधे और सदाहरित होते हैं। उनकी पत्तियां पतली और सुई के आकार की नुकीली होती हैं। इन वृक्षों का नाम इनमें कोन के आकार के लगने वाले फलों से रखा गया है और इन फलों में वृक्षों के बीज होते हैं। कुछ कोणधारी वृक्ष जैसे लार्च पर्णपाती भी होते हैं। अधिकतर कोणधारी वृक्षों की लकड़ी मुलायम होती है जिससे उनका काटना और ढोना आसान होता है। कोणधारी वृक्षों की ऊँचाई 30 मीटर या इससे अधिक होती है। लेकिन इन वृक्षों में उष्ण कटिबंधीय वृक्षों की भांति तलझाड़ी नहीं होती और न जड़ें तथा शाखाएं इधर उधर फैली हुई होती है। इसमें वृक्षों को काटकर गिराना आसान होता है। यद्यपि इन वनों में स्प्रूस, पाइन, फर और लार्च की कई जातियां पाई जाती हैं, परंतु इनकी विशेषता यह है कि एक स्थान पर मुख्यतः एक ही जाति के वृक्षों के समूह मिलते हैं। कोणधारी वन विषुवतीय वनों की भांति घने नहीं हैं। इनमें आना-जाना या वृक्षों को काटकर ढोना आसान है। अत्यंत शीत अथवा शुष्क भागों में ये बहुत ही कम घने और बिखरे हैं तथा वृक्षों की ऊँचाई बहुत कम है।

कोणधारी वनों के प्रमुख प्रदेश, उत्तर अमेरिका के पश्चिमी, मध्य और उत्तरी-पूर्वी भाग, उत्तरी यूरोप, सोवियत संघ का एशियाई क्षेत्र और दक्षिणी चिली है। ब्राजील की उच्च भूमि, न्यूजीलैंड के उत्तरी द्वीप, दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के कुछ भागों में भी कोणधारी वन हैं और यहां इन वनों का स्थानीय महत्व है।

वन समस्याएं

हजारों वर्षों से मनुष्य संसार की वन संपदा का ह्रास कर रहा है। वह अपनी आवश्यकताओं जैसे ईंधन के रूप में लकड़ी प्राप्त करना या कृषि, आवास अथवा उद्योगों के लिए अतिरिक्त भूमि प्राप्त करने के लिए वनों को जला या साफ कर रहा है। पहले यह क्रिया धीमी थी परंतु जनसंख्या विस्फोट के कारण वनों का ह्रास अब बड़ी द्रुतगति से हो रहा है। बहुत से कम विकसित देशों में—जहां ईंधन का मुख्य साधन लकड़ी है, जहां कृषि के लिए अतिरिक्त भूमि की निरंतर आवश्यकता होती रहती है अथवा जहां स्थानांतरी कृषि की अब भी परंपराएं चल रही है, वन साधन बड़ी तेजी से कम हो रहे हैं। यह बात अफ्रीका, एशिया और दक्षिण अमेरिका के कुछ देशों के लिए बिलकुल खरी उतरती है।

यूरोप में जलयान निर्माण तथा अन्य उद्योगों के विकास के परिणामस्वरूप शीतोष्ण कटिबंधीय कठोर लकड़ी की प्राकृतिक संपदा का बड़ी द्रुतगति से ह्रास किया गया। बढ़ती हुई जनसंख्या का भी प्रभाव वन संपदा के घटने पर पड़ा। भवनों और उद्योगों के निर्माण कार्य में टिम्बर की आवश्यकता बढ़ी है। इसके अतिरिक्त

कागज और वस्त्र उद्योग में लकड़ी की बढ़ती हुई मांग का भी वन संपदा पर बुरा प्रभाव पड़ा। चीन और भारत में कृषि कार्य में भूमि के बढ़ते उपयोग के कारण वनों का बड़ी बेरहमी से सफाया किया गया।

इसके अलावा आग, कीड़े-मकोड़े और अनेक बीमारियां भी वन संपदा को घटाने में मदद देती हैं। अब संसार के अधिकांश देशों की सरकारें वन संपदा के ह्रास से उत्पन्न हुई समस्याओं से अच्छी तरह परिचित हैं। वनों का क्षेत्र बढ़ाने और वर्तमान वनों का संरक्षण एवं संवर्धन करने के लिए उन्होंने ठोस कदम उठाए हैं। वनों की अति कटाई और उनकी बर्बादी को रोकने के लिए कानून बनाये गए हैं। वृक्षों को लगाने और वनों का क्षेत्र बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

मत्स्य-साधन

मत्स्य उद्योग का अर्थ है वह संगठित मानव प्रयास जिसमें समुद्री, तटीय भागों और अंत: स्थलीय जलाशयों में रहने वाले जीवों, विशेषतया मछली का पालन करना, उसको पकड़ना और उसका संसाधन करना अदि क्रियाएं सम्मिलित हैं। ऐसा अनुमान है कि मछलियों की लगभग 30,000 जातियां हैं जिनमें से बहुत-सी जातियां केवल मीठे पानी में ही रहती है। मीठे पानी में रहने वाली मछलियां मुख्यत: नदियों, झीलों और तालाबों में पाई जाती हैं और उनका महत्व स्थानीय होता है। परंतु समुद्र में रहने वाली मछलियां बहुत अधिक मात्रा में पकड़ी जाती हैं और वे स्थानीय मांग को पूरा करने के साथ अन्य देशों की मांग को भी पूरा करती हैं।

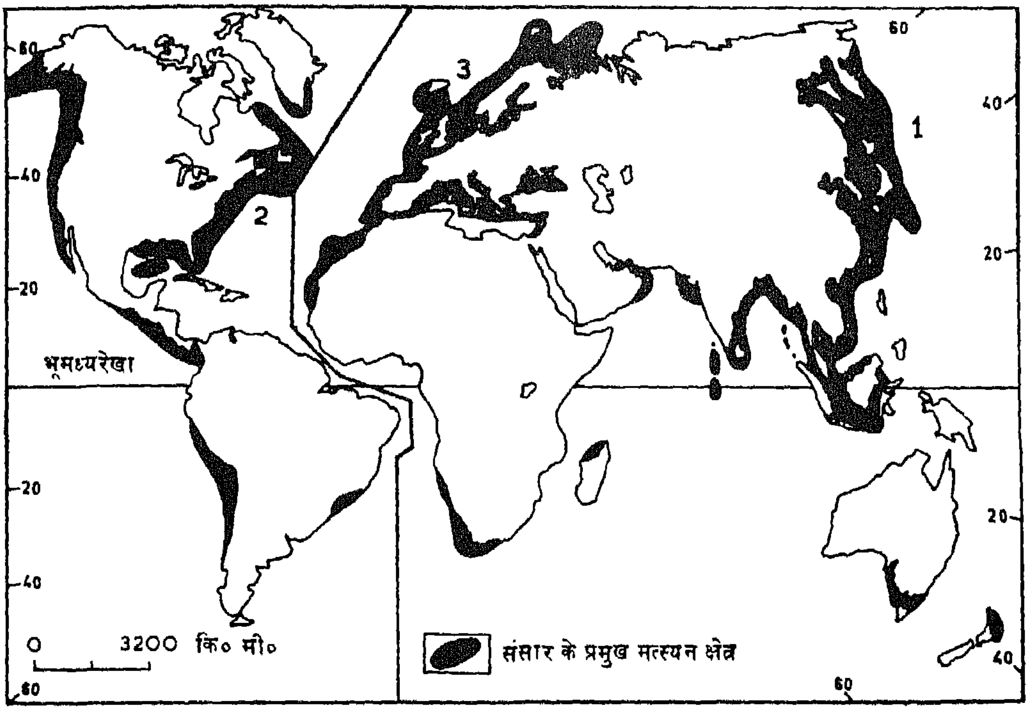
कृषि का धंधा अपनाने से पूर्व मनुष्य शिकार करता था और मछली पकड़ता था। इसलिए मछली पकड़ना मनुष्य का परंपरागत धंधा है। जनसंख्या की वृद्धि के कारण अब मनुष्य भोजन की बढ़ती हुई आवश्यकता को पूरा करने के लिए मत्स्य-संपदा की ओर अभिमुख हो रहा है। जापान, नार्वे, आइसलैंड, न्यूफाउंडलैंड और यू०के० में लोगों का मुख्य भोजन मछली है। यहां की अधिकांश भूमि पर्वतीय है और कृषि के लिए अनुपयुक्त है। अत: यहां के लोग भोजन के लिए मुख्यत: मछली पर निर्भर रहते हैं। समुद्र के किसी भाग में मछलियों की उत्पादकता कई कारकों पर निर्भर करती है, उनमें से प्रमुख हैं, जल की गहराई, महासागर धाराएं, तापमान और लवणता जिस पर प्लावक (मछलियों का भोजन) की मात्रा निर्भर करती है।

प्रमुख मत्स्यन क्षेत्र

यद्यपि मछलियां समुद्र और मीठे जल दोनों में पकड़ी जाती हैं, परंतु व्यापारिक दृष्टि से संसार के प्रमुख मत्स्य क्षेत्र उत्तरी गोलार्ध में उच्च अक्षांशों के शीतल समुद्रों तक सीमित है। उष्ण कटिबंध और दक्षिणी गोलार्ध में व्यापारिक दृष्टि से बहुत बड़े पैमाने पर मछलियां नहीं पकड़ी जातीं। संसार में मत्स्य-ग्रहण के प्रमुख क्षेत्र तीन है : (1) उत्तरी-पश्चिमी प्रशान्त महासागर (2) उत्तरी-पश्चिमी अटलांटिक और (3) उत्तरी-पूर्वी अटलांटिक। चित्र 2 को देखने से ज्ञात होगा कि ये तीनों प्रमुख मत्स्य क्षेत्र उत्तरी गोलार्ध के शीतोष्ण कटिबंधीय समुद्रों में स्थित हैं।

उत्तरी-पश्चिमी प्रशांत महासागर का मत्स्यन क्षेत्र : यह बैरिंग सागर से लेकर दक्षिण चीन सागर तक फैला है और संसार का सबसे बड़ा मत्स्यन क्षेत्र है। इस क्षेत्र से प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ टन मछलियां पकड़ी जाती हैं और उनमें से लगभग 70 लाख टन अकेले जापान द्वारा पकड़ी जाती हैं। शेष मछलियाँ चीन, कोरिया और सोवियत संघ द्वारा पकड़ी जाती हैं। यहां संभवत: मत्स्य उद्योग में जितने लोग लगे हुए हैं उतने व्यक्ति संसार के किसी अन्य क्षेत्र में नहीं हैं। जापान में मत्स्य उद्योग सबसे ज्यादा विकसित है। यहां मछली पकड़ने की आधुनिकतम विधियां अपनाई जाती है।

उत्तरी-पश्चिमी प्रशान्त महासागर के मत्स्यन क्षेत्र की स्थिति के लिए कई महत्वपूर्ण अनुकूल कारक हैं। उनमें से प्रमुख हैं क्यूराइल की ठंडी धारा का क्यूरोसियो की गर्म धारा में मिलन जिससे मछलियों के प्रजनन और वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण मिलता है। मत्स्य उद्योग का वैज्ञानिक प्रबन्ध और मछलियों की आसपास के देशों विशेषतया जापान में बहुत अधिक मांग है। जापान में मछुओं के छोटे-बड़े गांव देश की संपूर्ण तटीय सीमा पर



चित्र 2 : संसार के प्रमुख मत्स्यन क्षेत्र
(1) उत्तरी-पश्चिमी प्रशांत (2) उत्तरी-पश्चिमी अटलांटिक (3) उत्तरी-पूर्वी अटलांटिक।

फैले हुए हैं। जापान सागर से जापानी मछुए सार्डिन, हेरिंग, मेकरिएल, शार्क, सामन, योल टेल, कटलफिश, शेलफिश और क्रेब तथा लाबस्टर बहुत बड़ी मात्रा में पकड़ते हैं। कोड, टुना, बोरिटोस, टरटाइल मेकरिल और हेलीबट गहरे समुद्र की मछलियां हैं। जापान में संसार के अन्य देशों की तुलना में मछलियों की खपत सबसे अधिक है।

उत्तरी-पश्चिमी अटलांटिक महासागर मत्स्यन क्षेत्र : यह क्षेत्र न्यूफाउंडलैंड से न्यू इंगलैंड (यू० एस० ए०) के तटीय भागों तक फैला है। न्यूफाउंडलैंड के पास में गल्फ स्ट्रीम की गर्मधारा और लैब्रोडोर की शीतल धारा मिलती हैं जिससे मछलियों का भोजन, प्लवक बड़ी मात्रा में विकसित होता है और मछलियों की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण मिलता है। इसके अतिरिक्त यहां 'बैंक' या अंत: समुद्री पठारों की उपस्थिति ने मछलियों की संख्या-वृद्धि में बहुत योगदान दिया है।

न्यूफाउंडलैंड मत्स्य-ग्रहण क्षेत्र में कनाडा और यू० एस० ए० के अतिरिक्त ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल, जापान और सोवियत संघ की भी मत्स्य नौकाएं आती हैं। यहां उथले समुद्र में काड, हेरिंग और मेकरिल मछलियां पकड़ी जाती हैं और गहरे समुद्र में हिलीबट, हेड्डोक, हेक और फ्लाउंडर मछलियां पकड़ी जाती हैं। न्यूफाउंडलैंड में 90 प्रतिशत जनसंख्या को मत्स्य उद्योग में काम मिलता है। यहां मछलियों को विभिन्न रूप में ताजा, कच्चा, संसाधित, संरक्षित या डिब्बों में बन्द करके अमेरिका की मुख्य भूमि, लैटिन अमरीकी देशों, दक्षिणी यूरोप और उत्तरी अफ्रीका के देशों को निर्यात किया जाता है। न्यूफाउंडलैंड के मत्स्यन क्षेत्र से हाल में इतनी

अधिक मछलियां पकड़ी गई हैं कि यहां अब मछलियों की मात्रा कम हो गई है।

उत्तरी-पूर्वी अटलांटिक महासागर का मत्स्यन क्षेत्र : यह क्षेत्र आइसलैंड से लेकर भूमध्यसागर के तटों तक फैला है। उत्तर सागर संसार का सबसे बड़ा मत्स्य-ग्रहण क्षेत्र है। यह बहुत उथला है और इसमें कई बैंक हैं, जिनमें डागर बैंक और ग्रेट फिशर बैंक प्रसिद्ध हैं। इस समुद्र के चारों ओर स्थित देश अर्थात् यू० के०, फ्रांस, नीदरलैंड, बेल्जियम, डेन्मार्क, नार्वे, स्वीडन, जर्मनी, आयरलैंड और आइसलैंड में जनसंख्या अधिक है और इसलिए इन देशों में मछलियों की खूब मांग हैं।

इस क्षेत्र में पकड़ी जाने वाली प्रमुख मछलियां हेरिंग कांड और मेकरिल हैं। उत्तरी शीत समुद्रों में हेड्डोक, टरबोट, हैलीवट, हेक, स्केट, प्लाइस और सील मछलियां पकड़ी जाती हैं। दक्षिण के गर्म समुद्रों में एन-कोवीज, पिलचार्ड, साइडाइन और टुनर मुख्य मछलियां हैं। उत्तरी-पूर्वी अटलांटिक महासागर का मत्स्यन क्षेत्र पहले संसार में सबसे आगे था। अब इसमें प्रति वर्ष 90 लाख टन मछलियां पकड़ी जाती हैं।

उत्तरी-पूर्वी प्रशान्त महासागर का मत्स्यन क्षेत्र उत्तर अमेरिका के पश्चिमी तट पर अलास्का से कैली-फोर्निया तक फैला है। यह भी संसार का प्रसिद्ध मत्स्यन क्षेत्र है। इस क्षेत्र की मुख्य मछली सामन है। इसे मुख्यत: डिब्बों में बन्द करके निर्यात किया जाता है। उत्तर अमरीका के बाजारों के लिए यहां हेलीबट, हैरिंग, टुना, साइडिन, क्रैब, सिरिम्पस और ओस्टर भी पकड़े जाते हैं।

उष्ण कटिबंधीय समुद्रों में व्यापारिक दृष्टि से मछलियां कम पकड़ी जाती हैं क्योंकि यहां खाने योग्य उपयुक्त मछलियों की जातियां बहुत कम हैं। वैसे शीतल समुद्रों की अपेक्षा यहां मछलियों की बहुत अधिक जातियां हैं लेकिन मछलियों की संख्या गर्म समुद्रों में बहुत कम है। इसीलिए उष्ण कटिबंध के समुद्रों में मत्स्यन क्षेत्र बहुत ही सीमित हैं। इसके अतिरिक्त महाद्वीपीय निमग्न तट उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में बहुत विस्तृत नहीं हैं और साथ ही तट रेखा भी अपेक्षाकृत सीधी है और अच्छे-अच्छे पोताश्रय नहीं हैं। उष्ण कटिबंधीय समुद्रों की प्रमुख मछलियां रेड-स्नैयर मुलिट, सीट्राअट, फ्लाईंग फिश, स्पैनिश मैक्रील, ड्रम तथा फ्लाउंडर हैं।

भारत में मत्स्य उद्योग

भारत के तटीय भागों में रहने वाले लोगों के भोजन में मछली का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत की तटरेखा बहुत लम्बी है, इस पर भी यहाँ प्रति वर्ष आठ लाख टन मछलियां पकड़ी जाती हैं। यहां के प्रमुख मत्स्यन क्षेत्र तट के निकट स्थित हैं जिनमें से प्रमुख हैं गुजरात, मालाबार तट, मन्नार की खाड़ी, और मद्रास तट। भारत में पकड़ी जाने वाली प्रमुख मछलियां हेरिंग, मैक्रल, प्रान, कैटफिश, मुकिट, पामफ्रेट, भारतीय सामन, जाफिश, फ्लाउंडर, हैलिवट, शार्क, हेक्स और हैडोक हैं। भारत सरकार ने मत्स्य उद्योग का विकास करने के लिए कई योजनाएं प्रारम्भ की हैं और आशा की जाती है कि भविष्य में देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन प्रदान करने के लिए पर्याप्त मात्रा में मछलियां मिल सकेंगी।

मत्स्य साधन नवीकरण साधन है। मछलियों की संख्या लगातार प्रजनन और संवर्धन के परिणामस्वरूप बढ़ती रहती हैं। उनका संवर्धन उसी समय तक होता है जब तक वातावरण की दशाएं अनुकूल होती हैं। विद्वानों का मत है कि मछलियों की संख्या दिन पर दिन घट रही है। उत्तरी एटलांटिक महासागर और न्यूफाउंडलैंड के समुद्रों से अब कोड और लोवस्टर मछलियां कम मात्रा में पकड़ी जाती हैं। इसी प्रकार मीठे पानी में भी मछलियां कम हो रही हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि नदियों में नगर का मलमूत्र और औद्योगिक स्राव डाला जाता है जिससे नदियों का जल प्रदूषित हो रहा है। मछलियों के रहने का वातावरण, उनका व्यवहार और जीवन की और अधिक जानकारी मिलने पर मत्स्य-साधनों का अधिक विकास हो सकता है।

खनिज-साधन

खनिज एक या एक से अधिक तत्व से मिलकर बनता है और इसका निश्चित रासायनिक संगठन होता है एवं इसे भौतिक तथा रासायनिक गुणों से पहचाना जाता

है। खनिजों को मुख्यत: दो वर्गों में बांटा जाता है। प्रथम वर्ग में धात्विक खनिज आते हैं, जैसे लोहा, तांबा, अल्यूमीनियम, टिन, सीसा, सोना, चांदी आदि। दूसरे वर्ग में अधात्विक खनिज आते हैं जैसे कोयला, गंधक, अभ्रक, मैंगनीज तथा पैट्रोलियम।

लोहा

संसार के सभी भागों में लोहे का सर्वाधिक उपयोग होता है। इसके व्यापक रूप से उपयोग होने का मुख्य कारण इसकी कुछ विशेषताएं हैं, जिनमें से प्रमुख हैं (1) लोहे का कई रूपों जैसे ढलवां लोहा, पिटवां लोहा, चुम्बकीय लोहा और अनेक प्रकार के स्पात आदि में बदला जा सकता, (2) इसकी सबलता एवं टिकाऊपन, (3) इसकी कठोरता, (4) इसे पीट कर चांदों या तारों में बनाया जा सकना और (5) इसकी चुम्बकीय विशेषताएं। इन विशेषताओं के कारण लोहे का अन्य धातुओं की अपेक्षा सबसे अधिक उपयोग होता है। लगभग सभी प्रकार की मशीनें और मशीनी औजार मुख्यत: लोहे के बनाए जाते हैं। अत: लोहा हमारी सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। लोहे ने कब और कहां मनुष्य का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया, इसकी जानकारी हमें नहीं है। यह सम्भवत: उस समय हुआ होगा जब मनुष्य ने अनजाने में लोह-अयस्क को लकड़ी की आग में गरम कर दिया होगा और बाद में उस आग की राख में उसे धातु का एक काला संहित मिल गया होगा। कुछ विद्वानों का विचार है कि मिश्र और चीन के लोगों को ईसा के जन्म से 4000 वर्ष पूर्व से ही लोहे का ज्ञान था। भारत में भी अति प्राचीन काल से ही लोगों को लोहे की जानकारी है। दिल्ली में कुतुबमीनार के निकट स्थित लोह स्तम्भ इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि प्राचीन काल में भी हमारा धातुकी ज्ञान कितना विकसित था।

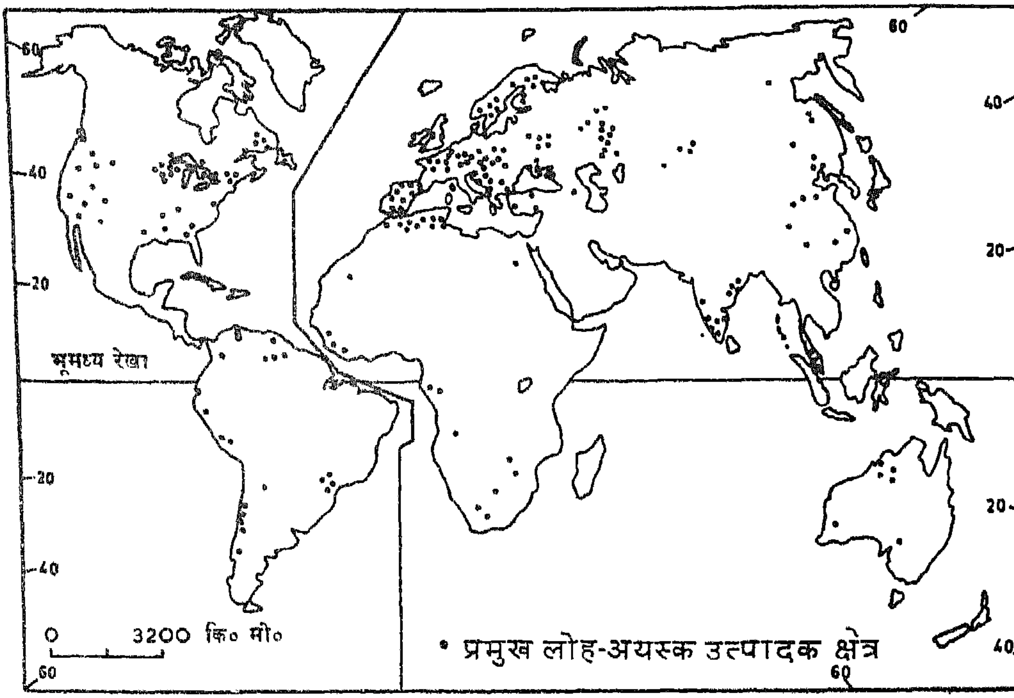
लोहा हमारी आधुनिक सभ्यता का प्रतीक है। इसका उपयोग वस्तुओं का निर्माण करने वाली मशीनों तथा निर्मित वस्तुओं, दोनों में होता है। लोहे के बिना आधुनिक यातायात का चल सकना सम्भव नहीं है। लोहे का उपयोग भवन और कारखानों का निर्माण करने, पहनने के लिए कपड़े बनाने, भोजन पदार्थों को पैदा करने, उनका संसाधन करने और उनका डिब्बाबंदी करने तथा पानी के वितरण में होता है। किसी देश में प्रति व्यक्ति लोहे की खपत उस देश के लोगों के जीवन स्तर का मापदंड है।

लोहे को पृथ्वी की सतह या भूमि के नीचे गहराई पर पाए जाने के कारण खुले गर्त वाली अथवा खनिज कूप एवं सुरंग वाली खनन विधियों द्वारा निकाला जाता है। झोंका भट्टी में लौह अयस्क को कोयला और चूना पत्थर के साथ मिलाकर पिघलाया जाता है और इस क्रिया को प्रगलन कहते हैं। प्रगलन से कच्चा लोहा या ढलवां लोहा बनता है और लोहे की बहुत-सी अशुद्धियां निकाल दी जाती हैं। ढलवां लोहे से कार्बन निकाल कर इसे पिटवां लोहा बनाया जाता है। पिटवें लोहे को हथौड़े से पीटकर पत्तर या तार बनाए जा सकते हैं। विभिन्न प्रकार की धातु जैसे मैंगनीज, निकल, वेनेडियम, क्रोमियम और टंगस्टन आदि को अलग-अलग अनुपात में लोहे से मिलाकर और अलग तापमान पर इस मिश्र धातु पर पानी चढ़ाकर विभिन्न रंगों और गुणों के स्पात बनाए जाते हैं। मैंगनीज-स्टील और क्रोमियम स्टील या स्टेनलैस स्टील इसके उदाहरण हैं।

लौह-अयस्क का विश्व वितरण : चित्र 3 के मानचित्र का अध्ययन करने पर आपको ज्ञात होगा कि लौह-अयस्क के भंडारों का संसार में वितरण बहुत ही असमान है। यह मुख्यत: सोवियत संघ, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, स्वीडन, फ्रांस, स्पेन और भारत में पाया जाता है।

सोवियत-संघ का लौह-अयस्क के उत्पादन में संसार में प्रथम स्थान है। इस देश में लौह-अयस्क का सबसे अधिक उत्पादन और उससे संबंधित औद्योगिक विकास मुख्यत: मास्को के निकट क्षेत्र और यूक्रेन में क्रावोई रोग क्षेत्र में हुआ है। साइबेरिया में और यूराल क्षेत्र में मैगनीटोगोरस्क के निकट, कजाकिस्तान में कुस्तने में और अंगारा घाटी में भी लौह-अयस्क के विस्तृत नये निक्षेप ढूंढ़े गए हैं। इन क्षेत्रों में ही सोवियत संघ के प्रमुख लोहा इस्पात केन्द्र स्थित हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के विभिन्न भागों में लौह-



चित्र 3 : लौह-अयस्क का विश्व वितरण

अयस्क का खनन कार्य होता है। विशाल झीलों के क्षेत्र और अलाबामा क्षेत्र से इस देश का लगभग 80% लोहा निकाला जाता है। विशाल झीलों के प्रदेश में 6 पर्वत श्रेणियों में लौह-अयस्क निकाला जाता है। इनमें सबसे प्रसिद्ध क्षेत्र मीसाबी श्रेणी का है, जो अकेले अन्य पांच क्षेत्रों से भी अधिक लौह-अयस्क का उत्पादन करता है। यहां से लौह-अयस्क मिशिगन और इरी झील के किनारे स्थित नगरों और पेंसिलवेनिया कोयला क्षेत्र के पिट्टसबर्ग नगर के लोहा-इस्पात कारखानों में उपयोग के लिए भेजा जाता है। अलबामा राज्य में एपलेशियन पर्वतों के दक्षिण में स्थित बर्मिंघम नगर संयुक्त राज्य अमेरिका का दूसरा प्रमुख लौह-अयस्क केन्द्र है। यह अपलेशियन पर्वत के कोयला क्षेत्र के निकट स्थित है। इसलिए बर्मिंघम लोहा-इस्पात का महत्वपूर्ण केन्द्र है। संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी क्षेत्र में उताह-नेवादा, वीयोमिंग और कैलीफोर्निया राज्यों में छोटे-छोटे लौह-अयस्क क्षेत्र सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रों से लौह-अयस्क लासएंजिलस, कोलोरैडो, प्रेवो उताह् के इस्पात कारखानों में भेजा जाता है।

कनाडा में लौह-अयस्क के प्रमुख क्षेत्र विशाल झीलों के प्रदेश में हैं। अब लैब्रोडोर और पूर्वी क्यूबेक में भी लौह-अयस्क निकाला जाता है।

लौह अयस्क के उत्पादन में **फ्रांस** का विश्व में चौथा स्थान है और यह विश्व के कुल उत्पादन का 10% उत्पादन करता है। फ्रांस के प्रमुख लौह-अयस्क क्षेत्र लोरेन में हैं। यहां लौह-अयस्क चूना पत्थर के साथ मिला हुआ मिलता है जिससे अयस्क के प्रगलन में सहायता मिलती है। नोरमंडेर प्रेनीज तथा सेन्ट्रल मैसिफ में भी लौह-अयस्क के छोटे-छोटे क्षेत्र हैं।

यूरोप में **स्वीडन** लौह-अयस्क का सबसे बड़ा उत्पादक है। यहां किरुना और गैलोवरा के लौह-अयस्क के विशाल भंडार उत्तम प्रकार के हैं। यहां अयस्क के धरातल पर मिलने के कारण उसका खनन करना भी आसान है। परन्तु स्वीडन में इस अयस्क को गलाने के

लिए कोयला उपलब्ध नहीं है। इसलिए यहां का अधिकांश लौह-अयस्क निर्यात कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इस देश की लौह-अयस्क की खानें उत्तरी भाग में स्थित हैं जहां शीत ऋतु कड़ी और लम्बी होती है। यह कठिनाईयाँ लौह-अयस्क के उत्पादन में रुकावट डालती हैं।

वेनेजुएला गायना पठार में उच्च कोटि के लौह-अयस्क के विशाल निक्षेप हैं। यहां की दो महत्वपूर्ण खाने, एल पाओ तथा सेरो वोलिवार हैं। यहां से लौह-अयस्क का निर्यात संयुक्त राज्य को होता है।

चीन में लौह-अयस्क के विशाल क्षेत्र मंचूरिया के अंशान क्षेत्र में है। अन्य प्रमुख क्षेत्र मांगटीजी की निम्न घाटी के मानशान, तायेह और चुंगकिंग में है। बिखरे हुए छोटे-छोटे क्षेत्र सिक्यांग की निम्न घाटी में कैंटन के निकट और हैनान द्वीप में हैं। चीन के लगभग सभी प्रमुख नगरों में लोहा-इस्पात के कारखाने स्थापित हैं, इनमें से प्रमुख हैं अंशान, शंघाई, वूहान, चुंगकिंग तथा कैन्टन।

ब्राजील के दक्षिणी-पूर्वी भाग में लौह-अयस्क के निक्षेप हैं। वोल्टारिडोन्डा तथा बेलो होरिजेन्टो के लोहा-इस्पात कारखानों में यह प्रयोग किया जाता है। ब्राजील का शीघ्र गति से औद्योगिक विकास हो रहा है जो यहाँ की अपार खनिज संपदा, विशेषतया लौह-अयस्क पर निर्भर है।

उत्तरी अफ्रीका में लौह-अयस्क के निक्षेप टुनिसिया, अलजीरिया और माराको में हैं। मध्य अफ्रीका में निम्नकोटि का लौह-अयस्क मिलता है। दक्षिण अफ्रीका के ट्रांसवाल में उच्चकोटि का लौह-अयस्क पाया जाता है।

आस्ट्रेलिया में लौह-अयस्क के विशाल भंडार हैं जो देश के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं। पश्चिम आस्ट्रेलिया के माउन्ट गोल्डसवर्थी, माउन्ट ब्रूस, माउन्ट टोम, प्राइस और यमपी साउन्ड के क्षेत्रों में लौह-अयस्क के विशाल निक्षेप अभी हाल ही में ढूंढ़े गये हैं जिनके कारण इस देश का लौह-अयस्क का उत्पादन खूब बढ़ा है। यहां देश की लोहा-इस्पात उद्योग की मांग को पूरा करने के अतिरिक्त जापान को भी निर्यात किया जाता है।

भारत में उच्च कोटि का लौह-अयस्क मिलता है। सिंहभूमि, क्योंझर, बोनाय, मयूरभंज और सोलायपत प्रमुख उत्पादक हैं। लोहे की ये खानें कोयला क्षेत्र के बहुत निकट हैं और सम्पूर्ण क्षेत्र में रेल यातायात की अच्छी सुविधा है। महाराष्ट्र के चाँदा जिले के लोहारा और पीपल गांव क्षेत्र तथा रत्नागिरि जिले में रेडी क्षेत्र; मध्यप्रदेश में बैनेडोला, डैली, राजहरा तथा वस्तर क्षेत्र; तमिल नाडु में सेलम तथा तिरुचिरापल्ली और आंध्र-प्रदेश में हैदराबाद क्षेत्र तथा गोवा भारत के अन्य प्रमुख लौह-अयस्क उत्पादन क्षेत्र हैं।

तांबा

मनुष्य तांबे का उपयोग संभवतः अति प्राचीन समय से कर रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि तांबा अक्सर शुद्ध रूप में मिल जाता है और इस पर काम करना आसान है। एक लम्बे समय तक तांबे का प्रयोग भोजन पकाने के बर्तनों के निर्माण तक ही सीमित था। गत 70 वर्षों की अवधि में मनुष्य के लिए तांबे का महत्व बहुत बढ़ गया है क्योंकि उसने बिजली के कार्यों में तांबे के प्रयोग को सीख लिया है। तांबा विद्युत का सबसे अच्छा चालक है। इसलिए विद्युत उत्पादन केन्द्रों, टेलीफोन और मोटरकार के तारों एवं सभी प्रकार की विद्युत मशीनों में तांबे का प्रयोग होता है। विद्युत का अच्छा चालक होने के कारण तांबे की मांग दिनों दिन बढ़ रही है। ऐसे तांबे के निक्षेप जैसे चिली और कांगो की तांबा खानें, जो तांबे के प्रयोग स्थलों से कहीं दूर स्थित हैं, का शोषण भी बड़ी द्रुत गति से हो रहा है।

तांबा धरातल पर या धरातल से नीचे शुद्ध धातु के रूप में मिल सकता है। परन्तु अधिकतर यह लोहा, सोना, चांदी, सीसा और गंधक के साथ रासायनिक रूप में मिला हुआ होता है। 1974 में तांबे का विश्व उत्पादन 60 लाख टन से कुछ अधिक था।

संयुक्त राज्य अमेरिका में तांबे के विशाल निक्षेप मिशीगन और एरीजोना क्षेत्रों में पाए जाते हैं। एरीजोना और उटाह राज्यों में तांबे का खूब उत्पादन होता है। परन्तु इसका सबसे अधिक उपयोग देश के उत्तरी-पूर्वी औद्योगिक क्षेत्र में होता है।

चिली, जाम्बिया, जायरे, सोवियत संघ, स्पेन,

मेक्सिको, जापान, आस्ट्रेलिया और भारत में तांबे के निक्षेप पाए जाते हैं। चिली के चूकीकमाटा और जायरे के कटंगा क्षेत्र में संसार के तांबे के विशालतम निक्षेप हैं। तांबा जापान की प्रमुख धातु है। बल्कान प्रायद्वीप और टर्की में भी तांबे की खानें हैं। तांबे के अन्य प्रमुख क्षेत्र कनाडा, पीरु और चीन में भी हैं।

भारत में तांबे की प्रमुख खानें बिहार के सिंहभूमि और हजारीबाग जिलों में हैं। तांबा उत्पादन के मुख्य केन्द्र मोसाबनी, घाटशिला, धोबनी और बेदिया हैं। राजस्थान के खेतड़ी और दरीबो क्षेत्र, आंध्र प्रदेश का अनंतपुर क्षेत्र, हिमालय के अन्दर के क्षेत्रों तथा कर्नाटक में भी चट्टानों में तांबा विद्यमान है।

अल्यूमीनियम

अल्यूमीनियम हल्की धातु है और इसका प्रयोग हाल ही में प्रारंभ हुआ है। अब यह औद्योगिक कार्यों में प्रचुर मात्रा में प्रयोग होने वाली अत्यन्त महत्वपूर्ण धातु है। अल्यूमीनियम धातु की कुछ विशेषताओं, जैसे धातु का हल्का होना, बिजली और ताप का अच्छा चालक होना, संक्षारण प्रतिरोधी होना और अन्य धातुओं से आसानी से मिलकर कठोरतम मिश्र धातु बनना आदि के कारण अल्यूमीनियम का प्रयोग विविध कार्यों में होता है। खाना पकाने के बर्तनों से लेकर वायुयान निर्माण और बिजली के तारों एवं मशीनों के बनाने तक अल्यूमीनियम का प्रयोग किया जाता है। भवन निर्माण और यातायात वाहनों के निर्माण में अल्यूमीनियम अब बहुत ही महत्वपूर्ण हो गया है।

अल्यूमीनियम धातु को बाक्साइट, क्रायोलाइट, कोरंडम तथा केओलिन धातु से निकाला जाता है। जमाइका, फ्रांस, गुयाना, सूरीनाम, घाना, हंगरी, आस्ट्रेलिया, भारत और संयुक्त राज्य अमेरीका में बाक्साइट मिलता है और क्रायोलाइट ग्रीनलैंड में पाया जाता है। 1974 में बाक्साइट का विश्व उत्पादन 6 करोड़ टन था। इसमें अकेले जमाइका का भाग एक करोड़ बीस लाख टन था और सूरीनाम का उत्पादन 60 लाख टन से कुछ अधिक था। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका में बाक्साइट का उत्पादन केवल 20 लाख टन है, परंतु इस देश में अल्यूमीनियम धातु और इस धातु से बनी वस्तुओं का उत्पादन संसार में सबसे अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका अपनी आवश्यकता का लगभग 70% बाक्साइट जमाइका और सूरीनाम से आयात करता है।

बाक्साइट के कुल उत्पादन का 80% अल्यूमीनियम धातु के निर्माण में प्रयोग होता है। बाक्साइट से अल्यूमीनियम बनाने के लिए बहुत अधिक मात्रा में विद्युत धारा की आवश्यकता पड़ती है। अतः अल्यूमीनियम धातु बनाने के अधिकतर कारखाने उन्हीं स्थानों पर स्थापित किए गए हैं जहां सस्ती जल-विद्युत प्रचुर मात्रा में मिलती है। संसार प्रसिद्ध अल्युमीनियम के बड़े-बड़े कारखाने जल-प्रपातों के निकट स्थित हैं जहां सस्ती जल विद्युत प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। स्विट्जरलैंड का शैप-आसेन जल-प्रपात और न्याग्रा प्रपात इसके उदाहरण हैं। फ्रांस के सेवाय क्षेत्र में, जर्मनी और इटली के पर्वतीय क्षेत्रों में भी अल्यूमीनियम के विशाल कारखाने हैं। यदि बिजली कम कीमत पर और अधिक मात्रा में मिल सके तो अल्यूमीनियम का उत्पादन और भी बढ़ाया जा सकता है। वर्तमान युग में अल्यूमीनियम विश्व के लोगों के जीवन और उनके विकास को बहुत अधिक प्रभावित कर रहा है।

भारत में बाक्साइट का उत्पादन बिहार के रांची जिले, मध्य प्रदेश के जबलपुर और कटनी जिले, गुजरात में कैराजिले, तमिल नाडु में सेलम और कर्नाटक के बेलगाम जिलों में होता है। भारत में बाक्साइट के उत्पादन का अधिकतर भाग देश में ही इस्तेमाल हो जाता है और इसका केवल छोटा सा भाग ही निर्यात किया जाता है।

कोयला

सैकड़ों वर्षों से कोयले का उपयोग घरेलू कार्यों में जलाने के लिए हो रहा है परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में कोयले का उपयोग भाप की शक्ति बनाने और उससे भाप इंजन चलाने में होने लगा। इस प्रकार कोयले के नवीन उपयोग ने औद्योगिक क्रान्ति को आधार प्रदान किया। भाप बनाने में कोयला बहुत ही अच्छा ईंधन माना जाने लगा। भाप से कारखानों की मशीनें, रेल के इंजन और भाप इंजन वाले जहाज चलाए जाने

लगे।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में विश्व की चालक शक्ति की कुल आवश्यकता का 90% कोयले से बनाया जाता था लेकिन 1960 तक यह गिरकर केवल 45 ही रह गया है। यह गिरावट केवल कोयले के संदर्भ में है। वास्तव में इस वर्ष तक कोयले के उत्पादन में बहुत अधिक वृद्धि हुई हैं। दूसरी ओर चालक शक्ति की मांग इस अवधि में इतनी बढ़ गई थी कि उसके लिए केवल कोयले पर निर्भर नहीं किया जा सकता था। अत: शक्ति निर्माण करने के लिए ईंधन के अन्य स्रोतों को विकसित किया गया जिसने शक्ति निर्माण के लिए कोयले का भाग कम कर दिया। कोई दिन ऐसा अवश्य आएगा जब शक्ति निर्माण करने के लिए कोयले का महत्व बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। लेकिन कोयला अब भी शक्ति निर्माण करने का मुख्य साधन है। उद्योगों के स्थानीकरण में भी कोयले का विशेष महत्व है। संसार के अधिकांश औद्योगिक प्रदेश कोयला क्षेत्रों में या उनके निकट स्थित हैं।

कोयला शक्ति और ऊर्जा का स्रोत होने के अतिरिक्त, अन्य कई उपयोगी उत्पादों का भी स्रोत है, जैसे, गैस तारकोल, तेल, पिच या डामर, एमोनिया, उर्वरक, कृत्रिम रेशे, रासायनिक रंग, बेंजाल, नेप्था और अनेक प्रकार की दवाइयां। लोहा इस्पात उद्योग में कोयला एक महत्वपूर्ण कच्चा माल है।

कोयला एक ठोस और बेडौल पदार्थ है जिसमें कार्बन सबसे अधिक मात्रा में होता है। यह वनस्पतिक पदार्थों के आंशिक विघटन से निर्मित होता है। यह वनस्पतिक पदार्थ करोड़ों वर्ष पूर्व दलदलों तथा झीलों वाले क्षेत्रों में अत्यधिक विकसित वनों के अवशेष के रूप में था। पौधों की विकास अवधियों के अभ्यांतरों में बालू, काइ तथा अवसाद की परतें जमा होती गई थीं। जहां विघटन की प्रक्रिया आक्सीजन की कमी के कारण मंद तथा अपूर्ण रह गई, वहां वनों के निक्षेप पीट बन गए जो कोयले के निर्माण के प्रथम चरण में बनते हैं। पृथ्वी की हलचलों से नीचे दबी वनों की परतों के अधिक संपीड़न से पीट कोयला में परिणत हो जाता है। कोयले के संस्तर या परतें आग्नेय अथवा कायान्तिरित चट्टानो में नहीं बनतीं, वरन वे अवसादी चट्टानों में ही बनती हैं। इस प्रकार कोयला स्वयं अवसादी चट्टान है, तथा कोयले के ये संस्तर भी अवसादी चट्टानों की तरह ही मुड़ते या टूटते हैं।

कोयले को कार्बन अंश तथा विशेषताओं के आधार पर चार वर्गों में बांटा गया है।

एंथ्रासाइट कोयला : यह सबसे अच्छी किस्म का कोयला होता है। इसमें 92% से भी अधिक कार्बन होता है और जलने पर धुआं बिल्कुल नहीं देता। यह कड़ा होता है और इसे शीघ्र जलाया नहीं जा सकता। एंथ्रासाइट में चमक होती है और इसका रंग बिल्कुल काला होता है। कड़ा होने के कारण इसका खनन कठिन होता है और इसीलिए खनन कार्य का खर्चा अधिक होता है। इसे कोक में परिणत नहीं किया जा सकता। कोक वास्तव में दहन भट्टी का ईंधन और इसे मकानों को गर्म रखने के लिए उपयोग करते हैं।

बिटुमिनस कोयला : यह मुलायम कोयला है और इसमें लगभग 70% कार्बन होता है। इस प्रकार का कोयला सबसे अधिक मात्रा में मिलता है। ये भी **कोकिंग कोयला, वाष्प कोयला** और **गैस कोयला** तीन प्रकार के होते हैं, जिनका नामकरण उनके उपयोग के अनुसार हुआ है। दहन भट्टी के ईंधन के लिए इसे कोक में बदलने पर कोलतार और अमोनिया तथा बेनजीन जैसे रासायनिक पदार्थ मिलते हैं। जलपोतों में प्रयुक्त **बंकर** कोयला भी इसी प्रकार का होता है। विश्व में जितना कोयला उत्पादित किया जाता है उसका 80% बिटु-मिनस कोयला ही है।

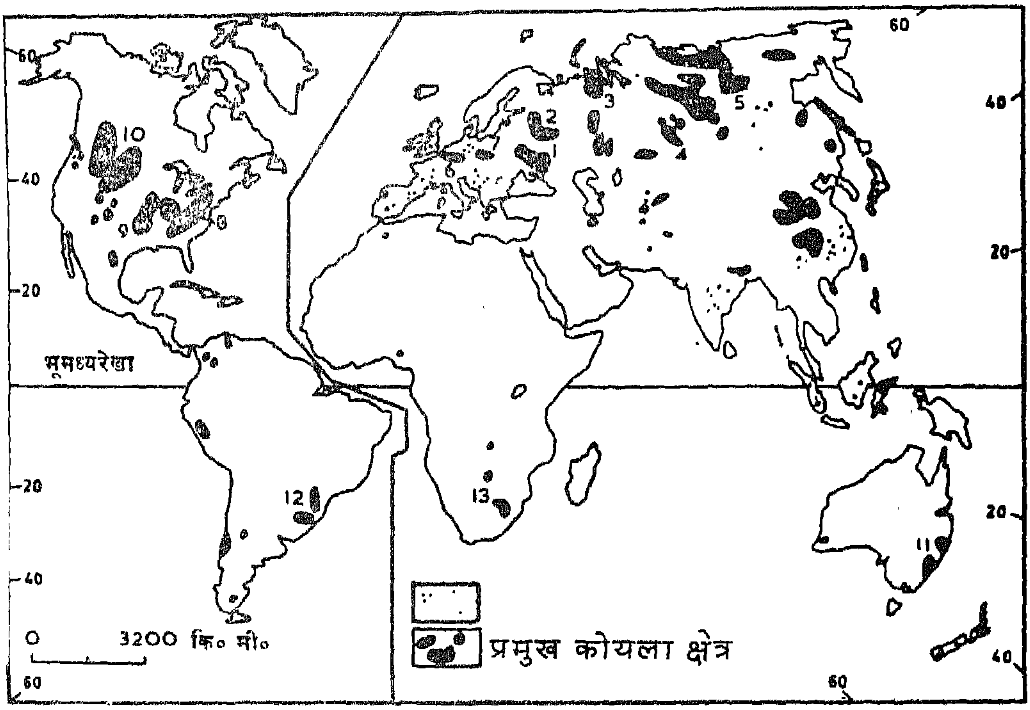
लिगनाइट कोयला : इसे **भूरा कोयला** भी कहते हैं। इसमें 40% कार्बन और अधिक मात्रा में नमी होती है तथा यह मुलायम होता है। जलने पर इसमें से धुआं बहुत निकलता है और ऊष्मा कम मिलती है। संसार के कुल कोयला उत्पादन में लिगनाइट का भाग 15% है।

पीट कोयला : यह भूरा छिद्रयुक्त पदार्थ होता है। यह कोयला निर्माण की प्रक्रिया का प्रथम चरण है और इसके निक्षेपों का विस्तार एवं संस्तरो की मोटाई अलग-

अलग होती है। यह हल्का, चिकना तथा जल से नम होता है और सुखाने के बाद ही बड़ी कठिनाई से जलता है। इसमें कार्बन का अंश 50 से 60% तक होता है। निम्न जलन क्षमता के कारण इस कोयले का उपयोग कम होता है।

यहां अधिकतर विटुमिनस कोयला मिलता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कोयला उत्पादन के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं। (1) अपेलेशियन कोयला क्षेत्र, (2) रांकी कोयला क्षेत्र और (3) आंतरिक कोयला क्षेत्र (चित्र 4)।

अपलेशियन कोयला क्षेत्र पेंसिलवानिया राज्य से



चित्र 4 : विश्व में कोयला क्षेत्रों का वितरण

(1) डॉनबॉस, (2) मास्को, (3) पिचोरा, (4) कुजबास, (5) लीना, (6) रूर, (7) लोअर, (8) अपलेशिया, (9) इलिनॉय, (10) रॉकी-पर्वत, (11) न्यू साउथवेल्स, (12) दक्षिण ब्राजील, (13) दक्षिण अफ्रीका।

अलाबामा राज्य तक फैला है और इस क्षेत्र में संसार का सबसे अच्छा विटुमिनस कोयला मिलता है। इस कोयला क्षेत्र के प्रमुख कोयला उत्पादक राज्य पेंसिलवानिया, ओहिओ, पश्चिम वर्जीनिया, कैन्टुकी, टैनेसी और अलबामा हैं। रांकी कोयला क्षेत्र मोनटाना राज्य से न्यू मैक्सिको राज्य तक फैला है और आंतरिक कोयला क्षेत्र इलीनोयाइज और इंडियाना राज्यों में विस्तृत है (चित्र 4)।

विश्व के प्रमुख कोयला क्षेत्र

संसार के प्रमुख कोयला उत्पादक देश संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, चीन, जर्मन संघीय गणराज्य, यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस, पोलेन्ड, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया और भारत हैं (चित्र 4)।

संयुक्त राज्य अमेरिका : संसार के कोयला उत्पादक देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रथम स्थान है।

सोवियत संघ : सोवियत संघ का कोयला उत्पादन में संसार में दूसरा स्थान है यद्यपि इस देश के कोयला भंडार संसार के समस्त कोयला भंडारों का 60% हैं। सोवियत संघ में कोयले का उत्पादन 200 से अधिक कोयला क्षेत्रों में होता है। इनमें से अधिकांश कोयला क्षेत्र ऐशियाई रूस में स्थित हैं। यूक्रेन का डोनटूज कोयला क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण है। यह क्षेत्र यूरोपीय रूस के अधिकांश उद्योगों को कोयला प्रदान करता है। रूस के अन्य प्रमुख कोयला क्षेत्र कुजनेरा, कारागंडा, मास्को, पिचोरा, किजेल और चिलिपाविस्क हैं। साइबेरिया की अतिविरल जनसंख्या कोयला उत्पादन के विकास में पहले बहुत बड़ी रुकावट थी। लेकिन आजकल यहां कई औद्योगिक क्षेत्रों का विकास किया गया है जो ऐशियाई रूस के विशाल कोयला साधनों का उपयोग करते हैं। अब इस विस्तृत क्षेत्र की जनसंख्या धीरे-धीरे बढ़ रही है।

चीन : संसार के कोयला उत्पादक देशों में चीन का तीसरा स्थान है। इस देश में सभी प्रकार का कोयला मिलता है और यह देश के लगभग सभी प्रान्तों में पाया जाता है। परन्तु सांशी, सेन्शी, इनर मंगोलिया, कैंशू, होनान, होपी, शान्टुंग, सेज्केवान, रेड बेसिन, टुनान, कियांगशी और हूनान प्रान्तों में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में कोयले का खनन होता है।

यूनाइटेड किंगडम : यूनाइटेड किंगडम में उच्च कोटि के कोयले के विशाल निक्षेप हैं। यूरोप में कोयले का खनन सर्वप्रथम ब्रिटेन में ही किया गया था और उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन का विश्व के कोयला उत्पादक देशों में प्रथम स्थान था। ग्रेटब्रिटेन में कोयला की प्रमुख खानें डरहम, न्यूकासिल, नार्थअंबरलैंड, योर्कशायर नोटिंघमशायर, डर्बीशायर, लंकाशायर, कंबरलैंड, कार्डिफ और स्वानसी में हैं।

जर्मन संघीय गणराज्य: यूरोप महाद्वीप के कोयला उत्पादन करने वाले राष्ट्रों में ज.सं.ग. सबसे आगे है। इस देश का द्रुत गति से औद्योगिक विकास होने का मुख्य कारण यहां के कोयला साधनों का अधिकाधिक उपयोग है। ज.सं.ग. में अधिकतर बिटुमिनस कोयला मिलता है, परन्तु यहां लिगनाइट भी निकाला जाता है। यहां के प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र, रूर बेसिन, बेस्टफेलिया, और बेवेरिया हैं। कोयला क्षेत्र, सस्ते आंतरिक जल यातायात और रेल की लाइनों से जुड़े हैं।

पोलैंड : पोलैंड में कोयले के विशाल निक्षेप क्रमशः अपर और लोअर सिलीशिया में हैं। सिलीशिया क्षेत्र के विभिन्न उद्योग इस कोयले का उपयोग करते हैं।

भारत : भारत के प्रमुख कोयला क्षेत्र पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा राज्यों में दामोदर घाटी में फैले हुए हैं। कोयले की मुख्य-मुख्य खानें रानीगंज, झरिया, बोकारो और गिरढी में हैं। भारत के कुल कोयला उत्पादन का लगभग 90% अकेले दामोदर घाटी के कोयला क्षेत्रों से प्राप्त होता है। बीकानेर दक्षिण आरकाट और कश्मीर में लिगनाइट निकाला जाता है। मध्य प्रदेश में कोयला सोहागपुर और उमरिया में मिलता है। महाराष्ट्र में कोयला के निक्षेप वारधा घाटी में हैं। भारत के लोहा-इस्पात उद्योग में कोयले की बहुत बड़ी मात्रा खप जाती है और भारतीय रेलें भी देश के कुल कोयला उत्पादन का लगभग एक तिहाई भाग उपभोग करती हैं।

पेट्रोलियम

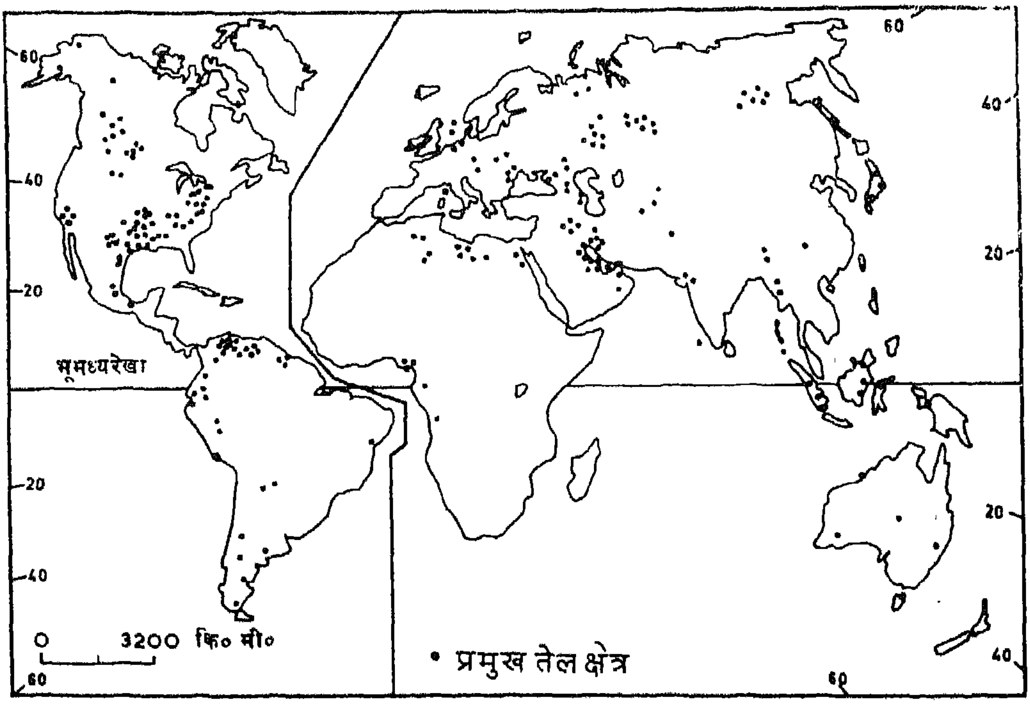
यद्यपि पेट्रोलियम का उपयोग किसी न किसी रूप में प्राचीन काल में होता रहा है। परन्तु प्रकाश, ताप और शक्ति प्राप्त करने के लिए इसका सुव्यवस्थित प्रयोग 1860 से ही प्रारंभ हुआ। अंतर्दहन-इंजन के आविष्कार के परिणामस्वरूप ऊर्जा प्राप्त करने के लिए पेट्रोलियम का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। मोटर कार और वायुयान प्रारंभिक समय से पेट्रोल की विशाल मात्रा का उपयोग कर रहे हैं। अब इनके अतिरिक्त पेट्रोलियम का उपयोग जलयान, रेल के इंजन उद्योग भी कर रहे हैं।

पेट्रोलियम की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह जमीन से निकाले जाने वाले क्षेत्र से बहुत अधिक दूर के स्थानों पर प्रयोग किया जा सकता है। यह कोयले से अधिक मूल्यवान है और इसका ढोया जाना भी आसान है। इसे टैंकरों में भरकर या पाइप लाइनों द्वारा दूर-दूर तक ढोया जा सकता है। कुछ देशों में पाइप लाइनें अंतर्महाद्वीपीय हैं। इन पाइप लाइनों का निर्माण आधुनिक इंजीनियर्स का उत्कृष्ट नमूना है।

खनिज तेल या पेट्रोलियम का उद्योग, व्यापार और

कृषि तथा अन्य कार्यों में विविध रूप में प्रयोग किया जाता है। इसे ईंधन, मशीनों को चिकना करने, रोशनी करने तथा अनेक प्रकार के उत्पादन बनाने के लिए पेट्रोरसायन उद्योग में कच्चे माल के रूप में प्रयोग करते हैं। इसके उपोत्पादों का उपयोग रसायन उद्योग, औषधियां बनाने, वस्त्र निर्माण तथा कई अन्य उद्योगों में होता है।

उसके बाद खनिज तेल के साधनों का विकास बड़ी तेजी से होने लगा। पेट्रोलियम के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका का विश्व में प्रथम स्थान है। एक समय था जब विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 90% अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका उत्पादन करता था, लेकिन बाद में मध्य पूर्व के देशों, सोवियत संघ, वेनेजुएला और अन्य देशों में तेल के नए-नए क्षेत्र खुल जाने से अब संयुक्त राज्य का



चित्र 5 : विश्व में तेल-क्षेत्रों का वितरण

विश्व के कुल उत्पादन में भाग घटकर केवल 25% रह गया है।

संसार के प्रमुख तेल क्षेत्र

विश्व में तेल के भंडार कुछ सीमित क्षेत्रों में ही मिलते हैं। संसार के प्रमुख तेल उत्पादक देश संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, वेनेजुएला, कुवैत, साउदी अरब, ईरान, इराक, लीबिया, नाइजीरिया, खाड़ी के देश और भारत में हैं (चित्र 5)।

संयुक्त राज्य अमेरिका : तेल का पहला कुआं सन् 1859 में इस देश के पेंसिलवानिया राज्य में खोदा गया।

संयुक्त राज्य अमेरिका के कई क्षेत्रों में खनिज तेल मिलता है। परन्तु उनमें से पांच क्षेत्र महत्वपूर्ण हैं। ये हैं : उत्तरी टेक्सास, ओकलाहोमा और कैन्सास का **मध्य महाद्वीपीय क्षेत्र**; दक्षिणी टेक्सास, लुशियाना, मिसीसिपी और अरकनासा का **खाड़ी-तट का क्षेत्र**; वायोमिंग, कोलोरैडो, मोन्टाना और न्यू मैक्सिको का **राकी पर्वत क्षेत्र**; **दक्षिणी कैलीफोर्निया क्षेत्र**; और पेंसिलवानिया, केन्टुकी तथा

ओहियो राज्यों का **अपेलेशियन** क्षेत्र। इंडियाना, इलीनोयाइस और मिशीगन राज्यों में भी छोटे छोटे तेल क्षेत्र हैं। एलस्का राज्य में पेट्रोलियम के विशाल भंडार हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिकांश तेल का वितरण पाइपलाइनों द्वारा होता है। इस देश में तेल और गैस को ले जाने वाली पाइपलाइनों की लम्बाई लगभग 1 लाख 60 हजार किलोमीटर है।

सोवियत संघ : विश्व के तेल उत्पादक देशों में सोवियत संघ का दूसरा स्थान है। यह विश्व के कुल तेल उत्पादन का लगभग 15% प्रदान करता है। यहां के परम्परागत तेल के क्षेत्र कैस्पियन सागर के किनारे है। सोवियत संघ के प्रमुख तेल क्षेत्र हैं: यूरोपीय यू० एस० एस० आर० का दक्षिणी-पूर्वी भाग, कैस्पियन सागर के पश्चिमी तट पर बाकू क्षेत्र, और काकेशस पर्वत के उत्तरी सीमान्तों पर स्थित कई क्षेत्र। कैस्पियन सागर के उत्तरी तट पर ओजनी और मैकप दो प्रसिद्ध तेल क्षेत्र हैं। हाल ही में वोलगा नदी और यूराल के बीच तेल के विस्तृत नये भंडार खोजे गए हैं और इस क्षेत्र को 'द्वतीय बाकू' कहते हैं। इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण तेल के कुएं चुक, पर्म, क्यूबीशेव, मोलोरोव और सारोटोव के आस-पास हैं। यहां के अधिकतर कुएं अधिक गहरे नहीं हैं और उनसे हल्का और भारी दोनों प्रकार का तेल निकाला जाता है। अभी हाल ही में एशियाई रूस में और भी बड़े तेल के भंडार मिले हैं। इनमें से प्रमुख हैं, टर्किस्तान क्षेत्र (फरगाना घाटी), कैस्पियन सागर के पूर्व में इम्बा और नोबिटटाग क्षेत्र, और यूमान तथा टोमस्क क्षेत्र के प्रमुख कुएं।

सोवियत संघ में कुओं से निकाला गया अधिकतर तेल बाकू, ग्रोजनी, पर्म, मुफ और क्यूबीशेव की परिष्करण शालाओं में साफ किया जाता है और यह पाइपलाइनों के विशाल जाल द्वारा देश और विदेश के दूरस्थ स्थानों को भेजा जाता है। सोवियत संघ, हंगरी, चेकोसलावाकिया, जर्मन लोकतंत्रीय गणराज्य और इटली को पाइप लाइनों द्वारा तेल का निर्यात करता है।

वेनेजुएला : दक्षिणी अमेरिका में वेनेजुएला सबसे अधिक तेल का उत्पादन करता है। इसका तेल उत्पादन सोवियत संघ से थोड़ा कम है, परन्तु तेल के निर्यात में वेनेजुएला का विश्व में प्रथम स्थान है। यहां के प्रमुख तेल क्षेत्र मराकाइबो की छिछली खाड़ी के चारों ओर फैले हैं। पुर्टोलाक्रूज, लानोस और अरीनिको के डेल्टा में भी तेल मिलता है। इस देश का अधिकतर तेल उत्तर अमेरिका और यूरोप के देशों को निर्यात किया जाता है।

मध्य पूर्व : मध्य पूर्व के सभी देश मिलकर विश्व के कुल तेल उत्पादन का लगभग 25% प्रदान करते हैं। इस प्रदेश के प्रमुख तेल उत्पादक देश कुवैत, साउदीअरब, ईरान, इराक, अबूधाबी, क्वाटार, बेहरीन और दुबाई हैं। इन देशों के तकनीकी विकास में पिछड़े होने और जनसंख्या की कमी के कारण यहां के अधिकांश तेल भंडारों का विकास अंतर्राष्ट्रीय तेल की कम्पनियों ने किया है और यहां की सरकारें उन कम्पनियों से बड़ी मात्रा में रॉयाल्टी लेती हैं। तेल का टैंकरों या पाइपलाइनों द्वारा ढोया जाना एवं उसके साफ करने का काम भी इन कम्पनियों के हाथ में हैं। यहां तेल के विभिन्न क्षेत्रों को पाइपलाइनों द्वारा फारस की खाड़ी और भूमध्य सागर के तटों से मिलाया गया है।

साउदी अरब में विश्व के लगभग 10% तेल के भंडार हैं। इस देश के प्रमुख तेल क्षेत्र धारन, एबक्याक और धावर हैं। धारन में एक तेल परिष्करण शाला भी है। अधिकांश तेल बेहरीन और भूमध्यसागर के तट पर लेबनान देश के सीदन पत्तन में बड़ी-बड़ी परिष्करण शालाओं को साफ करने के लिए भेजा जाता है।

ईरान में तेल का पहला कुआं सन् 1913 में खोदा गया। ईरान में तेल के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र देश के दक्षिणी पश्चिमी भाग में खाजिस्तान के आस-पास हैं। मस्जिद सुलेमान, नेफ्त-ई-शाह, लाली, आगा जारी, गेच सारन, और बाहरेगन में इस देश के मुख्य तेल के कुएं हैं। फारस की खाड़ी पर स्थित अबादान और करमानशाह की तेल परिष्करण शालाओं में यहां का तेल साफ किया जाता है। इस देश से कच्चा तेल और पेट्रोलियम दोनों के अनेक उत्पाद निर्यात किए जाते हैं।

ईराक का प्रमुख तेल क्षेत्र बाबा गौर, किरकुक के निकट, कुरदिस्तान पर्वतों के दक्षिणी-पश्चिमी सीमान्तों पर है। इस क्षेत्र का तेल पाइपलाइनों द्वारा भूमध्यसागर

पर स्थित बेनियास, सीरिया और त्रिपोली भेजा जाता है। उत्तरी भाग में मोसुल के निकट भी तेल मिला है।

भारत : भारत में तेल के पर्याप्त भंडार हैं और आजकल यहां तेल का उत्पादन दिनों दिन बढ़ रहा है। भारत में तेल के सम्भाव्य प्रमुख क्षेत्र असम, बम्बे-हाई, कच्छ, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, गंगा की घाटी, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु और केरल के तट तथा अंडमान निकोबार द्वीप हैं।

तेल का उत्पादन कनाडा, हिन्देशिया, मिश्र, मैक्सिको, एलजीरिया, लीबिया, अर्जेन्टिना, बर्मा, जर्मन संघीय गणराज्य, यूगोस्लाविया, नीदरलैंड, फ्रांस, जापान, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में भी होता है।

यूरेनियम

यूरेनियम एक भारी, कठोर, रेडियोधर्मी, सफेद धातु होती है और इसका परमाणु भार बहुत ऊंचा होता है। चट्टानों में यूरेनियम के यौगिक विभिन्न अनुपात में मिले रहते हैं। अधिकतर चट्टानों में यूरेनियम का वास्तविक संघटन बहुत ही निम्न होता है अतः यूरेनियम के अयस्क प्रायः बहुत ही कम मिलते हैं।

सैनिक महत्व के कारण विभिन्न देश अपने यूरेनियम उत्पादन के आंकड़े गुप्त रखते हैं, फिर भी जायरे तथा दक्षिण अफ्रीका इस धातु के प्रमुख उत्पादक हैं। कनाडा में यूरेनियम की दो प्रसिद्ध खानें हैं। एक खान ग्रेट बियर लेक के निकट है और दूसरी ओन्टारिओ प्रांत में अथावास्का में है। ज.लो.ग. और चेकोस्लावाकिया के बीच सीमाओं पर स्थित इर्ज पर्वतों में भी यूरेनियम के मूल्यवान निक्षेप हैं। सोवियत संघ में यूरेनियम के विस्तृत निक्षेप तुयामेयून, माजिलसे और बैकाल प्रदेश में पाए जाते हैं। भारत में यूरेनियम के भंडारों का अनुमान लगभग 76,000 टन है। बिहार के सिंहभूमि क्षेत्र में यूरेनियम के निक्षेप आर्थिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के हिमालय क्षेत्र में भी यूरेनियम के कुछ निक्षेप मिले हैं।

यूरेनियम नाभिकीय रिऐक्टरों, विशेषतया विद्युत निर्माण करने के लिए ईंधन का काम करता है। यूरेनियम का उपयोग नाभिकीय तकनीकी के बाहर कहीं नहीं हो सकता क्योंकि यह सीसे से ज्यादा गहन है। 1972 में यूरेनियम का विश्व-उत्पादन लगभग 25,000 टन था। इस कुल उत्पादन का 50% संयुक्त राज्य अमेरिका और 20% कनाडा का था।

थोरियम : थोरियम एक भारी, भूरे रंग की धातु होती है और इसको पीटकर पत्तर या तार बनाए जा सकते हैं। इसमें चुम्बकत्व होता है और यह रेडियोधर्मी तत्व है। हवा में इसे खुला छोड़ने पर यह गहरा भूरा या काला हो जाता है।

जब से यह खोज हुई है कि थोरियम को नाभिकीया ऊर्जा प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है, पृथ्वी की सतह पर थोरियम के पाए जाने वाले निक्षेपों और उनके वितरण का आर्थिक महत्व बहुत ही बढ़ गया है। यद्यपि थोरियम बहुत-से खनिजों में अन्य तत्वों के साथ मिला हुआ पाया जाता है परन्तु इसका सबसे महत्वपूर्ण स्रोत मोनाजाइट है। मोनाजाइट दुर्लभ मृदा और थोरियम फास्फेट मिला हुआ पाया जाता है। यह भारत, ब्राजील और संयुक्त राज्य अमेरिका में तटीय बालू में मिलता है।

भारत में मोनाजाइट बालू केरल के तटों पर मिलता है और इसमें थोरियम की बहुत अधिक मात्रा होती है। भारत में मोनाजाइट बालू के भंडार अनुमानतः 10 लाख टन है। संयुक्त राज्य अमेरिका के थोरियम निक्षेप इडाहों, कोलोरेडो और उत्तरी कैरोलिना राज्यों में पाये जाते हैं।

ऐसा अनुमान है कि विश्व में थोरियम के भंडार लगभग 10 लाख टन हैं। इससे जितनी मात्रा की ऊर्जा का उत्पादन हो सकता है उतनी ही ऊर्जा विश्व के समस्त कोयला और पेट्रोलियम के सम्मिलित ज्ञात भंडारों से होगी।

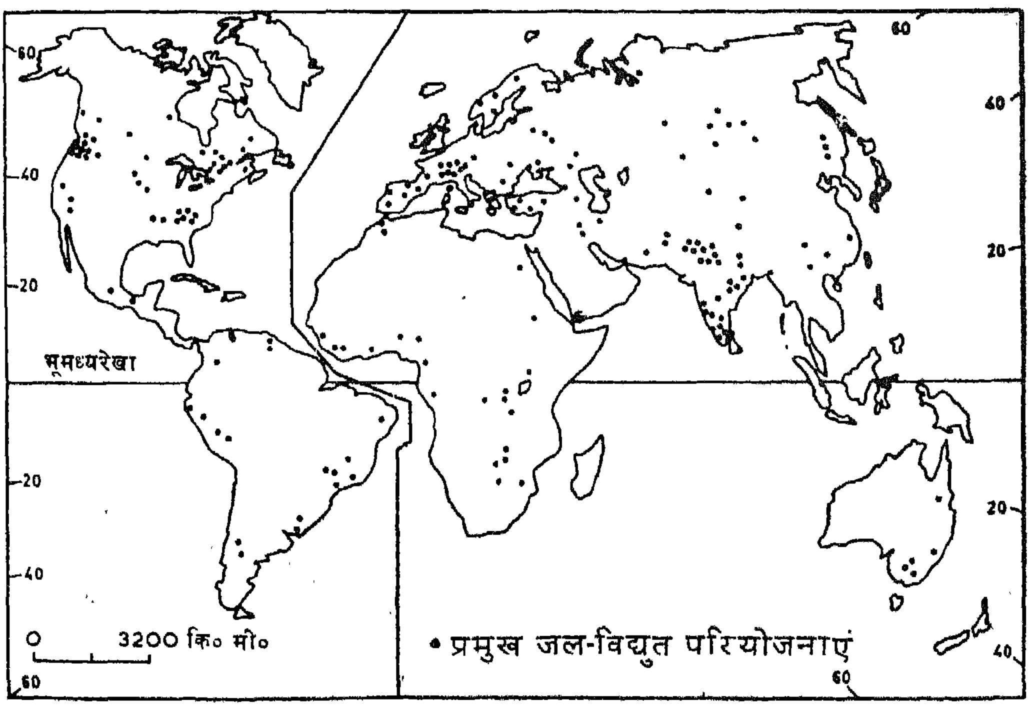
जलसाधन

पानी मनुष्य के लिए अति आवश्यक प्राकृतिक संपदा है। यह हमारे दैनिक जीवन, कृषि, उद्योग एवं मनोरंजन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसका औद्योगिक प्रयोग कुछ कपड़ों को साफ करने, रसायनों को मिलाने और

जल-विद्युत पैदा करने में होता है। यातायात में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। महासागरों और नदियों का जल परिवहन का अत्यन्त सस्ता साधन प्रदान करते हैं। फसलों की सिंचाई के लिए पानी अत्यन्त आवश्यक है।

मनुष्य प्राचीनकाल से ही आटा पीसने और लट्ठों को काटने के लिए नदियों और सरिताओं के बहते हुए जल एवं हिमानियों से पिघलकर बहते हुए जल का उपयोग शक्ति के स्रोत के रूप में करता रहा है। पुराने समय में लोग तेज बहती हुई सरिताओं की धारा में, जल प्रपातों अथवा क्षिप्रिकाओं के नीचे जल पहियों को रखकर चालक शक्ति प्राप्त करते थे। टरबाइन, डाइनिमो और सीमेंट के आविष्कार ने मनुष्य को वह क्षमता प्रदान की है जिससे वह बहते हुए जल से विद्युत का निर्माण करने लगा है और इस प्रकार जल का शक्ति के साधन के रूप में महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है।

जल-विद्युत जिसे 'श्वेत कोयला' भी कहते हैं, ऊर्जा का बहुत ही नायाब साधन है। जल कभी न समाप्त होने वाला साधन है। प्रकृति द्वारा इसका हर समय नवीकरण होता रहता है। यद्यपि जल-विद्युत को प्राप्त करने के लिए जलाशयों, बांधों, शीर्षपाइयों और बिजलीघरों के निर्माण में प्रारंभ में बहुत खर्चा होता है परन्तु इस पर मशीनों को निरन्तर चलाने और उनके रख-रखाव का खर्च अपेक्षाकृत कम आता है और बिजलीघर में कम कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है। जिन देशों में कोयला नहीं मिलता उन्होंने जल-विद्युत की मदद से अपने को औद्योगिक देशों की सूची में लाकर खड़ा कर लिया है। स्केनडिनेविया, स्विटजरलैंड और इटली में न कोयला है और न पैट्रोलियम। परन्तु इन देशों में जल-विद्युत के कारण बहुत अधिक औद्योगिक विकास हुआ है। कनाडा, जापान, आस्ट्रेलिया, कांगो, और ब्राजील अपने उद्योगों के लिए मुख्यत: जल-विद्युत पर निर्भर हैं।



चित्र 6 : विश्व की प्रमुख जल-विद्युत परियोजनाएं

जलशक्ति के वितरण को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारक हैं, प्रचुर मात्रा में पानी का निरन्तर बहना और तीव्र ढाल का होना जिससे जल गिरकर जल-प्रपात का रूप धारण करे। इन कारकों को कई भौगोलिक प्रदेशों में पाया जा सकता है। उत्तरी गोलार्ध में कुछ प्रदेशों की जलवायु आर्द्र है और वहां भारी वर्षा होती है जिससे नदियों और झीलों को पर्याप्त मात्रा में जल मिलता है। फिनलैंड, स्कैन्डिनेविया और उत्तर अमेरिका में ऐसी अनेक झीलें हैं (चित्र 6)। जल-विद्युत उत्पादन का दूसरा क्षेत्र पर्वतीय या पठारी है जहां ढलान तीव्र है और भारी वर्षा होती है। ऊंचे-ऊंचे पर्वतीय भागों जैसे हिमालय, आल्प्स, रॉकी, एन्डीज और पश्चिमी घाट में धरातल की ऊंचाई में हजारों मीटर का अन्तर मिलता है जिससे इन क्षेत्रों में जल का बहाव स्वतः ही बहुत तेज होता है। दुर्भाग्यवश ऊंचे-ऊंचे पर्वतीय भागों में जल-विद्युत के निर्माण में बहुत ही उच्च कोटि की इंजीनियरी योग्यता एवं क्षमता चाहिए और यह केवल उन्हीं देशों में उपलब्ध है जो तकनीकी विकास में बहुत आगे हैं।

जल-विद्युत के निर्माण के लिए तीसरे प्रकार का अनुकूल प्रदेश बड़ी-बड़ी नदियों के मैदान हैं। इनमें नदी का ढलान बहुत ही धीमा होता है और पानी की मात्रा बहुत अधिक होती है। यहां भी नदियों पर बांध बनाकर पानी का तल ऊंचा किया जाता है, और पानी के बहाव को नियंत्रित करके उसे कृत्रिम जल प्रपात के रूप में गिराया जाता है। इसके लिए उच्च कोटि का इंजीनियरी ज्ञान और पूंजी चाहिए। विकासशील देशों में इन दोनों की कमी के कारण बहुत ही कम नदियों को नियंत्रण में लाया गया है। जेमबेजी नदी के विक्टोरिया प्रपात, कटंगा में कांगो नदी और नाइजर नदी का जल-विद्युत के निर्माण में प्रयोग अभी तक नहीं हो पाया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राइन और रोन नदी पर विशाल बांध बनाए गए हैं और इन्होंने इन नदियों को प्रचुर मात्रा में जल-विद्युत उत्पादन के बहुमूल्य स्रोत में परिणत कर दिया है। जर्मनी और आस्ट्रिया से डेन्यूब नदी पर इसी प्रकार के बांध बनाए गए हैं। सोवियत संघ में नीपर और डोन नदियों के जल से प्रचुर मात्रा में बिजली पैदा की जाती है। रूसी लोग वोल्गा और एशिया की अन्य बड़ी नदियों को नियंत्रण करने में लगे हुए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में कयोकुक नामक स्थान पर मिसीसिपी नदी पर बना बांध, कोकोरैडो नदी का हूवर बांध और कोलम्बिया नदी का कौली बांध संसार से विशालतम बांधों में गिने जाते हैं।

भारत में जल-विद्युत विकास के विशाल सम्भाव्य साधन हैं। यहां वर्षा मुख्यतः एक ही ऋतु (गर्मियों) में होती है। इसलिए जल-विद्युत निर्माण करने के लिए नदियों पर बड़े-बड़े बांध बनाना जरूरी हो जाता है। भारत के प्रमुख सम्भाव्य साधन हिमालय प्रदेश, उत्तर-पूर्व की पहाड़ियां और पश्चिमी घाट के क्षेत्रों में हैं। स्वतन्त्रता के बाद भारत में विकसित की गई प्रमुख बहु-उद्देशीय परियोजनाएं ये हैं: भाखरा-नांगल डैम (सतलुज), हीराकुद (महानदी), दामोदर घाटी परियोजना (दामोदर नदी), कोसी परियोजना, कोचना परियोजना और रिहन्द परियोजना। इनके अतिरिक्त बहुत-सी छोटी-बड़ी परियोजनाएं निर्माणाधीन हैं।

जल-विद्युत के विकास के परिणामस्वरूप अब बहुत से उद्योग पर्वतीय क्षेत्रों में स्थापित होने लगे हैं। इसके अतिरिक्त जल-विद्युत ने उद्योगों को पूर्णतया कोयले और पेट्रोलियम पर निर्भर रहने से रोका है। जल-विद्युत के तारों द्वारा दूरस्थ स्थानों तक संचरण के परिणामस्वरूप नये-नये क्षेत्रों और ग्रामों में विविध प्रकार के उद्योग स्थापित हो रहे हैं। इस पर भी जल-विद्युत पूर्णतया कोयले या पेट्रोलियम का स्थान नहीं ले सकती और न ही यह बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों की संकुलता समाप्त कर सकेगी।

अभ्यास

समीक्षात्मक प्रश्न

1. निम्न प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :
   (i) संसार के वन-साधनों का भौगोलिक वितरण बताइए।
   (ii) वनों का क्षेत्र किन कारणों से कम हो रहा है ? इस समस्या के समाधान के लिए क्या-क्या उपाय अपनाने चाहिएं ?
   (iii) संसार के प्रमुख मत्स्य क्षेत्रों के नाम बताइए और वे आस-पास के देशों में रहने वाले लोगों के धंधों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।
   (iv) (अ) जापान में मछली का प्रति व्यक्ति उपभोग ऊंचा क्यों है ?
   (ब) उष्णकटिबंधीय अक्षांशों में व्यापारिक मत्स्य-क्षेत्र क्यों नहीं पाए जाते ?
   (v) निम्न धातुओं में से प्रत्येक के उपयोग बताइए :
   (क) लोहा, (ख) तांबा, (ग) अल्यूमीनियम, (घ) यूरेनियम तथा (ङ) थोरियम
   (vi) कोयले के निम्नलिखित प्रकारों में अंतर स्पष्ट करिए :
   (क) बिटुमिनस, (ख) लिगनाइट, (ग) कोकिंग कोल, (घ) पीट
   (vii) यूरोप अथवा उत्तरी अमेरिका के किसी बड़े औद्योगिक क्षेत्र की स्थिति पर विचार कीजिए जो पूर्णतया कोयला क्षेत्रों से संबंधित हो।
   (viii) संसार के जलशक्ति साधनों का वितरण बताइए और उनके असमान वितरण का कारण भी समझाइए।
   (ix) संसार में कोणधारी वनों के वितरण का वर्णन कीजिए।
   (x) संसार के मानचित्र की सहायता से, उन प्रमुख क्षेत्रों की स्थिति स्पष्ट कीजिए जो शीतोष्ण तथा उष्ण कटिबन्धीय वनों के अंतर्गत आते हैं ?
   (xi) किन्हीं दो ऐसे क्षेत्रों का चयन कीजिए जो मत्स्य के लिए विख्यात हैं। इनको जो भौगोलिक लाभ हैं, उन्हें स्पष्ट करें।
   (xii) उत्तरी-पश्चिमी अंध-महासागर तथा उत्तरी-पश्चिमी प्रशांत महासागर के प्रमुख मत्स्य क्षेत्रों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए ?
   (xiii) खनन को 'लुटेरा उद्योग' क्यों कहा जाता है ? कौन से खनिजों के निकट भविष्य में समाप्त हो जाने का भय है ? इनके संरक्षण के लिए कौन से पग उठाए जाएं जिससे इनका आर्थिक उपयोग अधिक समय तक किया जा सके।
   (xiv) "कोयला भूतकाल का ईंधन है, पैट्रोलियम वर्तमान का और विद्युत-शक्ति भविष्य का ईंधन है।" इस कथन की व्याख्या करें।

ज्ञात कीजिए

खनिजों का संरक्षण उतना ही महत्वपूर्ण है जितना मृदा तथा जल का संरक्षण। इस संबंध में भारत सरकार ने क्या-क्या कदम उठाए हैं, उन्हें ज्ञात कीजिए।

मानचित्र कार्य

संसार के रेखा मानचित्रों पर निम्नलिखित दिखाइए :

(i) दामोदर कोयला-क्षेत्र।
(ii) नारथम्बरलैंड कोयला-क्षेत्र।
(iii) पैनसिलवेनिया कोयला-क्षेत्र।
(iv) डोनेटज़ कोयला-क्षेत्र।

अतिरिक्त अध्ययन

1. हंटिंगटन, ई०, **प्रिंसिपिल्स आफ ह्यूमन ज्योग्राफी**, न्यूयार्क, 1953
2. मोरगन, जी० सी०, **ह्यूमन एंड इकोनामिक ज्योग्राफी**, आक्सफोर्ड
3. परपिलन, ए० बी०, **ह्यूमन ज्योग्राफी**, लांगमैन ग्रुप लि० लन्दन, 1966

अध्याय 3

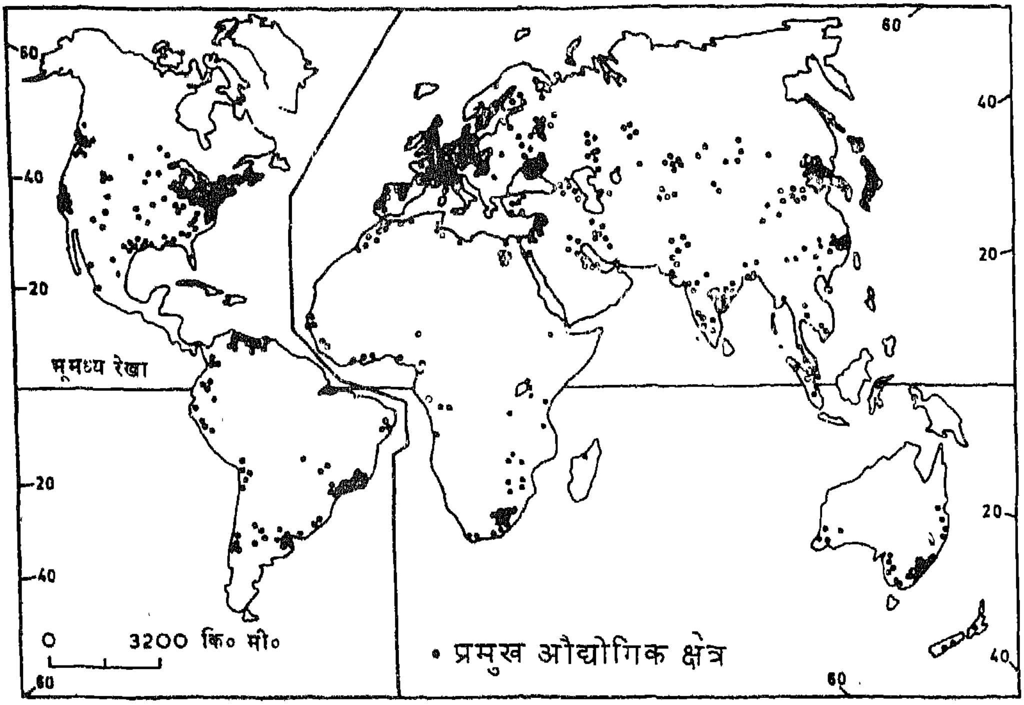
साधन-आधार उत्पादन संकुल एवं साधनों का संरक्षण

विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करना मनुष्य की एक अति आवश्यक क्रिया है। इस क्रिया पर करोड़ों लोग अपने भोजन, आवास, वस्त्र, काम करने के विविध औजार और आमोद-प्रमोद की वस्तुओं के लिए निर्भर रहते हैं। वस्तुओं का निर्माण घरों में, छोटे-छोटे कारखानों में और बड़ी-बड़ी आधुनिक जटिल फैक्टरियों अथवा मिलों या औद्योगिक संकुलनों में होता है। औद्योगिक भूगोल में कच्चे माल पर आधारित औद्योगिक संकुल एक नया शब्द है जिसका प्रयोग रूस के भूगोल वेत्ता गत दस शताब्दी से कर रहे हैं। रूसियों ने सोवियत संघ के विशाल साधन विभव को ध्यान में रखकर विचार किया कि देश के विभिन्न भागों का समाकलित एवं संतुलित विकास करने के लिए प्रत्येक भाग में उपलब्ध कच्चे माल पर आधारित उद्योग स्थापित किए जाएं। आजकल साधन-आधार प्रादेशिक संकुल शब्द को रूसी लोग नये अर्थ में प्रयोग कर रहे हैं और संसार के अधिकतर नियोजक इस प्रकार के संकुलो पर बराबर ध्यान देते हैं। फिर भी गत वर्षों में जो बहुत से उद्योग स्थापित किए गए हैं उनके स्थानीकरण में उसी क्षेत्र में उपलब्ध कच्चे माल पर विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है। आगे की पंक्तियों में कच्चे माल पर आधारित संसार के कुछ प्रमुख प्रादेशिक संकुलों का विवरण दिया जा रहा है।

यूरोप के उत्पादन संकुल

यूरोप के प्रमुख उत्पादन संकुल खनिज साधनों, वनसाधनों, कृषि साधनों और शक्ति के साधनों के निकट स्थित हैं। स्वीडन में टिम्बर प्रचुर मात्रा में मिलने के कारण यहां फर्नीचर, कागज, कागज की लुगदी बनाने और रासायनिक उद्योगों का विकास हुआ। ब्रिटेन के अधिकतर औद्योगिक संकुलों का संबंध वहां के कोयला क्षेत्रों से है। जर्मन संघीय गणराज्य में अधिकतर उत्पादन संकुल रूर की घाटी में केन्द्रित हैं। फ्रांस के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र, लोरेन और वृहत पेरिस में प्रमुख उत्पादन संकुल लौह-अयस्क के प्रगलन, रासायनिक, कृषीय और वनीय कच्चे माल पर आधारित हैं।

यूरोप के अन्य प्रमुख उत्पादन संकुल बेल्जियम में लौज और एंटवर्प; नीदरलैण्ड में एमस्टर्डम और स्वीडन में स्टाकहोम में हैं। नार्वे का प्रमुख उद्योग लोहा, समुद्र और वन के उत्पादों पर आधारित हैं। इनमें से मुख्य हैं



चित्र 7 : औद्योगिक संकुलों का विश्व वितरण

जलयान निर्माण, मछलियों का संसाधन और उनकी डिब्बा बन्दी एवं कागज और कागज की लुगदी के उद्योग जो मुख्यत: ओसलों में और उसके आसपास हैं। डेन्मार्क के कोपेन हेगन नगर में डेरी, कृषीय यंत्र एवं रासायनिक उद्योग केन्द्रित हैं। स्वीटजरलैण्ड में प्रमुख उद्योग डेरी निर्माण, विद्युत इंजीनियरी की वस्तु निर्माण, रसायन और वस्त्रनिर्माण हैं। इटली में उद्योगों का सकेन्द्रण उत्तर में लोम्बर्डो के मैदान और दक्षिण में नेपिल्स के आसपास हैं। पोलैण्ड के प्रमुख औद्योगिक संकुल सालीशिया के कोयला क्षेत्र के निकट और वारसा में हैं जो स्थानीय कृषीय, वनीय और खनिज साधनों पर आधारित हैं।

उत्तर अमेरिका के उत्पादन संकुल

संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा औद्योगीकरण में बहुत आगे हैं। इन देशों में प्राकृतिक साधन पर आधारित बहुत से औद्योगिक संकुल हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका शक्ति, खनिज, वन, कृषि और मत्स्य साधनों में विपुल है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 6 प्रमुख उत्पादन संकुल हैं। उनके नाम हैं, (1) उत्तरी-पूर्वी न्यू इंगलैंड के वस्त्र निर्माण, जूता उद्योग, मछलियों की डिब्बा बंदी और जलयान निर्माण उद्योग। (2) मध्य अटलांटिक क्षेत्र में न्यूयार्क फिलाडेल्फिया और बाल्टीमोर राज्यों के औद्योगिक संकुल। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के उद्योग हैं उनमें से मुख्य हैं धातुशोधन, रसायन, विद्युत उपस्कर और भोजन संसाधन (3) पिट्सबर्ग और झीलों का प्रदेश, जहां लोहा, इस्पात और इंजीनियरी उद्योग के नगरों की एक श्रृंखला है। (4) डेट्राइट उत्पादन संकुल जिसमें विशेषतया मोटर कारें, ट्रक और वेगन निर्माण किए जाते हैं। (5) मिशिगन झील का औद्योगिक संकुल, जिसमें मुख्यत: शिकागो में लोह-इस्पात उद्योग

और मांस की डिब्बा बंदी उद्योग केन्द्रित हैं और (6) दक्षिणी अपेलेशियन उत्पादन संकुल बरमिंघम में हैं। बरमिंघम नगर में और इसके आस-पास कोयला तथा पैट्रालियम एवं लौह अयस्क मिलता है। यहाँ कपास और अनाज का उत्पादन भी होता है। इसीलिए संकुल के प्रमुख उद्योग लोहा-इस्पात, सूती वस्त्र निर्माण और भोजन संसाधन हैं।

कनाडा के प्रमुख औद्योगिक संकुल विशाल झीलों के प्रवेश से लेकर मांनट्रियल तक फैले हैं। आरा मिलें, कागज और [illegible] की लुगदी बनाने, इंजीनियरी सामान, मोटरकार, उर्वरक, सीमेंट, जलयान निर्माण, भोजन संसाधन, तेल परिष्करण, रेल इंजन बनाना एवं वस्त्र निर्माण इस प्रदेश के प्रमुख उद्योग हैं। सस्ती जल-विद्युत, लोह-अयस्क, कृषि उत्पाद एवं कोणधारी वनों से मुलायम लकड़ी का मिलना कुछ ऐसे कारक हैं जो कनाडा के उत्पादन सकुलों के विकास में मदद दी है।

सोवियत संघ के उत्पादन संकुल

सोवियत संघ के प्रमुख उत्पादन संकुल चार हैं: (1) मास्को क्षेत्र (2) यूक्रेन औद्योगिक प्रदेश (3) यूराल औद्योगिक प्रदेश एवं (4) कुजवास औद्योगिक परिष्करण क्षेत्र। मास्को संकुल सोवियत संघ का सबसे पुराना औद्योगिक क्षेत्र है। इसके अंतर्गत मास्को, गोर्की और तुला औद्योगिक नगर सम्मिलित हैं। इस संकुल के प्रमुख उद्योग वस्त्र निर्माण, रसायन, भारी इंजीनियरी सामान, इस्पात निर्माण, रेल का सामान, वायुयान एवं भोजन संसाधन हैं। यूक्रेन के डोनवास क्षेत्र में बहुत से बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र हैं जिनमें प्रमुख उद्योग लोहा-इस्पात, भारी मशीनी सामान, रसायन एवं धातु प्रगलन के उद्योग हैं। यूराल क्षेत्र के उत्पादन संकुल में बहुत से लोहा-इस्पात निर्माण के केन्द्र हैं, इनमें धातु-शोधन एवं भारी मशीनी सामान, रसायन और तेल परिष्करण शालाएं हैं। इस संकुल के उद्योगों के लिए कच्चा माल यूराल पर्वत से मिलता है और कोयला तथा कोकिंग कोयला कुजवास और कारागांडा क्षेत्रों से मंगाया जाता है। कुजवास संकुल के प्रमुख उद्योग लोहा-इस्पात, धातु-शोधन, इंजीनियरी सामान का निर्माण एवं रसायन है।

एशिया के उत्पादन संकुल

यद्यपि एशिया का आधार बहुत विशाल है और इस में कृषि, वन, खनिज और मत्स्य साधन विपुल हैं फिर भी यहां प्राकृतिक साधनों पर आधारित औद्योगिक संकुल बहुत ही कम हैं। जापान, हांगकांग, कोरिया एवं ताईवान ही एशिया के कुछ देश हैं जहां औद्योगिक संकुल विभिन्न प्रकार के पाये जाते हैं। चीन ने गत बीस वर्षों में अपने कई औद्योगिक संकुलों का विकास किया है। जापान विश्व का एक अत्यंत महत्वपूर्ण औद्योगिक देश है परन्तु इसके अधिकांश उद्योग आयातित कच्चे माल पर आधारित हैं। जापान में औद्योगिक पट्टी होंशू द्वीप के पूर्वी भाग, क्यूशू के उत्तरी भाग और शिकोकू में जापान सागर के किनारे फैली है। इस पट्टी में विभिन्न प्रकार के उद्योग हैं। इनमें से प्रमुख है, विभिन्न प्रकार की मशीन निर्माण, वस्तु निर्माण, विद्युत वस्तुओं का निर्माण, परफ्यूम, खिलौने, कागज, कागज की लुगदी, मछलियों की डिब्बाबंदी, भोजन संसाधन और जलयान निर्माण उद्योग। जापान लोह अयस्क में निर्धन है इसलिए इसे लोहा खनिजों का आयात करना होता है। जापान में औद्योगिक संकुलों के विकास के कुछ अन्य अनुकूल कारक हैं। इनमें से सस्ती जल-विद्युत का मिलना, कुशल श्रमिकों की पर्याप्त उपलब्धि और देश की अनुकूल स्थिति मुख्य हैं। दक्षिण पूर्व एशिया में सिंगापुर एक औद्योगिक संकुल है। मलेशिया में भी कुछ औद्योगिक संकुलों का विकास हो रहा है। मध्य पूर्व में खनिज तेल का शोधन एक महत्वपूर्ण उद्योग है। ईरान अपने खनिज तेल साधन के आधार पर देश के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में रसायन उद्योग का विकास कर रहा है।

स्वतंत्रता के बाद भारत ने भी लोहा-इस्पात उद्योग, रसायन एवं भारी विद्युत-उद्योग की बुनियाद डाली है। इसके अतिरिक्त सूती वस्त्र उद्योग भारत का अत्यंत पुराना उद्योग है। साथ ही पश्चिम बंगाल, बिहार, गुजरात और महाराष्ट्र तथा उत्तर-पूर्व के पहाड़ी राज्यों में कच्चे माल के बहुत बड़े भंडार हैं। इन्हें प्रयोग करके प्रादेशिक संकलों का विकास करना आवश्यक है। भारत के विभिन्न

भागों में अलग-अलग प्रादेशिक संकुल उभर रहे हैं। भारत का दामोदर घाटी क्षेत्र, कोयला के खनन और लोहा-इस्पात का महत्वपूर्ण उत्पादन संकुल है। सिंहभूमि का लोह-अयस्क, छोटानागपुर के बाक्साईट, तांबा और अभ्रक के साधनों ने जमशेदपुर एवं दामोदर घाटी में अनेक उद्योगों के विकास में सहायता दी है। बम्बई के आसपास विकसित उत्पादन संकुल मुख्यत: कृषि उत्पादनों पर आधारित है। दक्षिण पठार के उत्तरी-पश्चिमी भाग में कपास पैदा होती है जो बम्बई की कपड़ा मिलों के लिए महत्वपूर्ण कच्चा माल है। बम्बई में बहुत से छोटे-छोटे उद्योग भी हैं जिनमें से प्रमुख हैं—पीतल के बर्तन, चांदी के बर्तन-आभूषण के निर्माण, हाथीदांत की वस्तुएं, गलीचे एवं बहुत से हस्त शिल्प के काम। कलकत्ता-हावड़ा क्षेत्र में जूट की सैकड़ों मिलें हैं।

दक्षिणी महाद्वीपों के उत्पादन संकुल

आस्ट्रेलिया अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में बड़े-बड़े औद्योगिक संकुलों की कमी है। इन महाद्वीपों में कृषि एवं अन्य प्राथमिक उद्योग अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं। आस्ट्रेलिया के मुख्य उत्पादन संकुल दक्षिण पूर्व में हैं। सिडनी के आसपास कोयला और लोहा के विशाल स्रोत हैं जिन्होंने इस क्षेत्र के लोहा-इस्पात उद्योग को विशेषत: न्यूकासिल में आधार प्रदान किया है। इस क्षेत्र के अन्य प्रमुख उद्योग मोटर-कार, वायुयान, जलयान निर्माण और रसायन हैं। मैलबोर्न का रसायन उद्योग, मोटरकार उद्योग एवं रेल इंजन निर्माण उद्योग महत्वपूर्ण हैं। पर्थ में कृषि पर आधारित उद्योगों का बाहुल्य है। दक्षिण अमेरिका में अर्जेनटीना एवं ब्राजील के कुछ भागों में उत्पादन संकुल हैं। अर्जेनटीना का प्रमुख औद्योगिक संकुल प्लेट ऐश्चुअरी के किनारे है और यहां के मुख्य उद्योग वस्त्र निर्माण, मांस की डिब्बा बंदी, दुग्ध उत्पाद, भोजन संसाधन, इस्पात, इंजीनियरी सामान, मोटर-कार निर्माण और रसायन हैं। ब्राज़ील में प्रमुख औद्योगिक संकुल साओपालो और रिओडीजैनेरो में हैं। यहां के प्रमुख उद्योग लोहा-इस्पात, रसायन, मोटरकार निर्माण, कागज निर्माण, सीमेंट, जलयान एवं वायुयान निर्माण हैं।

अफ्रीका में उत्पादन संकुलों की बहुत कमी है क्योंकि यह महाद्वीप औद्योगिकरण में बहुत पिछड़ा हुआ है। अफ्रीका के प्रमुख उद्योग कृषि अथवा खनन से संबंधित हैं। उदाहरणार्थ जाम्बिया और कटंगा के तांबा प्रगलन उद्योग और रबर तथा तेल-ताड के फलों का संसाधन। अफ्रीका महाद्वीप में दक्षिण अफ्रीका सबसे अधिक औद्योगीकृत है। इस देश में सोना, कोयला, हीरा और लोह-अयस्क के विशाल भंडार हैं जिन्होंने इस देश के लोहा-इस्पात उद्योग, इंजीनियरिंग उद्योग, रेल के इंजन निर्माण, रसायन, वस्त्र निर्माण एवं हल्की मशीन निर्माण तथा हीरे की कटाई को आधार प्रदान किया है। नाईजीरिया में खनिज तेल मिलता है जिसने इस देश के पैट्रो-रसायन उद्योगों को आधार प्रदान किया है। अफ्रीका के अन्य देशों में औद्योगिक विकास मुख्यत: राजधानी वाले नगरों एवं पत्तनों पर हुआ है।

साधनों का संरक्षण

साधनों के संरक्षण से विभिन्न लोगों को अलग-अलग अर्थ मिलता है। कुछ लोग इसका अर्थ केवल जंगली पशुओं की रक्षा से लेते हैं। कुछ लोग यह समझते हैं कि वनों, मत्स्य क्षेत्रों, कृषि-भूमि एवं शक्ति तथा खनिज साधनों से अधिकाधिक उपयोगी वस्तुएं प्राप्त की जाएं। परन्तु अब साधनों के संरक्षण का अर्थ है, वातावरण को इस बुद्धिमानी से प्रयोग किया जाए जिससे लोगों का जीवन-स्तर ऊपर उठे और साथ ही आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए भी वह सुरक्षित रह सके। संरक्षण का अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम उपलब्ध साधनों का प्रयोग न करें। वरन इसका मूल उद्देश्य यह है कि हम विभिन्न साधनों का इस होशियारी से प्रयोग करें कि उसमें बरबादी कम से कम हो और वे साधन हमारे लिए अधिकाधिक समय तक चल सकें।

संरक्षण का महत्व

मनुष्य के जीवन और उसकी आने वाली पीढ़ियों के लिए साधनों का संरक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारा जीवन वायु, जल, मृदा, चट्टानों, वन, जलाशयों आदि के उपयोग पर

निर्भर हैं। संरक्षण का अन्ततः उद्देश्य यही है कि यह सभी वस्तुएं मानव को अच्छे से अच्छे स्तर पर मिल सकें। अतः साधनों के संरक्षण आर्थिक सौंदयत्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से मानव के लिए मूल्यवान है।

संरक्षण की प्राचीन विधियां

मनुष्य की सभ्यता के विकास से ही उसने संरक्षण की कुछ विधियों को अपनाया है। जानवरों की कुछ जातियों की हत्या करना कुछ धर्मों में निषेध है। बहुत से धर्मों में वनो को काटना निषेध है। इसी प्रकार कुछ पवित्र पत्थरों और चट्टानों तथा पर्वतों को हानि पहुंचाना बुरा समझा जाता है। प्राचीन काल में पहाड़ी ढालों पर सीढ़ी नुमा खेत लगाने की कुशलता मानव ने सीख ली थी जिससे वह मिट्टी के कटाव को रोक पाता था और साथ ही ढालों पर तेज बहते हुए वर्षा के जल को सिंचाई के लिए प्रयोग कर लेता था। सभ्यता का जैसे-जैसे विकास हुआ मानव ने भूमि उपयोग के अच्छे-अच्छे ढंग ढूंढ़ निकाले और साथ ही वनों तथा जानवरों की रक्षा के नये तरीके प्रयोग में लाए। यदि भारत, जापान के और चीन की कृषीय दृश्य भूमि को देखा जाए तो इससे ज्ञात होगा कि मनुष्य प्राचीन समय से ही कितनी सुन्दरतम विधियों द्वारा मृदा साधनों का संरक्षण कर रहा है। अनादिकाल से मनुष्य नील घाटी के सिंचित क्षेत्रों, उत्तर-भारत के जलोढ़ मैदानों और महाराष्ट्र के काली मिट्टी के क्षेत्रों की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के लिए किस होशियारी से कोशिश कर रहा है।

संरक्षण का आधुनिक इतिहास

संरक्षण का आधुनिक इतिहास वातावरण को कानून द्वारा रक्षा करने एवं जन साधारण का संरक्षण विधियों में अधिकाधिक रुचि लेने से प्रारम्भ होता है। साधनों का संरक्षण करने एवं वातावरण की समस्याओं का समाकलित रूप में निदान करने के लिए विभिन्न देशों की सरकारों ने एक विशेष मंत्रलाय खोल दिया है। वातावरण के प्रमुख साधन जिनका संरक्षण एवं प्रबंध अत्यन्त आवश्यक है, उनके नाम हैं मृदा, जल, वन, वन्य प्राणी (पशु-पक्षी एवं मछलियां), शक्ति के साधन, धात्विक एवं अधात्विक खनिज, मनोरंजन स्थल एवं मानव का जीवन।

मृदा का संरक्षण

पृथ्वी पर पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के जीवन के लिए मृदा अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न प्राणियों के लिए यह समुद्री एवं मीठे जल के पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण स्रोत है। पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग मिट्टियां पाई जाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि जिन चट्टानों और खनिजों से मिट्टी बनी है वे स्थान-स्थान पर बदलते रहते हैं। इसके अतिरिक्त जलवायु, वनस्पति और जीव-जन्तु जो मिट्टी में और उसके ऊपर रहते हैं वे स्थान-स्थान पर बदलते रहते हैं। फसलें, चारा तथा पेड़-पौधों के उगने के लिए मिट्टी अति आवश्यक है। इसलिए यह जरूरी है कि मिट्टी जल द्वारा बह [illegible] उड़ाकर अन्यत्र कहीं ले जाई न जा सके। उसके कटाव की दर उसके नवीकरण से अधिक नहीं होनी चाहिए ताकि उसकी उर्वरा शक्ति निरन्तर बनी रहे और उसके भौतिक गुण और रासायनिक संगठन निरन्तर फसलें उगाने के अनुरूप बने रहें। अतः मृदा के प्रबन्ध का तात्पर्य यही है कि मिट्टी की दशाएं हर समय अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के अनुकूल बनी रहनी चाहिए।

मृदा के समाप्त होने एवं अपरदन के लिए कई भौतिक एवं सांस्कृतिक कारण उत्तरदायी हैं। इनमें से प्रमुख हैं, भूमि का ढलान वर्षा, मौसम, तापमान, पवन, हिमपात और मानव द्वारा विविध कार्य जैसे वनों को साफ करना, अति चराई और अवैज्ञानिक खेती। मिट्टी का एक बार अपरदन हो जाने पर उसे फिर से बनाना बहुत कठिन है क्योंकि मिट्टी की पतली-सी परत बनने में सैकड़ों हजारों वर्षों का समय लगता है। मिट्टी का सबसे अधिक कटाव उस समय होता है जब वर्षा का बहता हुआ जल भूमि पर अविनालिकाएं बनाता रहता है और कालान्तर में ये अविनालिकाएं बड़ी और गहरी हो जाती हैं। इनके द्वारा मिट्टी के सारे पोषक तत्व बह जाते हैं और सारी भूमि बेकार हो जाती है। इसलिए मृदा अपरदन को रोकने और मृदा की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के लिए विश्व के विभिन्न भागों में अलग-अलग विधियां अपनाई

जाती हैं। इसमें से प्रमुख विधियां यह हैं, अति चराई का नियंत्रण, फसलों का हेरफेर, थोड़े समय में उग आने वाली फसलों का पैदा करना, भूमि को कभी भी वनस्पति विहीन न करना, स्थानान्तरी कृषि का नियंत्रण, अविनालिकाओं को भरना, ढालों पर समोच्चरेखीय जुताई करना तथा सीढ़ीदार खेत बनाना। पवन द्वारा मिट्टी के उड़ने को रोकने के लिए अवरोध लगाना जिसमें पवन की गति कम हो सके। भूमि को पवन की दिशा के समकोण पर जोतना जिससे पवन द्वारा अपरदन कम हो सके।

यद्यपि संसार के लगभग सभी विकासशील देशों में मिट्टी के अपरदन को रोकने के लिए अनेकों विधियां अपनाई जा रही हैं लेकिन अब भी इन देशों में मिट्टी का कटाव एक महत्वपूर्ण समस्या बनी हुई है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में जहां भारी वर्षा होती है और भूमि का ढाल तेज है एवं जहां निरन्तर खेती करना अति आवश्यक है मिट्टी का कटाव एक बहुत बड़ी समस्या है। यह समस्या मरुस्थलों के सीमांतों पर भी बनी हुई है। अत: मिट्टी के संरक्षण के लिए इन प्रदेशों की सरकारों ने सुनियोजित कार्यक्रम अपनाए हैं, जिससे समस्या का निदान स्थाई रूप से हो सके।

जल और वायु का संरक्षण

मानव को जल की आवश्यकता अनेक कार्यों में होती है, इसी प्रकार पालतु पशुओं के लिए, फसलों की सिंचाई के लिए उद्योगों, यातायात, सफाई, मल-मूत्र की बस्तियों से निकालने और जल-विद्युत का निर्माण करने के लिए अधिकाधिक मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। अत: मानव जीवजंतु एवं वनस्पति या पेड़-पौधों को जीवित रखने के लिए जल का संरक्षण अति आवश्यक है। उत्तम प्रकार के जल के विशेष गुण यह हैं कि वह गंदगी अथवा कूड़ा-करकट से मुक्त हो, उसमें बदबू न आती हो, उसमें रासायनिक अशुद्धियां न हों और शरीर को हानि पहुंचाने वाले कीड़े-मकोड़े न हों। विभिन्न देशों की सरकारें और स्थानीय प्रशासन इस बात का हर समय प्रयत्न करते हैं कि उनके निवासियों को हर समय शुद्ध जल मिल सके। परन्तु इस पर भी अफ्रीका और एशिया तथा दक्षिण अमेरिका के ग्रामीण क्षेत्रों में इस दिशा में बहुत कुछ सुधार करना अभी बाकी है।

वैज्ञानिकों का मत है कि स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध वायु नितांत आवश्यक है। वायु का प्रदूषण कई कारणों से होता है जिनमें से बहुत से कार्य मानव द्वारा किए जाते हैं और कुछ कार्य प्रकृति द्वारा। मरुस्थलीय क्षेत्रों से आने वाली आंधी, दावाग्नि के कारण उठता हुआ धुआं कुछ ऐसे प्राकृतिक कारण हैं जो वायु का प्रदूषण करते हैं। शहरी क्षेत्रों में कल और कारखानों से निकला धुआं, मोटर गाड़ियां और इंजनों का धुआं एवं रसोई घरों का निकला धुआं वायु का प्रदूषण कर रहा है। इन सभी का प्रभाव जनसाधारण के स्वास्थ्य पर पड़ता है। वायु प्रदूषण को रोकने का काम यद्यपि बहुत कठिन है फिर भी यह असंभव नहीं है। प्रत्येक देश की सरकार वायु प्रदूषण को रोकने के लिए जनसाधारण में इसके प्रति चेतना पैदा कर रही है और इस दिशा में कुछ कानून भी बनाए गए हैं। वायु प्रदूषण को रोकना हम सबका परम कर्तव्य है। हम कोई भी ऐसा कार्य न करें जिससे वायु का प्रदूषण बड़े पैमाने पर हो।

वनों का संरक्षण

टिम्बर, जलाने के लिए लकड़ी, कागज, कागज की लुगदी, भवन निर्माण कार्यों के लिए लकड़ी एवं कृत्रिम रेशों की विश्व में द्रुतगति से मांग बढ़ने के परिणामस्वरूप वनों का शोषण बड़ी तीव्रता से हो रहा है। मनुष्य द्वारा वनों के दुरुपयोग के अतिरिक्त वनों के ह्रास में कुछ अन्य कारक भी योगदान देते हैं। उनमें से प्रमुख हैं, दावाग्नि, कीड़े-मकोड़े, वनों की बीमारियां और तूफान। वनों के महत्व के जानकर हाल ही में विभिन्न देशों ने वनों को काटने और उन्हें बरबाद होने से बचाने के लिए कुछ वैज्ञानिक नीतियां अपनाई हैं। इन नीतियों के द्वारा वनों का संरक्षण करने के साथ उनका बुद्धिमानी से उपयोग करते हुए उनसे अधिकतम लाभ उठाना है। दावाग्नि वनों की सबसे बड़ी दुश्मन है। प्रति वर्ष इसके द्वारा वनों के बड़े-बड़े क्षेत्र बरबाद हो जाते हैं। यदि पर्याप्त सावधानियां बरती जाएं तो वनों को दावाग्नि से बचाया जा सकता है। वनों में आग लगने के अधिकतर कारण इंजन

या आरामिलों से चिनगारी या अंगारे का गिरना अथवा शिकारियों और पिकनिक पर आये लोगों की लापरवाही होती है। उचित सावधानियां अपनाने पर इन घटनाओं से बचा जा सकता है। शुष्क ऋतु में मनोरंजन करने वाले व्यक्तियों को वनों में आने की मनाही होनी चाहिए। वनों के कूड़ा-करकट को वर्षा या हिमपात के बाद जलाया जाए। आरा कारखानों में लकड़ी की बरबादी को कम किया जाए। आरा मिलों की रद्दी को जलाने के बजाय उसे ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाए या उससे खिलौने और औजारों के हेन्डिल बनाएं जाएं। वनों की लकड़ी को कीड़ों-मकोड़ों से बचाने के लिए रसायनों का प्रयोग किया जाए। वनो का प्रतिरोपण बड़े पैमाने पर किया जाए जिससे आगे आने वाली पीढ़ियां भी वनों से पर्याप्त लाभ उठा सकें।

भारत में भी अन्य देशों की भांति वनों के अनुचित प्रयोग के बुरे परिणाम हुए हैं। राजस्थान के मरुस्थल का होना मुख्यतः मनुष्य की असावधानी का परिणाम है। सैहाद्री पर्वतों का अधिकतर भाग अब शुष्क और वनस्पति विहीन हैं। महाराष्ट्र का अधिकतर भाग घास-स्थल था, परन्तु अति चराई एवं जुताई के कारण वह गुल्म भूमि में परणित हो गया है। वैज्ञानिकों का मत है कि प्रत्येक देश में कम से कम एक तिहाई भूमि पर वन होने चाहिए। भारत अपने वनीय क्षेत्र को बढ़ाने का हर संभव प्रयास कर रहा है।

वन्य प्राणी और मत्स्य का संरक्षण

मनुष्य की उन्नति और उसकी सभ्यता के विकास में वन्य प्राणी और मत्स्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान मशीनी युग में भी हमारा काम बिना गाय-बैल के नहीं चल सकता। मनुष्य द्वारा परिस्थितिक सन्तुलन अतिक्रमण के परिणामस्वरूप जानवरों की अनेक जातियां विलुप्त हो गई हैं और कई जातियों के जीवों की संख्या बड़ी तेजी से कम हो रही है। उष्ण एवं उपोष्ण प्रदेशों के अर्धशुष्क क्षेत्रों, भूमध्य सागरीय देशों और पश्चिम एशिया में अति चराई होती है। इसके दूसरी ओर यूरोप, अमेरिका और आस्ट्रेलिया के विकसित देशों में पशुओं की अच्छी देखभाल की जाती है और यहां घास या चरागाह को बरबाद नहीं होने दिया जाता। हमारे देश में पशुओं की नस्ल को सुधारने की बड़ी आवश्यकता है। इसके लिए उनके शिकार पर पाबन्दी लगा देनी चाहिए।

मत्स्य के अन्तर्गत मछलियों का पकड़ना, सीपों का एकत्र करना एवं स्तनधारी जीवों जैसे-ह्वेल एवं सील का शिकार करना आते हैं। मत्स्य हमारे पौष्टिक भोजन का महत्वपूर्ण स्रोत है अतः उनका संरक्षण मनुष्य के वर्तमान एवं भविष्य के जीवन के लिए अति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त मत्स्य उद्योग की उत्पादकता बढ़ाने से इसके व्यापार में बढ़ोतरी होने के साथ राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी और लोगों का जीवन-स्तर भी उठेगा। मत्स्य-संरक्षण पर कई पहलुओं से कार्य करना चाहिए। सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि मत्स्य-क्षेत्र को ढूंढ़ा जाए और उसमें मछलियों की अनुमानित मात्रा का अनुमान लगाया जाए। इसके बाद यह भी मालूम करना जरूरी है कि उस क्षेत्र से प्रतिवर्ष अधिकतम कितनी मात्रा में मछलियां पकड़ी जा सकती हैं और मछलियों का यह भंडार कब तक चल सकता है। निर्धारित मात्रा से अधिक मछलियों के पकड़ने पर रोक लगानी चाहिए। साथ ही मत्स्य स्रोत का निरीक्षण एवं नियंत्रण किया जाए जिससे उनका परिस्थितिक सन्तुलन न बिगड़ सके और न ही उनका प्रदूषण हो।

खनिज साधनों का संरक्षण

खनिज संपदा बन साधनों से भी अधिक महत्वपूर्ण है। अतः उसका संरक्षण बड़ी सावधानी से करना चाहिए। वनों का नवीकरण होता रहता है, लेकिन खनिज एक बार प्रयोग कर लेने पर समाप्त हो जाते हैं। उनके नवीकरण में लाखों-करोड़ों वर्षों का भूवैज्ञानिक समय लगता है। खनिज साधनों का संरक्षण कई कारकों पर निर्भर करता है। उनमें से प्रमुख हैं, सांस्कृतिक एवं तकनीकी विकास का स्तर, खनिज का मूल्य, खनिज-क्षेत्र की यातायात और बाजार के संदर्भ में स्थिति, खनिजों का खनन करने की विधियां, खनिज के संबंध में सरकार की नीति, खनिज अयस्क में धातु का संकेन्द्रण, खनिज की भूमि के नीचे गहराई, जलवायु और मजदूरी।

कोयले का संरक्षण : कोयले का उत्पादन एवं

उसका उपयोग गत सैकड़ों वर्षों से हो रहा है। विश्व में कोयले के ज्ञात भंडार सीमित हैं। उन्हें प्रयोग करने के बाद फिर से नहीं बनाया जा सकता। कोयले का खनन यदि अधिक सावधानी और वैज्ञानिक विधियों द्वारा किया जाए तो कोयले की बहुत बड़ी मात्रा में हो रही बर्बादी को कम किया जा सकता है। अब प्रकाश और शक्ति के लिए बड़ी मात्रा में विद्युत का निर्माण बहते हुए जल से हो रहा है। जल-विद्युत के अधिकाधिक प्रयोग द्वारा कोयले के भंडारों को बचाया जा सकता है।

पेट्रोलियम का संरक्षण : अब यह बड़ी आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि विश्व के पेट्रोलियम के ज्ञात भंडार कितने वर्षों तक चलेंगे। वैज्ञानिकों का मत है कि पेट्रोलियम को हम जिस दर से आजकल प्रयोग कर रहे हैं, उसके अनुसार पेट्रोलियम के भंडार कोयले की तुलना में अधिक समय तक नहीं चल सकेंगे। वे संभवतः कुछ दशाब्दियों में ही समाप्त हो जायेंगे। अतः हम सबके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि पेट्रोलियम को बड़ी मितव्ययिता से इस्तेमाल किया जाए और उसे बचाकर आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जाए। भूमि के अन्दर से पेट्रोलियम निकालते समय उसकी बहुत बड़ी मात्रा बर्बाद कर दी जाती है। इसके अतिरिक्त जितने पेट्रोलियम की हमें आवश्यकता है उससे कहीं अधिक मात्रा में वह निकाला जा रहा है। तेल-क्षेत्र का हर मालिक तेल की अधिकतम मात्रा को शीघ्र बेचकर पूंजी कमाना चाहता है। तेल-क्षेत्र के मालिकों को यह डर है कि यदि उन्होंने अपने तेल के कुएं से यथा शीघ्र अधिकतम मात्रा में तेल न निकाला तो वह सम्भवतः पास के दूसरे मालिकों के कुओं में अपवाहित हो जाएगा।

पेट्रोलियम उद्योग के प्रारम्भिक काल में लोग भूमि में इधर-उधर वेधन करते रहते थे। यदि उन्हें कहीं तेल पर्याप्त मात्रा में मिल जाता था तो वे अपने को सौभाग्यशाली समझते थे। अन्यथा वे कुओं को वैसे ही छोड़ देते थे। अब भूविज्ञानों एवं भूभौतिकी के वैज्ञानिक विभिन्न विधियों द्वारा भूमि के नीचे चट्टानी संरचना को अध्ययन कर अधिक विश्वास के साथ बताते हैं कि कहां तेल मिलेगा और कहां नहीं। इन विधियों द्वारा तेल के नये-नये क्षेत्रों को ढूंढ़ना आसान हो गया है। यदि तेल के कुओं के मालिक आपस में यह तय कर लें कि तेल को धीरे-धीरे निकाला जाय और सभी कुंओं में तेल का उच्च दाब बनाए रखा जाए तो इससे तेल के भंडार अपेक्षाकृत अधिक समय तक चल सकते हैं। यदि यह न किया गया तो कुंओं में तेल का दाब कम हो जाने की दशा में बहुत बड़ी मात्रा में तेल जमीन के भीतर ही रह जाता है और वह हमारे काम नहीं आ पाता। तेल को साफ करने की नवीनतम वैज्ञानिक विधियां अपनाने पर भी तेल की बड़ी मात्रा को बर्बादी से बचाया जा सकता है। पेट्रोलियम का एक महत्वपूर्ण उत्पाद गैसोलिन है, जिसकी विश्व में बहुत अधिक मांग है। तेल का शोधन करने वाले लोग अब निरंतर इस बात का प्रयास करते हैं कि कच्चे तेल की किसी निश्चित मात्रा से अधिक गैसोलिन प्राप्त की जाए। चूंकि तेल के हमारे ज्ञात भंडार सीमित हैं, हमें द्रव-ईंधन के स्थान पर किसी अन्य ईंधन के स्रोत को ढूंढ़ना चाहिए। तेल-शेल नामक चट्टान में तेल की पर्याप्त मात्रा होती है। जब इस चट्टान को अलग-अलग तापमान पर गर्म किया जाता है तो इससे वे सभी उत्पाद मिलते हैं जिन्हें हम पेट्रोलियम के शोधन से प्राप्त करते हैं। इन उत्पादों का मूल्य इन्हें सीधे कूप आयल से निकालने पर भी कम नहीं होता। अतः तेल-शेल का उपयोग पेट्रोलियम के संरक्षण में एक ठोस कदम होगा। पेट्रोलियम के वैज्ञानिकों का विश्वास है कि यदि हम कोयले के अपने ज्ञात भंडारों से तेल निकालें तो वह 2000 वर्षों तक चलेगा और कोयले से तेल निकालने में वही खर्च आयेगा जो आज तक हम पेट्रोलियम को जमीन के भीतर से निकालने और उसे साफ करने पर खर्च कर रहे हैं।

लौह-अयस्क का संरक्षण

हम लौह युग में रह रहे हैं। अतः लोहे की विशाल मात्रा को प्रयोग किए बिना हमारा काम नहीं चल सकता। यह धातु कोयले और पेट्रोलियम से भिन्न है क्योंकि इसे एक बार प्रयोग करने के बाद फिर से इस्तेमाल कर सकते हैं। पुराने पुलों, इंजनों, मोटर कार, पुरानी मशीनों, इस्पात के पुराने नलों और अन्य लोहे की पुरानी वस्तुओं से बड़ी मात्रा में लोहा प्राप्त होता है जिसे नई वस्तुओं के बनाने में फिर से इस्तेमाल कर सकते हैं। अतः कबाड़िये

हमारे लिए लोहे की वस्तुओं को इकट्ठा करके लोहे की आपूर्ति को अधिक लम्बे समय तक कायम रखते हैं। जापान, इटली और कुछ अन्य देश जहां लौह-अयस्क के निक्षेप बहुत कम हैं, वे अपने यहां की मशीनों तथा लोहे की अन्य वस्तुओं को बनाने के लिए रद्दी लोहे का बड़ी मात्रा में आयात करते हैं। जंग अर्थात मोरचा लोहे का सबसे बड़ा दुश्मन है। यदि हम अपनी लोहे की वस्तुओं को मोरचा लगने से बचा सकें तो यह लोहे के भंडारों का सबसे बड़ा संरक्षण होगा। इसी प्रकार अन्य धात्विक अथवा अधात्विक खनिजों का भी संरक्षण किया जाना चाहिए।

मानवीय साधनों का संरक्षण

किसी देश की सबसे महत्वपूर्ण संपदा वहां के लोग होते हैं। देश के नागरिकों का स्वास्थ्य और उनकी शिक्षा वहां की भूमि, मृदा, वन, जल, खनिज और शक्ति साधनों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होती है। स्वास्थ्य खराब होने पर अनेक प्रकार की पीड़ाएं, काम न मिलना, काम करने की कम क्षमता, स्फूर्ति में कमी और खर्चे बढ़ जाते हैं। किसी संक्रामक रोग के फैलने पर पूरा प्रदेश उस बीमारी से प्रभावित हो जाता है। कमजोर शरीर वाले लोगों से सामान्य कार्य करना भी कठिन होता है। अच्छा स्वास्थ्य कायम रखने के लिए आवश्यक है कि लोगों को उचित और संतुलित आहार मिले। व्यक्तिगत सफाई स्वस्थ शरीर का एक लक्षण है। मलमूत्र तथा कूड़ा-करकट को बस्तियों से नियमित रूप से निकाला जाए और आवासीय तथा काम करने के स्थलों को साफ-सुथरा रखा जाए। जनसंख्या की स्थाई वृद्धि दर से लोगों का जीवन स्तर उठाने में मदद मिलती है। जीवन स्तर उठाने से लोगों का स्वास्थ्य अच्छा होता है और उनके काम करने की क्षमता बढ़ती है।

अभ्यास

समीक्षात्मक प्रश्न

1. निम्न प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

(i) यूरोप, उत्तर अमेरिका, सोवियत संघ और जापान के प्रमुख कच्चे माल पर आधारित उत्पादन संकुलों की स्थिति के कारण बताइए।

(ii) रूस के प्रमुख प्रादेशिक संकुलों का विवरण कारण सहित दीजिए।

(iii) भारत तथा चीन के प्रमुख उत्पादन संकुल कौन-कौन से हैं? उनके विकास के कारण क्या हैं?

(iv) दक्षिण-पश्चिम एशिया के मुख्य प्रादेशिक संकुलों के नाम बताइए। उनमें कौन-सा कच्चा माल प्रयोग किया जाता है?

2. नीचे विश्व के कुछ प्रसिद्ध औद्योगिक संकुलों के नाम दिए हैं। इनमें से प्रत्येक का औद्योगिक विकास कच्चे माल, शक्ति के साधन एवं बाजार की उपलब्धता के संदर्भ में बताइए।
   (i) पिट्सबर्ग-इरी औद्योगिक प्रदेश
   (ii) वृहत लन्दन औद्योगिक प्रदेश
   (iii) ओसाका-कीओट औद्योगिक क्षेत्र
   (iv) हुगली औद्योगिक प्रदेश
3. साधनों के संरक्षण से आप क्या समझते हैं? प्राचीन काल में साधनों के संरक्षण की क्या-क्या विधियां अपनाई जाती थीं?
4. निम्नलिखित के कारण बताइए :
   (i) मिट्टी का अपरदन
   (ii) वन सम्पदा का ह्रास होना
   (iii) मत्स्य साधनों का अवक्षय होना
   (iv) पेट्रोलियम के भंडार अधिक समय तक नहीं चलेंगे
   (v) किसी राष्ट्र के लोगों के अस्वस्थ्य होने का परिणाम निम्न जीवन स्तर है
   (vi) खनिजों की लूट
5. कोयला और पेट्रोलियम के संरक्षण के लिए किन-किन विधियों का अपनाना आवश्यक है?
6. वन्य जीवन और मत्स्य के संरक्षण के लिए अपनाई गई विधियों की विवेचना कीजिए।
7. वनों के संरक्षण के लिए उपयुक्त विधियों को बताइए।

ज्ञात कीजिए

(i) आपके अपने पास-पड़ोस और निकटवर्ती क्षेत्रों में मृदा और वन साधनों के संरक्षण हेतु क्या-क्या कदम उठाए गए हैं? उन्हें मालूम कीजिए।

(ii) किसी औद्योगिक संकुल का भ्रमण कीजिए और मालूम कीजिए वहां कौन-कौन-सा कच्चा माल प्रयोग होता है और यह भी ज्ञात कीजिए कि वहाँ कच्चे माल का कोई दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है।

मानचित्र कार्य

संसार के रेखा मानचित्र से यूरोप, उत्तर अमेरिका, सोवियत संघ, चीन, जापान, आस्ट्रेलिया, दक्षिण-पश्चिम एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के औद्योगिक संकुलों को दिखाइए।

अतिरिक्त अध्ययन

1. डेविस, डी० एच०, **दि अर्थ एंड मैन**, दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1955
2. हंटिंगटन, ई०, **प्रिंसिपिल्स आफ ह्यूमन ज्योग्राफी**, न्यूयार्क, 1953
3. केंडल, एच० ई०, **इंट्रोडक्शन टू ज्योग्राफ़ी**, न्यूयार्क, 1958
4. मोरगन, जी०, एंडलांग, जी० सी०, **ह्यूमन एण्ड इकोनामिक ज्योग्राफी**
5. वुड, ओवरटोन एण्ड पिकार्ड, **ज्योग्राफी आफ दि वर्ल्ड**, दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1948

अध्याय 4

प्राकृतिक साधनों का उपयोग

मानव एवं आर्थिक भूगोल में हम मनुष्य की विविध क्रियाओं और उसके उद्योग-धंधों का भी अध्ययन करते हैं। सुव्यवस्थित जानकारी के लिए मनुष्य के विभिन्न व्यवसायों को तीन श्रेणियों में बांटा जाता है। ये श्रेणियां हैं (1) प्राथमिक व्यवसाय (2) गौण व्यवसाय और (3) तृतीयक व्यवसाय। प्राथमिक व्यवसायों के अंतर्गत मानव के वह विभिन्न क्रिया-कलाप आते हैं, जिनका सीधा संबंध भौतिक वातावरण की दशाओं से है। वनों में संग्रहण, आखेट, मत्स्यग्रहण, लकड़ी काटना, पशुचारण, कृषि एवं खनन प्राथमिक व्यवसायों के कुछ उदाहरण हैं। गौण व्यवसायों के अंतर्गत प्राथमिक व्यवसायों से प्राप्त उत्पादों को अधिक उपयोगी वस्तुओं में बदलने से संबंधित मानव क्रियाएं आती हैं। इन क्रियाओं को निर्माण उद्योग भी कहते हैं। तृतीयक व्यवसायों में समुदाय को दी जाने वाली व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक सेवाएं सम्मिलित हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार, यातायात, बैंक, संचार तथा प्रशासनिक सेवा में लगे लोगों का कार्य तृतीयक व्यवसाय के अंतर्गत आता है। किसी स्थान अथवा प्रदेश का भौगोलिक वातावरण जिसमें भौतिक एवं सांस्कृतिक दोनों प्रकार के वातावरण सम्मिलित हैं, वहां के प्राथमिक, गौण एवं तृतीय व्यवसायों को प्रभावित करता है। संसार के विभिन्न भागों में रहने वाले लोग अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने वातावरण में से ऐसे व्यवसाय का चयन करते हैं जो उन्हें तरक्की के लिए अधिकतम सम्भावनाएं प्रदान करता है। उदाहरणार्थ, जायरे में विषुवत वृत पर और उसके आसपास घने वनों में रहने वाले बौने लोग या पिगमी लोगों का व्यवसाय शिकार करना तथा वनों से खाने-पीने की वस्तुएं एकत्र करना है। उनकी सांस्कृतिक विकास की अवस्था और प्राकृतिक वातावरण में उपलब्ध साधनों के ही अनुकूल उनका व्यवसाय है। अफ्रीका के इस भाग की जलवायु इतनी अधिक आर्द्र है और यहां के वन इतने घने हैं कि उन्हें साफ करके खेती कर पाना अति कठिन कार्य है। ऐसी जलवायु में पशु भी नहीं पाले जा सकते और यहां के वनों में लकड़ी काटना भी लाभदायक व्यवसाय नहीं है क्योंकि लकड़ी के बेचने के लिए बाजार की सुविधा नहीं है। खनन, निर्माण उद्योग और व्यापार जैसे आधुनिक व्यवसाय इन लोगों की पहुंच के बाहर हैं क्योंकि ये लोग आदिम संस्कृति की अवस्था में जी रहे हैं।

इसके बिलकुल विपरीत उत्तर भारत के विशाल मैदान में जहां की स्थलाकृति समतल है, जलवायु गर्म-आर्द्र है, जल की आपूर्ति नहरों, कुओं और नलकूपों से निरन्तर होती रहती है। खेती करना मनुष्य का प्रमुख व्यवसाय है और यह व्यवसाय वातावरण के पूर्णतया अनुकूल है। इसी प्रकार नार्वे और स्वीडन के पर्वतीय प्रदेशों की प्रमुख संपदा वन हैं, अतः यहां के लोगों का भी मुख्य व्यवसाय लकड़ी काटना है जो वातावरण के अनुकूल है। इंगलैंड में कोयला, लोहा और अन्य खनिज पास-पास मिलने के परिणाम-स्वरूप यहां के लोगों ने खनन और निर्माण उद्योगों का व्यवसाय अपनाया। नीदरलैंड की स्थिति उत्तर सागर के तटों पर होने के कारण इस देश के लोगों ने वाणिज्य, व्यापार और यातायात का व्यवसाय अपनाया। संसार के कुछ क्षेत्रों में एक साथ कई व्यवसाय चलते हैं। उदाहरणार्थ, भारत के छोटानागपुर प्रदेश में आदिम जातियां संग्रहण और आखेट पर निर्भर हैं। किसान फसलों को उपजाने में लगे हैं और उद्योगपति औद्योगिक संकुलों के विकास और प्रसार में लगे हुए हैं।

संग्रहण एवं निष्कर्षण

संग्रहण का अर्थ है वनों से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को एकत्रित करना जिससे मनुष्य की भोजन, वस्त्र और मकान की मौलिक आवश्यकताएं पूरी हो सकें। साथ ही उन वस्तुओं की बिक्री से धन अर्जित किया जा सके। संग्रहण में मनुष्य फलों, जड़ों और पौधों को भोजन के लिए, वृक्षों की छाल, पत्तियां एवं घास को कपड़ों के लिए और बांस, बेलों, लताओं और लकड़ी को घर बनाने के लिए एकत्र करता है। मनुष्य वनों से जड़ी बूटियां बीमारियों के इलाज के लिए और लकड़ी घरों में ईंधन के रूप में जलाने के लिए एकत्र करता है। इस प्रकार के वस्तु-संग्रह को जीविका संग्रहण कहते हैं। प्राचीन काल में सभ्यता के प्रारम्भिक काल में मनुष्य वनों से केवल वस्तुओं का संग्रह करता था और वह पूर्णतया संग्रहण पर निर्भर था। उष्ण कटिबंधीय एवं शीतोष्ण कटिबंधीय वनों में अब भी बहुत सी आदिम जातियां केवल संग्रहण एवं निष्कर्षण पर अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। वस्तुओं का संग्रह करना मनुष्य का सबसे साधारण व्यवसाय है। यह कई प्रकार से आखेट एवं मत्स्य ग्रहण से भी प्राचीन है। वस्तुओं का संग्रह करने वाले लोग वनों से मूल्यवान वस्तुएं एकत्र करते हैं और उन्हें बाजार में साधारण तरीके से भेज देते हैं। ये लोग वृक्षों या पौधों के विभिन्न भाग एकत्र करते हैं। जड़ों तथा गिरि फल को भोजन के लिए; छाल को कुनीन, चमड़ा कमाने और कार्क के लिए; पत्तियों को पेय के लिए; वृक्षों के तनों को रबर, मोम, बिरोजा, गोंद और चर्म शोधन निष्कर्ष आदि के लिए एकत्र करते हैं। गिरि फल, पत्तियों की धूलि, तनों की छाल और कीड़े-मकोड़ों से वनस्पति मोम मिलता है। उष्ण कटिबंधीय वनों से अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त छाल और पत्तियां मिलती हैं। यह चर्म शोधन वस्तुओं से भरी होती हैं और बहुत से स्थानों पर मैंग्रूव वनों से बहुत ही सस्ती चर्म शोधन वस्तुएं मिलती हैं। इसी प्रकार शुष्क मरुस्थलीय वनों से भी चर्म शोधन वस्तुएं मिलती हैं।

शीतोष्ण कटिबंधीय वनों में उष्ण कटिबंधीय वनों की भांति वस्तु-संग्रह के कार्य अधिक नहीं हैं। शीतोष्ण वनों में चर्म शोधन की वस्तुएं बहुतायत से मिलती हैं, इसलिए इन वनों में चर्म शोधन वस्तुओं का संग्रहण महत्वपूर्ण क्रिया है। भूमध्य सागरी वनों में चर्म शोधन की अत्यन्त अच्छी वस्तुएं मिलती हैं। वेलोनिया और टर्किश ओक में प्रचुर मात्रा में 'टैनिन' मिलता है। विश्व में कार्क की लगभग सम्पूर्ण मात्रा पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांस, इटली और उत्तरी अफ्रीका से प्राप्त होती है। शीतोष्ण कटिबंध के पाइन वृक्ष से पिच, कोलतार तथा तारपीन का तेल और बिरोजा एकत्र किया जाता है। उष्ण कटिबंधीय वनों से बहुत सी वस्तुएं संग्रह की जाती हैं और यहां बहुत से लोगों का जीवन इन वस्तुओं पर पूर्णतया निर्भर है। कुछ लोग इन वस्तुओं के व्यापार द्वारा धन भी अर्जित कर रहे हैं फिर भी व्यापारिक दृष्टि से वस्तु-संग्रह का भविष्य यहां ज्यादा अच्छा नहीं है। रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा बने कृत्रिम पदार्थ अब बाजारों में इतनी अधिक मात्रा में आ रहे हैं कि उनके सामने वनों से संग्रह की कई वस्तुओं का महत्व बहुत ही कम हो गया है। फिर भी कृत्रिम वस्तुएं वनों से प्राप्त सभी वस्तुओं का स्थान नहीं ले सकतीं। इसलिए वनों में

वस्तु-संग्रह कार्य किसी न किसी रूप में चलता ही रहेगा, परन्तु यह बड़े पैमाने पर लाभकारी व्यवसाय नहीं बन सकता।

आखेट एवं मछली पकड़ना

पशु-पक्षियों का शिकार करना एवं मछली पकड़ना मनुष्य के अति प्राचीन व्यवसाय हैं। आदि कालीन मानव के लिए आखेट अति आवश्यक क्रिया थी। वह अपने भोजन, वस्त्र, आवास और औजारों की आवश्यकताओं की पुष्टि जंगली जानवरों, पक्षियों और मछलियों से करता था। जहाँ कहीं भी मनुष्य समुद्र, नदियों, झीलों अथवा तालाबों के किनारे रहता है, वहां वह अनादिकाल से मछलियों और अन्य जल-जीवों को पकड़कर अपनी भोजन तथा अन्य आवश्यकताओं की पुष्टी कर रहा है। आखेट और मत्स्य व्यवसाय में भौतिक वातावरण के साथ सामान्य समझौता करना होता है। अब भी संसार के बहुत-से क्षेत्रों में आदिम जातियां एवं कम विकसित जनसंख्या आखेट और मछली पकड़ने पर पूर्णतया निर्भर हैं और उनका जीवन चलवासी अथवा अर्ध-चलवासी है। जायरे नदी की द्रोणी, अमेजन बेसिन, बोर्नियो और न्यूगनी के विषुवतीय वनों, कालाहारी, पश्चिम आस्ट्रेलिया और सहारा के रेगिस्तानों एवं उत्तरी अमेरिका के सुदूर उत्तरी प्रदेशों और टुंड्रा प्रदेशों में अनेक आदिम जातियां रहती हैं जिनका जीवन शिकार करने और मछली पकड़ने पर पूर्णतया निर्भर है। अतः ऐसी जनसंख्या विषुवतीय प्रदेशों से लेकर ध्रुवीय सीमांतों तक बिखरी हुई है। उनकी संख्या बहुत कम है तथा ये विश्व के ऐसे भागों में रहते हैं जो विश्व के अधिकतर लोगों के लिए आकर्षण विहीन हैं।

चलवासी आखेट और मत्स्य शिकार पर आश्रित जनसंख्या का विश्व पर प्रभाव, बहुत ही कम होता है। इन लोगों की संख्या शनैः-शनैः कम हो रही है। बहुत-से क्षेत्रों में चलवासी आखेटक एवं मछुए प्रायः विलुप्त हो गए हैं। इनका उदाहरण केवल इसलिए दिया जाता है कि प्रारंभिक समय में मनुष्य अवश्य ही इस प्रकार का जीवन व्यतीत करता होगा। ऐसा जीवन भौतिक वातावरण पर पूर्णतया निर्भर रहता है। आगे के पृष्ठों में चलवासी आखेटक और मछुए का जीवन व्यतीत करने वाली संसार की कुछ जातियों का विवरण दिया गया है। यद्यपि ये जातियां अलग-अलग वातावरण से चुनी गई हैं लेकिन उन सब में बहुत बड़ी समानता यह है कि वे अपने जीवन के लिए पूर्णतया भौतिक वातावरण पर निर्भर है। इनमें से कुछ लोग ध्रुवीय प्रदेशों के रहने वाले हैं, तो कुछ मरुस्थलीय प्रदेशों में रहते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी जातियां हैं जो गर्म-आर्द्र क्षेत्रों में रहती हैं।

एस्किमों का जीवन

एस्किमों उत्तर अमेरिका के ध्रुवीय सीमान्तों, ग्रीनलैंड के तटों और निकट के द्वीपों तथा साइबेरिया के उत्तरी-पूर्वी भाग के रहने वाले लोग हैं। ये लोग लगभग पूर्णतया शिकार पर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। वे अपने भोजन तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए समुद्र पर आश्रित हैं। भूमि पर साधन इतने कम हैं कि वे इस पर अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकते। टुंड्रा क्षेत्र की अत्यन्त शीत जलवायु एवं अति निम्न तापमान वनस्पति के उगने के लिए रुकावट डालते हैं। यहां किसी प्रकार की कोई फसल पैदा नहीं हो सकती। काई लाइकन और छोटे-छोटे फूल वाले पौधे छोटी-सी गर्मी की ऋतु में यहां उग पाते हैं। मिट्टी की पर्त भी यहां बहुत पतली है और वह भी लगभग पूरे वर्ष बर्फ से ढकी रहती है। इन कारणों से एस्किमों के भूमि पर शिकार करने के क्षेत्र एवं साधन, दोनों ही सीमित हैं।

इस समय एस्किमों दो प्रकार का काम करते हैं। ग्रीष्म ऋतु में समूर वाले जानवरों का शिकार करते हैं और शीत ऋतु में समूर का व्यापार करते हैं। जिन जानवरों से उन्हें भोजन प्राप्त होता है वे हैं रेंडियर और कैरीबाऊ। साइबेरिया के याकूत एवं कनाडा के एस्किमों लोगों का जीवन रैंडियर के पालने और उसका शिकार करने पर आधारित है। गर्मियों में रैंडियर मच्छरों और गैड मक्खियों की वजह से वनों को छोड़कर उत्तर के हिम-मुक्त चारागाहों की ओर चले जाते हैं। वहां यह पूरी ग्रीष्म ऋतु में खाकर मोटे हो जाते हैं। जाड़ों में दक्षिण की ओर वनों में वापिस आते हैं। यही समय उनके

शिकार का होता है। कुछ स्थानों पर बहुत बड़ी संख्या में रेंडियर पाये जाते हैं और वे हज़ारों के समूह में सैकड़ों किलोमीटर का फासला तय करते हैं। याकूत लोग रेंडियर का अधिकतर उस समय शिकार करते हैं जब वह नदी में पानी पी रहा होता है अथवा नदी को पार कर रहा होता है। इनके मांस को भूनकर, धुआं देकर या जमाकर (बर्फ में) जाड़ों की ऋतु में खाने के लिए सुरक्षित रखा जाता है।

कनाडा में भी कैरीबाऊ का शिकार गर्मियों में होता है। जाड़ों के दिनों में एस्किमों तटों के किनारे रहकर मछली, सील और वालरस का शिकार करते हैं। वसंत आते ही वह कैरीबाऊ का शिकार करने भूमि की ओर चल देते हैं। जानवरों का शिकार करने की यहां एक परंपरागत विधि है। जानवरों के झुंड एक छोटे रास्ते के द्वारा जो कृत्रिम या प्राकृतिक हो सकता है, घेरे जाते हैं और झाड़ियों आदि के पीछे छिपे हुए लोग इन भागते हुए जानवरों पर तीर और भाले से हमला करते हैं। कभी-कभी जानवरों के झुंडों को गहरे पानी की ओर भगाया जाता है जहां वे पूर्णतया शिकारियों की दया पर होते हैं। ग्रीष्म ऋतु की पूरी अवधि में एस्किमों, कैरीबाऊ की तलाश में घूमते रहते हैं। दिन रात उनका पीछा करते रहते हैं और उनके लिए नये-नये जाल बिछाते रहते हैं। जानवरों को मारने के बाद उनके मांस को साफ करके और उसे सुखाकर जमीन के नीचे बर्फ से जमी चट्टान तक गड्ढा खोदकर उसमें रख देते हैं। उसके बाद जानवरों का पीछा करना और शिकार करना फिर से शुरू हो जाता है। एस्किमों के प्रत्येक कबीले का जमीन के भीतर मांस सुरक्षित रखने का गोदाम अलग-अलग होता है। शीत ऋतु में जब चारों तरफ बर्फ ही बर्फ होती है और कैरीबाऊ दक्षिण की ओर वनों में भाग जाते हैं, उस समय गोदामों में एकत्रित किया हुआ मांस भोजन के काम आता है।

बहुत-से क्षेत्रों में जहां इस समय एस्किमों रहते है, वहां इन लोगों के गोरे लोगों के सम्पर्क में आने से जीवन में परिवर्तन आ रहा है। अब यह लोग तीर कमान और भालों के स्थान पर बन्दूकों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार यह लोग पाषाण युग से लोह युग की ओर आ गए हैं। बन्दूकों के प्रयोग के परिणामस्वरूप अब अत्याधिक संख्या में जानवर मारे जाते हैं जिससे जानवरों की संख्या में दिनोंदिन कमी हो रही है। इसके अतिरिक्त बन्दूक की आवाज़ से घबराकर बहुत-से कैरीबाऊओं ने यह स्थान छोड़ दिया है। वे ऐसे स्थानों को चले गए हैं जहां मनुष्य का पहुँचना कठिन हो गया है। इन कारणों से कुछ स्थानों पर एस्किमों ने बन्दूकों का प्रयोग छोड़ दिया है। वे भोजन के लिए शिकार करने में बन्दूक का प्रयोग नहीं करते और कैरीबाऊ के झुंड के साथ रहते हैं। शीत ऋतु में किसी अकेले जानवर को पाकर बन्दूक से शिकार करते हैं। वास्तव में अब समूर वाले जानवरों का फसाना एस्किमों का मुख्य धंधा हो गया है। वे शीत ऋतु में समूर वाले जानवरों को फंसाने के लिए दूर-दूर स्थानों तक जाल, या ट्रैप बिछाते हैं। जब जानवर भोजन की तलाश में भागते हैं तो वे इन ट्रैपों में जाकर फंस जाते हैं। समूर की बिक्री के लिए एस्किमों ग्रीष्म ऋतु में निकट स्थित नगरों में जाते हैं। वहां समूर बेचने से उन्हें बहुत साधन मिलता है जिसमें वे अगली शीत ऋतु के लिए चाय, आटा, नमक, तेल, चीनी एवं अन्य बहुत-सी दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं तथा बन्दूक और कारतूस आदि खरीदते हैं। इन सब बातों से पहले इस क्षेत्र के लोग अनभिज्ञ थे। परन्तु अब अधिक सभ्य लोगों के सम्पर्क में आने से एस्किमों के जीवन में यह नया परिवर्तन आया है। गर्मियों के दिनों में जब जाड़ों के दिनों का सुरक्षित रखा हुआ भोजन समाप्त हो जाता है तो एस्किमों समुद्र तट पर जाकर मछलियां पकड़ते हैं। वे मछलियों के अतिरिक्त सील और वॉलरस का शिकार भी करते हैं। हिम से ढके हुए जल या झीलों पर वे छेद कर देते हैं और इन छेदों के द्वारा जब मछली सांस लेने के लिए ऊपर आती है तो एस्किमों हारपून से उसका शिकार करते हैं। मछलियों और सील की सारी चालाकियों से एस्किमों पूर्णतया परिचित हैं।

एस्किमों के आवास

एस्किमों विश्व के ऐसे क्षेत्र में रहते हैं जहां प्राकृतिक सम्पदा अत्यन्त सीमित है। वे शिकार की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। जब एक

जगह पर शिकार के लिए जानवरों की संख्या कम हो जाती है तो वे दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में एस्किमों खाल से बने तम्बुओं में रहते हैं। यह तम्बू 50-60 सीलों की खालों को एक दूसरे के साथ सिलकर उन्हें खम्बों पर फैलाकर बनाए जाते हैं। सील के खाल से बने इन तम्बुओं को 'टूपिक' कहते हैं। शीत ऋतु में एस्किमों हिम के मकानों में रहते हैं। हिम के यह मकान उल्टे प्याले के समान दिखाई देते हैं और इनमें अन्दर जाने का मार्ग सुरंगनुमा होता है। अन्दर की ओर इन मकानों की छत और दीवारें सील की खाल से ढकी होती हैं। बर्फ के इन मकानों को 'इगलू' कहते हैं।

एस्किमों के कपड़े और बर्तन

एस्किमों विश्व के अत्यन्त शीत क्षेत्र में रहते हैं अत: उनके कपड़े भारी और गर्म होते हैं। चूंकि इन क्षेत्रों में कोई पेड़-पौधा नहीं उग पाता इसलिए यहां कपड़ों के लिए वनस्पति पर निर्भर नहीं रह सकते। जानवरों की खालें ही मनुष्य के लिए इस क्षेत्र में कपड़ों का काम करती हैं। यहां तक कि कपड़ों को सिलने के लिए आवश्यक सुई और धागा भी जानवरों की हड्डियों और नसों से बनाया जाता है। टुंड्रा प्रदेश में कोई भी चर्म शोधन पदार्थ नहीं मिलता इसलिए जानवरों की खालों को बिना शोध किए उन्हें साफ कर व सुखा कर कपड़े बनाए जाते हैं। आदमियों तथा औरतों दोनों के ही कपड़े एक से होते हैं। उनके लिए कपड़ों का एक मात्र उद्देश्य सर्दी से शरीर को बचाना है न कि शरीर को कपड़ों द्वारा सुन्दर बनाना।

यहां के शिकार करने के हथियार भी जानवरों की हड्डियों और नसों से बनाए जाते हैं। हड्डियां तीर और कमान के रूप में प्रयोग होती हैं तथा नसें कमान की तांत के रूप में। नसों से जानवरों को पकड़ने के लिए जाल भी बनाए जाते हैं। श्वेत व्यक्तियों के सम्पर्क में आने से एस्किमों के तीर कमानों का स्थान बन्दूकों ने ले लिया है। सिलाई के लिए लोहे की सुईयां और इस्पात की पत्तियाँ कपड़ों को बनाने में प्रयोग की जाती हैं। अब एस्किमों के कपड़े, भोजन, खाने-पीने के तरीके और आमोद-प्रमोद करने के ढंगों में परिवर्तन आ रहा है अब वे मशीनों द्वारा तैयार किए गए भारी ऊनी व चमड़ों के वस्त्र पहनते हैं। डिब्बों का बन्द भोजन खाते हैं। नशीली वस्तुएं जैसे मदिरा और सिगरेट आदि का पान करते हैं। एस्किमों में भी अब श्वेत लोगों की बुराईयाँ और बीमारियां घर कर रही हैं। जो पहले कभी यहाँ बिल्कुल नहीं थी। अब शायद ही कोई एस्किमों परिवार ऐसा मिले जिसमें श्वेत और एस्किमों का मिश्रण न हो।

शुष्क क्षेत्रों में चलवासी आखेटक

संसार के अत्यन्त शुष्क एवं शीत भागों में बड़ी जन-संख्या के सम्भरण के लिए बहुत कम संभावनाएं हैं। इसलिए इन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी अब भी अपने सैकड़ो साल पुराने तरीकों से रहते हैं। दक्षिण अफ्रीका का कालाहारी मरुस्थल एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें बुशमैन नामक चलवासी जाति के लोग रहते है। बुशमैन के बारे में विवरण अगली पंक्तियों में दिया जा रहा है।

कालाहारी मरुस्थल के बुशमैन

कालाहरी मरुस्थल का शाब्दिक अर्थ है, एक ऐसा विशाल शुष्क क्षेत्र जिसमें अनेक स्थानों पर "साल्टपैन" हैं। इस मरुस्थल में लगभग दस हजार बुशमैन रहते हैं। यह अनेक कबीलों और जातियों में बंटे हैं। सम्पूर्ण क्षेत्र में जनसंख्या बहुत बिरल है। इस थोड़ी सी आबादी का भी भरण-पोषण करने के लिए बहुत अधिक क्षेत्र चाहिए। मरुस्थल का धरातल अनेक स्थानों पर तरंगित है और इसके बहुत बड़े भाग पर बालू-टिब्बे हैं। इस मरुस्थलीय क्षेत्र में तापमान सारे वर्ष औसत से लेकर बहुत ऊंचा रहता है। ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय तापमान 50 डिग्री सेंटीग्रेड तक हो जाता है। रात में यह लगभग 100 डिग्री सेंटीग्रेड तक गिर जाता है। शीत ऋतु में रात का तापमान और भी नीचा हो सकता है। मरुस्थलीय क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है। इसके उत्तरी सीमान्तों पर वार्षिक वर्षा लगभग 30 सेंटीमीटर होती है। वर्षा के बाद छोटे-छोटे गड्ढों में नमकीन पानी भरा रहता है। इन्हें 'साल्ट पैन' कहते हैं। इनमें मच्छर बढ़ते रहते हैं।

मलेरिया, काला बुखार, पेचिश एवं कमरतोड़ बुखार, निमोनिया तथा जुकाम और फ्लू इस प्रदेश की सामान्य बीमारियाँ हैं। इन सभी कारणों से कालाहारी मरुस्थल की जलवायु स्वास्थ्यवर्धक नहीं है। सम्पूर्ण कालाहारी क्षेत्र में पीने के पानी की अत्यन्त कमी है। शीत ऋतु के शुष्क महीनों में मिट्टी तथा चट्टानें वनस्पति विहीन होती हैं और ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होती है तो भूमि पर चारों ओर हरियाली दिखाई देती है जो जानवरों के लिए अच्छा भोजन बनती है।

वर्षा के बाद पानी प्रचुर मात्रा में मिलता है और घास खूब उगती है तो घास चरने वाले जानवरों के लिए प्रचुर मात्रा में भोजन मिलता है। अतः यहां पर घास खाने वाले विभिन्न प्रकार के जानवर जैसे हिरन, जैबरा, जिराफ़ आदि पाये जाते हैं। यह पशु शेर, चीता, जंगली कुत्ता, बाघ, सियार आदि हिंसक पशुओं के लिए भोजन है। इनके अतिरिक्त जंगली कुत्ता और अन्य छोटे जानवर खरगोश, चूहा छछुन्दर आदि भी मिलते हैं। वर्षा की इस ऋतु में इन पशुओं के अतिरिक्त अनेक प्रकार के पक्षी भी यहां पाये जाते हैं। सरीसृप वर्ग के प्राणी भी इस ऋतु में पर्याप्त मात्रा में दिखाई देते हैं। यहां एक प्रकार की चींटी पाई जाती है जो बुशमैन के भोजन का अंग बनती है। वर्षा के बाद कुछ समय तक बुशमैन के लिए यहाँ भोजन की कमी नहीं है। लेकिन वर्षा ऋतु बीत जाने पर भोजन और पानी की पूर्ति दोनों ही कठिन हो जाते हैं। घास के सूख जाने पर सभी प्रकार के प्राणी अधिक अनुकूल क्षेत्रों की ओर चले जाते हैं। इन दिनो में बुशमैन के लिए जीवित रहना एक समस्या बन जाती है।

बुशमैन का भोजन

बुशमैन पशुओं को नहीं पालता। उसके साथ कुछ जंगली कुत्ते रहते हैं, जिनका उपयोग वह शिकार के लिए करता है। बुशमैन न ही खेती करता है। वह अपना भोजन पशुओं का शिकार करके, मछलियों को पकड़ कर तथा कुछ जड़ों व गांठों वाले पौधे एकत्र करके प्राप्त करता है। बुशमैन बहुत अच्छे शिकारी माने जाते हैं। यह उनका परम्परागत व्यवसाय है। वे जानवरों का शिकार उनके अत्यंत निकट आ कर करते हैं। इसलिए कभी-कभी नाकामयाब होने पर जानवरों द्वारा वे स्वयं मारे जाते हैं।

बुशमैन कच्चा मांस खाने के लिए प्रसिद्ध हैं। एक बुशमैन एक समय में आधे से अधिक भेड़ का मांस खा जाता है। सभी प्रकार के जानवर—बड़े से बड़े और छोटे से छोटे उसके आहार का अंग हैं। चीटियां, उनके अंडे, दीमक और यहां तक कि उसके अपने जूं तक उसका भोजन हैं। औरतों तथा बच्चों द्वारा पौधे, फल, जड़ें तथा झरबेरी एकत्र की जाती है जो उसके भोजन का अंग बनते हैं। बुशमैन को इस बात की चिन्ता नहीं कि उसका भोजन ताजा है या बासी, शुद्ध है या अशुद्ध। वह सब प्रकार का भोजन यहां तक कि सड़ा गला भी खा जाता है। ऐसे भोजन से उस पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता। वह भविष्य तथा शुष्क ऋतु के लिए कुछ खाद्य सामग्री एकत्र करके नहीं रखता। जिन दिनों भोजन की बहुतायत होती है वे दिन उसकी दावत और खुशियों के होते हैं और जिन दिनों इसकी कमी होती है वे दिन उसके लिए भुखमरी के होते हैं। शुष्क मौसम में जब जानवर और सभी प्रकार के पक्षी अपेक्षाकृत अच्छे चरागाहों और आर्द्र क्षेत्रों की ओर चले जाते हैं तो उस समय बुशमैन को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस ऋतु में वह बहुत कमजोर भी हो जाता है।

बुशमैन का घर

बुशमैन वास्तव में चलवासी आखेटक है जो वर्ष भर अपने स्थान बदलता रहता है। उसे खाने तथा शिकार की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान को कई बार स्थानान्तरण करना पड़ता है। इसलिए उसके लिए यह संभव नहीं है कि वह किसी एक स्थान पर घर बनाकर स्थाई रूप से रहे। मौसम की विषमताओं से बचने के लिए बुशमैन कंद्राओं और खोहो में रहता है। कभी-कभी वह अर्धचंद्राकार आकृति की झोपड़ियां बनाता है। जहां कहीं दलदली क्षेत्रों में नर कुल मिल जाते हैं तो वह उनकी चटाइयां बनाकर उनसे झोपड़ियों को ढकता है। वर्षा के दिनों में उसकी स्थिति दयनीय हो जाती है क्योंकि इससे बचने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं है।

बुशमैन के कपड़े और बर्तन

बुशमैन बहुत ही कम कपड़े पहनता है। उसके पास जो कुछ भी कपड़े होते हैं वे अधिकतर जानवरों की खाल के बने होते हैं। दिन की कड़ी गर्मी में उसे कपड़ों की बहुत ही कम आवश्यकता होती है। औरतें प्राय: कमर से घुटनों तक जानवरों की खाल लपेटे रहती हैं। सिर कभी नहीं ढकतीं। स्नान करना ये लोग नहीं जानते।

बुशमैन के घरेलू बर्तन बहुत ही सीमित होते हैं। इनमें से प्राय: शुतुरमुर्ग के अंडों के और कुछ मिट्टी के बने बर्तन होते हैं। शुतुरमुर्ग के अंडों को आधा-आधा तोड़ लिया जाता है और प्रत्येक आधा भाग प्याले का काम करता है। लगभग सारा भोजन कच्चा खाया जाता है, इसलिए उसे पकाने के लिए बर्तन की जरूरत नहीं पड़ती। कुछ लोग भोजन को खुली आग में भूनकर या अध-पका खाते हैं। इसलिए बुशमैन का घरेलू सामान बहुत ही साधारण होता है। औरतों को पीने का पानी इकट्ठा करके रखने की जिम्मेदारी होती है।

बुशमैन के हथियार व औजार बहुत ही साधारण होते हैं। इनमें से मुख्य हैं तीर-कमान, फेंकने की लकड़ी, चाकू, आग जलाने की लकड़ियां और जमीन खोदने की छड़ी। कमान कठोर लकड़ी की बनी होती है और इसे लगभग एक मीटर लम्बी जानवरों की सूखी नसों से बांध दिया जाता है। तीर नरकुल या सरकंड़ों के बनाए जाते हैं। तीर की नोकें हड्डी या लोहे की बनी होती हैं। पत्थर के भाले और हड्डियों के चाकू बनाए जाते हैं। तीरों की नोकों को जहर में बुझाया या डुबाया जाता है जिससे उनकी मार अधिक प्रभावी होती है। तीर-कमान की मदद से बड़े-बड़े जानवरों का शिकार किया जाता है। जानवरों के लिए गहरे-गहरे गड्ढे बनाए जाते हैं जिसमें वे भागते समय गिरकर फंस जाते हैं।

बुशमैन मरुस्थल का एक प्राणी है और सारा मरुस्थल उसका घर है। उसने कालाहारी मरुस्थल की कठिनतम वातावरण की दशाओं के अनुकूल अपने को ढाल लिया है। पुरुषों की ऊंचाई सामान्यत: 150 सेंन्टीमीटर और औरतों की लगभग 120 सेंन्टीमीटर होती है। ये लोग कई दिनों तक बिना भोजन के रह सकते हैं। भोजन के लिए जानवरों का शिकार करना पुरुषों का काम होता है। औरतों तथा बच्चों का काम पौधे, जड़ें, झरबेरी आदि इकट्ठा करना और परिवार के लिए पानी का प्रबन्ध करना होता है। इसके अलावा औरतें बच्चों को गोद में ले जाने के अतिरिक्त घर का सामान भी ढोती हैं। इन लोगों में मानसिक विकास की बहुत कमी है। बुशमैन को ईश्वर और धर्म का कोई ज्ञान नहीं। वह भूत-प्रेतों और टूटका-टोनों को मानता है। उसका अधिकांश समय जीवित रहने के लिए अनेकानेक प्रयासों में बीतता है। अत: ईश्वर-धर्म आदि बातों पर विचारने को समय नहीं मिलता।

उष्ण कटिबंधीय वनों के चलवासी आखेटक

जायरे नदी और अमेजन नदी की द्रोणियों तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के द्वीपों में घने वन फैले हैं। इन वनों में कुछ चलवासी आखेटक जनसंख्या रहती है। जायरे नदी की घाटी में रहने वाले पिगमी और मलेशिया के वनों की सिमांग और सकई जातियां चलवासी आखेटक जातियों के कुछ उदाहरण हैं।

पिगमी लोग अधिकतर मध्य अफ्रीका के घने वनों में रहते हैं। यह वनीय क्षेत्र विषुवत वृत्त से 3^0 उत्तर और 3^0 दक्षिण के बीच यूगांडा से लेकर गेबन तक फैला है। जायरे के बेसिन में पिगमी लोगों की संख्या सबसे अधिक है। पिगमी की कई जातियां और कबीले हैं। इन सब में इतुरी पिगमी एक ऐसी जाति है जिस पर बाहरी लोगों का सबसे कम प्रभाव पड़ा है।

पिगमी का निवास स्थल घने वनीय क्षेत्र हैं। इस क्षेत्र का धरातल ज्यादा ऊंचा-नीचा नहीं है। यहां मिट्टयों की तह काफी मोटी है, परन्तु वे अधिक उपजाऊ नहीं हैं। यहां सारे वर्ष ऊंचे तापमान रहते हैं और अत्यधिक आर्द्रता भी हर समय बनी रहती है। वर्षा वर्ष भर होती है। ऐसी जलवायु पेड़-पौधों के तीव्र-गति से उगने के अनुकूल है। अफ्रीका के पिगमी, वातावरण की इन भौतिक दशाओं के बीच रहता है।

पिगमी का कोई पालतू पशु नहीं, यहां तक कि वह

कुत्ता भी नहीं पालता और न वह खेती ही करता है। अतः उनका जीवन पूर्णतया शिकार, मछली पकड़ने और वनों से आवश्यकताओं की वस्तुएं एकत्र करने पर निर्भर है। ये बहुत ही अच्छे शिकारी हैं यहां तक कि हाथी जैसे विशालकाय जानवर का शिकार करने में कुशल हैं। बड़े-बड़े जानवरों का मांस खाने के अतिरिक्त वे चीटियां, मक्खियां, मधुमक्खियां, कीड़े-मकोड़े और मधु खाते हैं। वनों से वे जंगली फल, गिरी फल, झरबेरी और पौधे आदि भोजन के लिए एकत्र करते हैं। केला खाने का इन्हें बहुत शौक है। ये फल यहां के वनों में बहुतायत से मिलता है। ये मांस को खुली आग में तब तक भूनते हैं जब तक कि यह पूर्णतया खुश्क नहीं हो जाता। यहां की जलवायु इतनी गर्म है कि पिगमी को कपड़े पहनने की जरूरत नहीं पड़ती। इनके अधिकतर कपड़े पेड़ों की छाल और पत्तियों के होते हैं जो प्रायः कमर से घुटने तक लपेटे जाते हैं। इनके हथियार तीर कमान और भाले हैं। कुछ पिगमी लोग बड़े-बड़े जानवरों का शिकार करने के लिए जहर में बुझे तीरों और भालों का प्रयोग करते हैं।

पिगमी लोग जानवरों और भोजन की तलाश में इधर-उधर घूमते रहते हैं। इसलिए उनका कोई स्थायी निवास नहीं होता। इनके अधिकतर घर छोटी-छोटी झोंपड़ी की तरह होते हैं जो मुख्यतः वृक्षों की शाखाओं और पत्तों से बनाए जाते हैं। एक गांव में औसतन ऐसी झोंपड़ियां दस से बारह तक होती हैं।

पिगमी लोग बहुत ही नाटे होते हैं। इनमें से कुछ की ऊंचाई 90 सेंटीमीटर तक ही होती है और इनका औसतन वज़न लगभग 30 किलोग्राम होता है कुछ लोग तो 20 किलोग्राम तक वजन के होते हैं। उनके नाटे और हल्के होने के बावजूद भी वे बहुत साहसी, शक्तिशाली और बहादुर होते हैं। वे बहुत ही कुशलतापूर्वक और अत्यन्त स्फूर्ति से ऊंचे-ऊंचे वृक्षों पर चढ़ जाते हैं। पिगमी लोगों को उनकी कार्य कुशलता को देखकर बुद्धिमान व्यक्तियों की संज्ञा दी जाती है। वह परम्पराओं, धर्म, विश्वास, मृत्यु के बाद जीवन तथा समय आदि का कैदी नहीं है। वह कुछ-कुछ भूत-प्रेतों में विश्वास करता है। इसके कोई नियम नहीं और न ही इसके कबीले में कोई मुखिया होता है। पिगमी को नाचने का बहुत शौक है। यद्यपि पिगमी वातावरण की कठिनतम परिस्थितियों को सह लेता है इस पर भी उसकी नस्ल धीरे-धीरे विलुप्त हो रही है। वह श्वेत व्यक्तियों द्वारा लाए नवीन जीवन के साथ भी साम्य नहीं कर पाता। इसलिए उसकी नस्ल को बचाने के लिए हर सम्भव प्रयास किए जा रहे हैं। इस प्रकार की मानव जातियां अन्य क्षेत्रों के उष्ण कटिबंधीय घने वनों में रहती हैं। न्यूगनी द्वीप में पिगमी की तरह ही छोटी जाति के लोग रहते हैं। मलेशिया के पर्वतीय एवं आंतरिक भागों तथा थाईलैंड के घने वनों में सियोग और सकई जाति के बौने लोग रहते हैं। इनका भी जीवन खाना-बदोश शिकारी का है। इसी प्रकार भारत की भील, कोल, मौरी, थरूस, खासी-जैयन्तीया, नागा और दोदास आदिम जातियां चलवासी आखेटक हैं।

खनन व्यवसाय

खान खोदना मनुष्य की अति प्राचीन क्रियाओं में से एक है। मानव-सभ्यता के प्रारम्भिक विकास में खनन एवं खनिजों के प्रयोग का इतना अधिक महत्व था, कि मानव-सभ्यता के विभिन्न सोपानों को पाषाण युग और कांस्य युग के नाम से पुकारा जाने लगा। प्राचीन काल में खनिजों का उपयोग औजार, हथियार, बर्तन, मकान और सड़क निर्माण में होता था। आज जब अनेक प्रकार के खनिज और खनिज ईंधन अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पृथ्वी के गर्भ से बाहर निकाले जा रहे हैं, खनन व्यवसाय में काम करने वाले लोगों की संख्या, मत्स्य ग्रहण और खेतों में काम करने वाले लोगों की संख्या से कम है। विश्व में उपलब्ध श्रमिक शक्ति का एक प्रतिशत से भी कम भाग खनन व्यवसाय में लगा है। खनन एक लुटेरा उद्योग है, क्योंकि यदि अत्यन्त विशाल मात्रा में भी पाए जाने वाले किसी भी खनिज को बेरोक-टोक तीव्र गति से लगातार प्रयोग किया जाए तो वह खनिज कभी-न-कभी अवश्य समाप्त हो जाएगा। किसी खनिज का शोषण कहां तक किया जाए, यह खनिज के मूल्य, खनन व्यय, अयस्क की शुद्धता, खनन विधि, यातायात खर्च, कुशल

श्रमिक और बाजार पर निर्भर करता है।

खनन विधियां

संसार में अधिकतर खनिज धरातल और धरातल के नीचे से निकाला जाता है। पृथ्वी से खनिज निकालने या खोदने की कई विधियां हैं।

विवृत खनन : इस विधि द्वारा धरातल पर या उसके निकट पाए जाने वाले खनिजों की खुदाई होती है और यह सबसे आसान और सबसे सस्ती खनन विधि है। इस विधि में पहले खनिज निक्षेपों के ऊपर की मिट्टी तथा चट्टाने हटाई जाती हैं और फिर खनिज खोदकर निकाला जाता है। कभी-कभी ऊपर की चट्टानों को शीघ्र हटाने के लिए उन्हें बारूद से उड़ा दिया जाता है। यह विधि मुख्यत: चट्टानों, लौह-अयस्क, कोयला और चूने का पत्थर खनन करने के लिए अपनाई जाती है।

भूमिगत खनन : जब खनिज धरातल के नीचे काफी गहराई में मिलते हैं तो भूमिगत खनन की विधियां अपनाई जाती हैं। भूमिगत खनन की कई विधियां हैं। इनमें से चार विधियां ये हैं, (1) **कूप-सुरंग खनन**—इस विधि द्वारा कोयला, सीसा, जस्ता, नमक, तांबा, लौह-अयस्क, सोना, चांदी, पोटाश आदि के निक्षेप भूमि के अन्दर से बाहर निकाले जाते हैं। (2) **एडिट-टनल खनन या ड्रिफ्ट खनन**—इस विधि द्वारा कोयले की खुदाई की जाती है। (3) **बेधन एवं पंपिंग**—इस विधि द्वारा पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस भूगर्भ से बाहर निकाले जाते हैं और (4) **दाब घोलन पंपिंग तथा वाष्पीकरण**—इस विधि द्वारा गन्धक निकाली जाती है।

प्लेसर खनन—जब खनिज जलोढ़ निक्षेप के रूप में मिलते हैं तो उनका खनन प्लेसर विधि द्वारा किया जाता है। इस विधि में जलोढ़ निक्षेपों को महीन करके उन्हें पानी की अधिक मात्रा के साथ खूब हिलाया जाता है और इस क्रिया से बालू, पंक आदि जैसे हल्के पदार्थ निथार दिए जाते हैं। इस प्रकार खनिज अयस्क के भारी टुकड़े नीचे रह जाते हैं। सोना, प्लेटिनम, टिन आदि के खनिज इसी विधि द्वारा प्राप्त किए जाते हैं।

पशुचारण एवं पशुपालन

जानवरों से मांस, दूध, ऊन एवं खालें प्राप्त करने के लिए उन्हें व्यवस्थित ढंग से चराने और पालने का व्यवसाय प्रारंभ हुआ। जानवरों का चराना और उनका पालन पूर्वकालीन पद्धति जैसा भी हो सकता है। उदाहरणार्थ खिरगीज़ और बद्दू जैसे चलवासी चरवाहे अथवा डेन्मार्क और नीदरलैंड का अति विकसित एवं वैज्ञानिक पशुपालन भी हो सकता है। यह व्यवसाय जानवरों के छोटे-छोटे समूह में छोटे पैमाने पर हो सकता है अथवा आस्ट्रेलिया के हजारों भेड़ वाले भेड़-केन्द्र की भांति बड़े पैमाने पर भी हो सकता है।

चलवासी चरवाहे

चलवासी चरवाहों का जीवन मुख्यत: अपने जानवरों के झुंड पर निर्भर करता है। वे अपने मवेशियों को प्राकृतिक चरागाहों पर चराते रहते हैं और जब एक स्थान पर घास समाप्त हो जाती है तो वे अपने पशुओं के साथ नये चरागाह और पानी की खोज में स्थान-स्थान घूमते रहते हैं। ऐसे क्षेत्र जहां चरागाह अति अल्प हैं, वहां भेड़ और बकरियां पाली जाती हैं। घोड़े और गधे अर्ध शुष्क क्षेत्रों और शीतोष्ण घास स्थलों में महत्वपूर्ण हैं, ऊंचे-ऊंचे पठारी भागों में याक पाला जाता है। ऊंट मरुस्थलीय भागों का और रैन्डीयर टुन्ड्रा प्रदेश का प्रमुख जानवर है। चरागाह के समाप्त होने पर चलवासी चरवाहे अपने जानवरों के साथ नये स्थानों को चले जाते हैं। अत: उनके आवास थोड़े-थोड़े समय के अंतराल पर बदलते रहते हैं। कुछ क्षेत्रों में ये चलवासी अपने मवेशियों के साथ शीत ऋतु में मैदानी चरागाहों की ओर और ग्रीष्म ऋतु में ऊंचे पर्वतीय चरागाहों की ओर प्रवास करते रहते हैं।

चलवासी चरवाही व्यवसाय में लोग मुख्यत: भोजन, वस्त्र और आवास की ही आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इन चरवाहों का भोजन जानवरों से प्राप्त मांस, दूध और पनीर होता है। उनके कपड़े और घर की आवश्यकता को जानवरों की खाल और ऊन पूरा करते हैं।

यद्यपि इन लोगों की लगभग सभी आवश्यकताएं पशुओं से पूरी होती हैं, फिर भी इनके गाय-बैल नियन्त्रित नस्ल के न होने के कारण उनसे उत्पादन बहुत कम होता है।

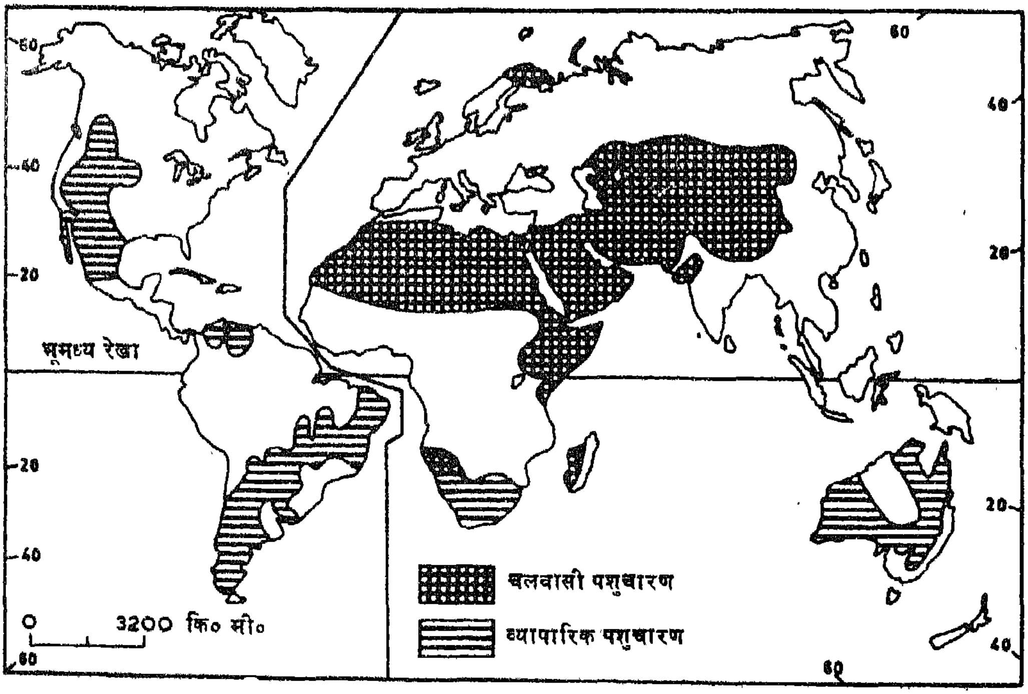
चलवासी चरवाहों को भोजन की कमी हमेशा बनी रहती है। कभी-कभी वर्षा न होने से सूखा पड़ता है और मनुष्य तथा जानवर, दोनों को भुखमरी का सामना करना पड़ता है। जब सूखे की दशाएं इनके सामने आती हैं तो ये पास-पड़ोस के समुदायों पर हमला करके भोजन प्राप्त करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मध्य एशिया से आकर बसे भारत, चीन और यूरोप के प्रारम्भिक लोग चलवासी चरवाहे ही थे। यद्यपि चलवासी पशुचारण के क्षेत्र विश्व के विभिन्न भागों में फैले हैं, फिर भी इनमें से तीन प्रमुख क्षेत्र (1) मध्य एशिया, (2) दक्षिण-पश्चिम एशिया और (3) उत्तरी अफ्रीका है (चित्र 8)।

मध्य एशिया के चलवासी चरवाहे

मध्य एशिया के चलवासी पशुचारण के क्षेत्र मंगोलिया, तिब्बत, सिक्यांग, रूसी तुर्किस्तान और खिरगीजिया हैं। ये चलवासियों के परम्परागत क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में चलवासियों की प्रमुख जातियां कजाक, खिरगीज़ और मंगोल हैं। ये चलवासी लोग भोजन, चरागाह और पानी की तलाश में मध्य एशिया के पर्वतों के गिरिपद, ऊंची-ऊंची घाटियों, पठारों, विस्तृत द्रोणियों और ऊंचे-ऊंचे पर्वतीय भागों में घूमते रहते हैं। मध्य एशिया के इन क्षेत्रों में तापमान, वर्षा, मिट्टी, प्राकृतिक वनस्पति और चरागाहों में बहुत अधिक विविधता है। वर्षा की कमी और अनिश्चितता के कारण इन क्षेत्रों में खेती करना लाभप्रद व्यवसाय नहीं है। इस कारण यहां के लोगों का जीवन मुख्यतः गाय-बैल से जुड़ा है। ये पशु इन क्षेत्रों के घासस्थलों पर खूब फलते-फूलते हैं।

खिरगीज़

मध्य एशिया के उच्च पठारी भागों में खिरगीज रहते हैं। वे अपनी जीविका के लिए पूर्णतया चलवासी



चित्र 8 : विश्व के प्रमुख पशुचारण क्षेत्र

पशुचारण पर निर्भर हैं। वे ऋतुओं के अनुसार अपने जानवरों के साथ लम्बी-लम्बी दूरियों पर प्रवास करते रहते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में भी इन क्षेत्रों में पुराने जमाने की भांति चलवासी पशुचारण परम्परागत ढंग से चल रहा है। आगे की पंक्तियों में इस चलवासी जाति के जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

खिरगीज़ का वासस्थल मध्य एशिया में स्थित है, जो समुद्र से बहुत दूर है। इसके दक्षिण में चीन का सिक्यांग मरुस्थल है। इसके पूर्व और पश्चिम में शुष्क प्रदेश है। यहां केवल उत्तर की ओर से ही आसानी से आया जा सकता है। विश्व के अन्य भागों से इस प्रकार अलग-थलग रहने के परिणामस्वरूप खिरगीज़ का जीवन अब भी खानाबदोशी का है।

खिरगीज़ की भूमि का स्वरूप सब जगह एक सा नहीं है। यहां कई पर्वत और पठार हैं जिसकी ऊंचाई 2,500 मीटर से लेकर 3 500 मीटर तक है। इस प्रदेश के सभी मैदानी, पठारी एवं पर्वतों के निचले ढलानों पर खूब चरागाह हैं जिन पर वर्ष की किसी न किसी ऋतु में पशु चरते हैं।

खिरगीज़ के जीवन में पानी की कमी सबसे बड़ी समस्या है। जब ग्रीष्म ऋतु में नदियां, हरिताएं एवं झीलें सूख जाती हैं तो खिरगीज़ को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। चरागाह प्राकृतिक वातावरण द्वारा प्रदान किए घास स्थलों पर आधारित हैं और इन पर ही खिरगीज़ के गाय-बैल, भेड़ और बोझा ढोने वाले पशु, घोड़े, याक और ऊंट के समूह निर्भर रहते हैं। जैसे-जैसे चरागाह कम होते जाते हैं, पशु और लोग एक स्थान से दूसरे स्थान भ्रमण करते जाते हैं। इस प्रकार बड़े पैमाने पर प्रवास करने के लिए बहुत ही सुनियोजित प्रबंध की आवश्यकता है क्योंकि इस पर हजारों पशुओं का जीवन निर्भर करता है। मार्ग के लिए खाने-पीने का पूरा प्रबन्ध पहले से कर लिया जाता है। किस मार्ग से जाना है, रास्ते में कहां-कहां ठहरना है और प्रत्येक ठहरने के स्थान पर कैसे पानी का समुचित प्रबंध होना है, सब बातों पर अच्छी तरह सोच-विचार कर लिया जाता है।

खिरगीज़ का जीवन बहुत ही कठिनाई और घूमने-फिरने का है। कुछ लोग भेड़ों की देखभाल करते हैं। कुछ घोड़ों की पीठ पर बैठकर जानवरों के झुंड की रक्षा करने के अतिरिक्त जंगली जानवरों का शिकार करते हैं। महिलायें जानवरों का दूध निकालती हैं और दैनिक जीवन के सारे कार्य करती हैं। पुरुष मुख्यत: वही काम करते हैं जिनमें काफी मेहनत और खतरा होता है।

खिरगीज़ के कपड़े गर्मियों में पर्वतों के शीतल आर्द्र जलवायु और शीत ऋतु में शीत मैदानों की जलवायु के अनुरूप होते हैं। सभी ऋतुओं में पुरुष और स्त्रियां पैड वाले बड़े-बड़े गाउन पहनते हैं जिनसे वर्षा का जल अन्दर नहीं जा पाता। ये गीली घास पर पशुओं के बीच चलने के लिए ऊंचे-ऊंचे बूट पहनते हैं। उनके अधिकतर कपड़े भेड़ की ऊन और पशुओं की खालों के बने होते हैं। पुरुष भेड़ की खाल से बनी टोपियां और कोट पहनते हैं। औरतें रूस के औद्योगिक क्षेत्रों से मंगाई कपास के बने कपड़े से सिर ढकती हैं। खिरगीज़ के बर्तन, चमड़े और लकड़ी के बने होते हैं।

यातायात की असुविधा, विश्व के प्रमुख क्षेत्रों से कटा होना और अन्य प्रोत्साहनों की कमी के कारण खिरगीज़ के उद्योगों का विकास नहीं हो पाया है। खिरगीज़ महिलाएं ऊन के बहुत ही सुन्दर कम्बल और नमदे बुनती हैं। जानवरों की खालों को कमाकर चमड़ा बनाती हैं। इनका व्यापार भी पिछड़ा हुआ है। पतझड़ की ऋतु में भेड़ों, गाय-बैल, घोड़ों और ऊंटों को दूर स्थित नगर में ले जाकर बेचा जाता है। बेचकर जो धन मिलता है उससे ये लोग अपनी जरूरत की वस्तुएं जैसे आटा कपड़ा, बन्दूकें आदि खरीदते हैं। नगर के लोगों द्वारा खिरगीज़ बेच और खरीद दोनों में ही ठगे जाते हैं। खिरगीज़ में शिक्षा और विज्ञान का प्रसार बहुत कम है। खिरगीज़ के समुदाय इतने छोटे हैं कि उनमें से प्रत्येक में स्कूल नहीं हो सकता। सभ्य जातियों से संबंध बहुत कम, सभ्यता का निम्न स्तर और शिक्षा की कमी के कारण यहां वैज्ञानिक खोजें कुछ नहीं हो पाई हैं। वे इस्लाम धर्म की बहुत-सी बातें मानते हैं। अब सोवियत संघ की सरकार खिरगीज़ के जीवन में नया परिवर्तन ला रही है। इनका वातावरण प्राकृतिक संपदा के उपयोग के लिए बहुत ही कम अवसर प्रदान करता है। यूरोप की सभ्यताओं का

इन पर धीरे-धीरे प्रभाव पड़ रहा है—फिर भी ये अपने परम्परागत तरीकों से बहुत ही कम बदल पाए हैं।

दक्षिण-पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका के चलवासी

दक्षिण-पश्चिम एशिया और उत्तर अफ्रीका के चलवासी पशुचारण के प्रमुख क्षेत्र ईरान, ईराक, सउदी-अरब, अनातोलिया का पठार, सूडान, सहारा मरुस्थल के अर्ध-शुष्क सीमांत और पूर्वी अफ्रीका की उच्च भूमि हैं (चित्र 8)। इस सारे क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है और कहीं-कहीं तो वार्षिक वर्षा 25 सेन्टीमीटर से भी कम है। अर्ध-शुष्क जलवायु दशाओं में केवल छोटी-छोटी घास ही प्राकृतिक वनस्पति के रूप में उग पाती है। वर्षा की कमी के कारण चरागाहों की कमी है। ऐसी दशाओं में भेड़ और बकरियां पाली जाती हैं क्योंकि ये पशु शुष्क जलवायु और अति अल्प चरागाह में भी जीवित रहते हैं। इसलिए ये क्षेत्र संसार का सबसे महत्वपूर्ण भेड़ और बकरी पालन का स्थल है। अंगोरा बकरी जिसका ऊन रेशम जैसा चमकदार होता है और इस ऊन को 'मोहिर' के नाम से जाना जाता है, अनातोलिया के पठार पर पाली जाती है। इस विस्तृत प्रदेश का प्रमुख जानवर ऊंट है, यह बिना पानी और भोजन के कई दिन तक रह सकता है। ऊंट के लिए बालू वाली भूमि और शुष्क जलवायु अति अनुकूल है। पूर्वी अफ्रीका की उच्च भूमि पर मसाई जाति के चलवासी चरवाहे रहते हैं। मसाई अपनी भेड़ों और बकरियों को शीत ऋतु में सवाना की छोटी-छोटी घास के समतल मैदानों पर पालते हैं और ग्रीष्म ऋतु में पर्वतों की ऊंची—अंची घास के स्थलों पर ले जाकर चराते हैं।

टुंड्रा के चलवासी चरवाहे

टुंड्रा के दक्षिणी सीमांतों पर चलवासी चरवाहों की कुछ जातियां रहती हैं। इन चरवाहों को नार्वे और स्वीडन में लैप्स के नाम से पुकारा जाता है। ये रेंडियर पालते हैं और उन्हीं पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। ग्रीष्म की छोटी-सी ऋतु में लैप्स अपने जानवरों सहित पर्वतीय चरागाहों पर पहुंच जाते हैं और पतझड़ की ऋतु में वे दक्षिण की ओर कोणधारी वनों की ओर प्रवास करते हैं। ये वैसा इसलिए करते हैं क्योंकि ग्रीष्म ऋतु के दिनों में पर्वतीय ढालों पर पर्याप्त चरागाह मिलते हैं और जाड़ों के मौसम में चरागाहों का क्षेत्र दक्षिण की अपेक्षाकृत गर्म भागों में ही मिलता है। लैप्स लकड़ियों के फ्रेम पर बने और जानवरों की खालों से ढके टेंट में रहते हैं। ये जानवरों की खाल और समूर के कपड़े पहनते हैं। इनका भोजन मांस, दूध और पनीर होता है।

चलवासी चरवाहों के जीवन में इस शताब्दी में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। घास-स्थलों के शीतोष्ण कटिबंध में विस्तृत क्षेत्रों को साफ करके खेती की जाने लगी है। यह कार्य विशेषतया उत्तर और दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, चीन, ईरान ओर सोवियत संघ में बहुत बड़े पैमाने पर हो रहा है। अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में भी जमीन को साफ करके खेती की जा रही है। विभिन्न देशों की सरकारें चलवासी पशुचारण के अधिकाधिक क्षेत्रों को खेती के अंतर्गत ला रही है। चलवासी पशुचारण के कुछ क्षेत्रों में उद्योग स्थापित हो रहे हैं और अधिकाधिक लोग पक्के मकान बनाकर अपने उद्योगों के पास स्थायी रूप में रह रहे हैं। सामान्य रूप से अब चलवासी चरवाहों की जनसंख्या कम हो रही है और उनका क्षेत्र शनैः-शनैः घट रहा है। संभवतः चलवासी जीवन अब भविष्य में संसार के कुछ अलग-थलग छोटे-छोटे क्षेत्रों में ही सीमित रह जाएगा।

व्यापारिक पशुचारण

व्यापारिक पशुचारण में लगे लोग स्थायी जीवन व्यतीत करते हैं। उनके पशुओं से प्राप्त पदार्थों का राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार होता है। बहुत बड़े पैमाने पर व्यापारिक पशुचारण अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड के शीतोष्ण कटिबंधीय घास स्थलों पर होता है। दक्षिण अफ्रीका, ग्रेट ब्रिटेन और दक्षिण अमेरिका के अर्जनटीना के पम्पास घास स्थलों में भी व्यापारिक पशुचारण व्यवसाय विकसित है (चित्र 8)। इन क्षेत्रों में औसत वार्षिक वर्षा 25 से 75 सेंटीमीटर के बीच होती है। इसके अलावा यहां वर्ष में एक ऋतु शुष्क होती

है। व्यापारिक पशुचारण में आधुनिक एवं वैज्ञानिक पद्धति से पशुओं को पाला जाता है और बड़े-बड़े चरागाहों पर उन्हें चराया जाता है। कुछ देशों में बड़े-बड़े व्यापारिक संस्थानों के रूप में व्यापारिक पशुचारण का विकास हुआ है।

प्रेयरी घास भूमि

उत्तर अमेरिका के शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान मुख्यत: पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा के समतल मैदान और उत्तरी मैक्सिको में पाए जाते हैं। यह संसार का अत्यन्त विकसित व्यापारिक पशुचारण क्षेत्र है। प्रेयरी घास भूमि पर अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है और यह घास की पैदावार के लिए अति उत्तम है। परन्तु यहां वर्षा अनिश्चित होने से कभी-कभी अकाल की दशाएं उत्पन्न हो जाती है। इन दो कारणों से अर्थात् वर्षा का कम होना और उसके अनिश्चित होने के परिणामस्वरूप ये क्षेत्र कृषि के लिए ज्यादा उपयुक्त नहीं हैं। यहां शुष्क खेती करने के भी कई असफल प्रयास किए गए, परन्तु उनसे कोई विशेष लाभ नहीं मिला। इसीलिए यह क्षेत्र पशुचारण के लिए अति उत्तम है।

प्रेयरी घास स्थलों पर सैंकड़ों वर्ग किलोमीटर लम्बे-चौड़े क्षेत्र में रेंचिज बनाए गए हैं, जिनमें हजारों की संख्या में गाय-बैल तथा अन्य पालतू पशु रखे जाते हैं। गाय-बैलों में अब उत्तम नस्ल की जैरसी और फ्रीजियन गाएं पाली जाती हैं। उत्तम नस्ल की भेड़ें जिनसे बहुत ही बढ़िया किस्म का ऊन मिलता है, भी यहां पाली जाती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के इस मध्य पश्चिमी क्षेत्र में लाखों की संख्या में गाय-बैल और भेड़ें पाली जाती हैं।

दक्षिण अमेरिका का दक्षिण पूर्वी क्षेत्र

ये व्यापारिक पशुचारण क्षेत्र दक्षिण अमेरिका के शीतोष्ण कटिबंधीय घास भूमियों में स्थित हैं। यह ब्राजील के दक्षिणी भाग, अर्जनटीना तथा यूरुगुए देश में फैला है। अर्जनटीना देश के पम्पास के सर्पिल भूमि पराना और यूरुगुए नदियों के बीच का भाग तथा पैंटागोनिया और टेराडेल फ्यूगो क्षेत्र अत्यन्त उत्तम व्यापारिक पशुचारण के क्षेत्र हैं। पम्पास में वार्षिक वर्षा 50 से 100 सेंटीमीटर के बीच होती है और यह पूरे वर्ष समान रूप से होती है। इसके अतिरिक्त यहां के तापमान की दशाएं शीतल हैं। इन सभी कारणों के परिणामस्वरूप यहां एल्फा-एल्फा नामक घास बहुतायत से पैदा होती है। इस घास को खाकर पशु खूब हृष्ट-पुष्ट होते हैं। यहां के रैंच के चारों तरफ तारों की बाढ़ लगी होती है। और इसी प्रकार के तारों से चरागाह के क्षेत्र कई हिस्सों में बंटे होते हैं। तार लगाने से एक क्षेत्र के पशु दूसरे क्षेत्र के पशुओं से नहीं मिल सकते। यहां समय-समय पर सूखा पड़ता है और गाय-बैलों को विशेष प्रकार की बीमारी हो जाती है। व्यापारिक पशुचारण क्षेत्र की ये दो प्रमुख समस्याएं हैं। अर्जनटीना में विश्व की कुल गाय-बैल संख्या का 5% हैं। यह सभी गाय-बैल यहां मुख्यत: मांस प्राप्त करने के लिए पाले जाते हैं। मांस की अर्जनटीना में बहुत खपत है। स्थानीय खपत के बाद भी इतना अधिक मांस बच जाता है कि वह जलयानों के ठंडे गोदामों में रखकर दूसरे देशों को निर्यात कर दिया जाता है। अर्जनटीना आजकल मांस के निर्यात में विश्व में प्रथम स्थान रखता है। युनाइटेड किंगडम यहां से सबसे अधिक मात्रा में मांस खरीदता है।

यूरुगुए देश का तीन चौथाई भाग चरागाहों से घिरा है और इन पर गाय-बैल तथा भेड़ें पाली जाती हैं। यहां पशुओं को ओट खिलाकर मोटा किया जाता है। यहां वर्षा पूरे वर्ष होती है। सारा साल पशुओं तथा भेड़ों को घास खाने के लिए मिलती रहती है। यूरुगुए से मांस डिब्बों में बन्द करके, जमा कर, सुखाकर अन्य देशों को निर्यात किया जाता है। ऊन, खालें और चमड़ा भी बहुत अधिक मात्रा में यूरोपीय देशों को भेजा जाता है।

दक्षिणी ब्राजील में जलवायु की दशाएं ऐसी हैं कि यहां वर्ष भर चरागाह उपलब्ध हैं। इसलिए यहां बड़ी संख्या में गाय-बैल और भेड़ें पाली जाती हैं। संसार की एक चौथाई गाएं-बैलों की संख्या और एक तिहाई भेड़ें केवल ब्राजील में ही हैं। ब्राजील से मांस ठंडे गोदामों में रखकर यूरोप के देशों को निर्यात किया जाता है। ऊन, खालें और चमड़ा भी बहुत अधिक मात्रा में यूरोपीय देशों को भेजा जाता है।

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड

आस्ट्रेलिया संसार का महत्वपूर्ण व्यापारिक पशुचारण क्षेत्र है। यहां लगभग 12 करोड़ भेड़ें पाली जाती हैं। यह देश विश्व का लगभग आधे से अधिक ऊन का निर्यात करता है। आस्ट्रेलिया में पशुचारण के प्रमुख क्षेत्र दक्षिणी-पूर्वी और पश्चिमी आस्ट्रेलिया में है। आस्ट्रेलिया के न्यू-साउथ वैल्स, विक्टोरिया और दक्षिण आस्ट्रेलिया राज्यों में उत्तम प्रकार की भेड़े प्राकृतिक चरागाहों पर पाली जाती है। क्वींसलैंड और पश्चिमी आस्ट्रेलिया राज्य में अच्छे किस्म का ऊन प्रदान करने वाली भेड़ें पाली जाती हैं। ऊन प्रदान करने वाली भेड़ें प्रायः ऐसे ही क्षेत्रों में पाली जाती हैं जो अपेक्षाकृत अधिक शुष्क होते हैं। आस्ट्रेलिया में पशुचारण की सबसे महत्वपूर्ण समस्या पानी की कमी है। यहाँ के शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में बहुत कम वर्षा होती हैं। इसलिए आस्ट्रेलिया की सरकार ने पशुओं के लिए पानी प्रदान करने हेतु बड़े-बड़े जलाशयों का निर्माण किया है और यहां के भूमिगत जल के स्रोतों से भी ट्यूबवैल द्वारा पानी की पर्याप्त मात्रा प्राप्त की जाती है। यहां बहुत बड़ी संख्या में चूहे पाए जाते हैं जो भेड़ों को पालने वालों के लिए बहुत बड़ी समस्या हैं। जंगली कुत्ते भी पशुचारण में रुकावट डालते हैं। इसलिए भेड़ पालन केन्द्रों पर तारों की लम्बी-लम्बी बाढ़ें लगाई गई हैं जिससे कि कुत्ते भेड़ों को नुकसान न पहुंचा सकें। चूहों की समस्या को सुलझाने के लिए उन्हें युद्ध स्तर पर समाप्त किया जा रहा है। लेकिन यह समस्या अब भी बनी हुई है। इन समस्याओं के होते हुए भी आस्ट्रेलिया विश्व के अत्यन्त विकसित व्यापारिक पशुचारण देशों में से एक है।

न्यूजीलैंड संसार के विकसित देशों में से एक है। इसका विकास मुख्यतः इसके भेड़ पालन और गाय-बैल पालन उद्योग पर है। इस देश में प्रत्येक व्यक्ति के पीछे बीस भेड़ें और दो गाय-बैल हैं। न्यूजीलैंड में सारा साल पर्याप्त वर्षा होती है और यहां की जलवायु भी शीतल है। अनुकूल वर्षा और तापमान के कारण यहां उत्तम प्रकार के चरागाह पाए जाते हैं। इन चरागाहों पर वर्ष भर गाय-बैल और भेड़ें चर सकती हैं। न्यूजीलैंड में गाय-बैलों को लम्बे-चौड़े रैंच पर नहीं पाला जाता वरन उन्हें छोटे-छोटे फार्मों पर पालते हैं और प्रत्येक पशु की अच्छी तरह देखभाल की जाती है। इनसे बहुत ही उत्तम कोटि का मांस प्राप्त होता है। पर्वतीय चरागाहों पर अच्छे किस्म का मांस प्राप्त करने के लिए भेड़ें और बकरियां पाली जाती है। न्यूजीलैंड उच्चकोटि का भेड़-मांस प्रदान करने के लिए संसार में प्रसिद्ध है। यहां से विश्व का दो तिहाई भेड़-मांस निर्यात किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह गो-मांस, ऊन, मक्खन और पनीर का भी महत्वपूर्ण निर्यातक है।

दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका के पठार के दक्षिणी भाग पर शीतोष्ण कटिबंधीय घास स्थल पाए जाते हैं। यह क्षेत्र विस्तृत समतल भू-भाग है और इसमें 25-75 सेंटीमीटर तक वार्षिक वर्षा होती है। अधिकतर वर्षा गर्मियों के महीनों में होती है। इस भू-भाग में लोगों का मुख्य व्यवसाय भेड़ पालना है। स्थानीय नस्ल के अतिरिक्त यहां अंगोरा बकरी भी पाली जाती है। इस बकरी का ऊन रेशम के समान चमकदार होता है। यहां दूध और मांस प्राप्त करने के लिए गाय-बैल भी पाले जाते हैं। दक्षिण-अफ्रीका ऊन, मांस और दुग्ध उत्पादों का निर्यात करता है।

विश्व के सभी शीतोष्ण कटिबंधीय घास स्थलों पर इस समय अतिचराई हो रही है। कभी-कभी इन क्षेत्रों में अति भीषण सूखा पड़ता है। यदि भविष्य में इन क्षेत्रों को विश्व को लगातार जानवरों के उत्पाद प्रदान करते रहना है तो जानवरों की नस्ल सुधारना, अति चराई को रोकना और जलसाधनों को सुरक्षित रखना आदि प्रमुख बातों पर लगातार ध्यान देने की आवश्यकता है।

उष्ण कटिबंधीय घास स्थलों में व्यापारिक पशुचारण

उष्ण कटिबंधीय घास-भूमियों को 'सवाना' कहते हैं। सवाना घास स्थलों में अपेक्षाकृत अधिक वर्षा, लगभग 100 सेंटीमीटर वार्षिक होती है। उष्ण कटिबंधीय घास स्थल गर्म मरुस्थलों और विषुवतीय गर्म आर्द्र वनों के बीच में स्थित हैं। यह घास के स्थल कहीं-कहीं वनों के साथ भी

पाये जाते हैं। सवाना घास स्थलों में वर्षा केवल गर्मियों में ही होती है और शीत ऋतु यहां मुख्यत: शुष्क होती है। गर्मियों में कभी-कभी भारी वर्षा हो जाती है और शुष्क ऋतु में यह अत्यन्त हल्की होती है। जलवायु की यह दशाएं घास की वृद्धि के लिए बहुत ही अनुकूल हैं परन्तु वृक्षों अथवा वनों के विकास के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

सवाना घास स्थलों में घास की ऊंचाई आदमी की ऊंचाई से भी अधिक होती है। यह ऊंची-ऊंची घास बहुत ही सख्त, खुर्दरी एवं पशुओं के भोजन के लिए उपयुक्त नहीं है। इसलिए सवाना घास स्थलों में पशुओं के लिए अनुकूल चरागाहों की नितान्त कमी है। वर्षा के तुरन्त बाद जब नई-नई कोमल घास की कोंपलें निकलती हैं तभी वे पशुओं के लिए उपयुक्त चारे का काम देती हैं। शुष्क मौसम में घास के सूख जाने के बाद वह खाने योग्य नहीं रह पाती। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के कीड़े-मकोड़े, मनुष्य तथा जानवरों की अनेक बीमारियां, श्रमिकों का अभाव, बाजार का दूर होना, यातायात की समुचित सुविधाओं की कमी आदि कुछ ऐसे कारक हैं जो सवाना क्षेत्र में व्यापारिक पशुचारण के विकास में बाधक हैं। इस पर भी दक्षिण अमेरिका के उत्तरी भाग के लानोस क्षेत्र, उत्तरी ब्राजील के कैम्पोस क्षेत्र, उत्तरी अफ्रीका का सूडान क्षेत्र और दक्षिणी अफ्रीका के सवाना क्षेत्र में व्यापारिक पशुचारण एक महत्वपूर्ण आर्थिक क्रिया है (चित्र 8)।

दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के सवाना क्षेत्र

ओरिनिको नदी की द्रोणी में समुद्र तल से लगभग 300 मीटर ऊंचाई के क्षेत्र में घास स्थल पाए जाते हैं। इस क्षेत्र में लोगों की महत्वपूर्ण आर्थिक क्रिया पशुचारण है। यह क्षेत्र गुआना उच्च भूमि के पश्चिम में फैला हुआ है। यहां औसत वार्षिक वर्षा लगभग 100 सेंटीमीटर है। अधिकतर वर्षा ग्रीष्म ऋतु में होती है। शुष्क ऋतु में घास सूखकर कड़ी हो जाती है और इसे पशु नहीं खा सकते। इसके अतिरिक्त यहां इस ऋतु में पानी की भी बहुत कमी रहती है। पशुओं को भी विभिन्न प्रकार के मच्छरों और कीड़ों-मकोड़ों द्वारा कई बीमारियां लग जाती हैं, जिससे आम कोटि का मांस प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है।

ब्राजील में पैरागुए नदी की ऊपरी घाटी में उष्ण-कटिबंधीय घास स्थल है और इसे यहां कैम्पास कहते हैं। इस क्षेत्र में लगभग 75 सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा होती है। वर्षा अधिकतर ग्रीष्म ऋतु (दिसम्बर, जनवरी, फरवरी) में होती है। जाड़े की शुष्क ऋतु में घास सूख जाती है और पशुओं को पर्याप्त चारा नहीं मिल पाता। यद्यपि यहां बड़ी संख्या में गाय-बैल पाले जाते हैं परन्तु उनकी नस्ल अच्छी नहीं होती और न ही उनसे उत्तम कोटि के उत्पाद मिल पाते हैं।

सूडान में सवाना घास स्थल भूमध्य रेखा के घने वन अर्थात जायरे के घने वन और उत्तर की सहारा मरुस्थलीय वनस्पति पेटी के बीच पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में आदिवासियों का प्रमुख व्यवसाय गाय-बैलों का पालन-पोषण है।

दक्षिण अफ्रीका गणतंत्र में सवाना घास स्थलों के क्षेत्र में बड़ी संख्या में पशुचारण का व्यवसाय किया जाता है। इस देश में पशुचारण व्यवसाय मुख्यत: श्वेत लोगों के नियंत्रण में है और उसमें अश्वेत लोग श्रमिक के रूप में काम करते हैं। वैल्ड क्षेत्रों में गाय बैलों का पालन प्रमुख क्रिया है। यहां उत्तम प्रकार की मैरिनो भेड़ भी पाली जाती है। इस भेड़ का ऊन बहुत ही अच्छी किस्म का होता है। कैप प्रान्त में यहां के बन्तु नामक आदिवासी गाय-बैल और भेड़ चराते हैं। यद्यपि यहां गाय-बैलों की संख्या काफी अधिक है लेकिन फिर भी उनके उत्पाद निर्यात के लिए नहीं बचते।

उष्ण कटिबंधीय घास स्थलों में महत्वपूर्ण पशुओं के उत्पाद हैं—सुखाया हुआ मांस, खालें, ऊन और निम्न कोटि का मांस। यह सभी उत्पाद स्थानीय मांग को ही पूरा कर पाते हैं और इनका निर्यात बहुत कम है। यद्यपि इन घास स्थलों के क्षेत्रों में पशुओं की नस्ल सुधारने का हर सम्भव प्रयत्न किया जा रहा है लेकिन ये क्षेत्र व्यापारिक पशुचारण में शीतोष्ण कटिबंधीय घास स्थलों का मुकाबला नहीं कर सकते।

वन-व्यवसाय या वानिकी

वन लगाने, उनकी देखभाल या व्यवस्था करने तथा लकड़ी के विकास के विज्ञान एवं कला को वन-व्यवसाय या वानिकी कहते हैं। वानिकी एवं वन उद्योग किसी भी राष्ट्र के अर्थ तंत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह लोगों को विभिन्न प्रकार का काम प्रदान करते हैं। समस्त ऐतिहासिक युग में मनुष्य वनों का शोषण करता आया है। जमीन के अन्दर से कोयला प्राप्त करने से पूर्व वनों की लकड़ी का उपयोग मुख्यतः ईंधन के लिए होता था। वनों की लकड़ी को जलाकर खनिज अयस्कों को साफ किया जाता था। अब लकड़ी को मकान, फर्नीचर, कागज और पल्प, कृत्रिम रेशा आदि वस्तुओं के बनाने में प्रयोग करते हैं। वनों से इन वस्तुओं के अतिरिक्त बहुत से उत्पाद जैसे तारपीन, चर्मशोधन पदार्थ, विभिन्न प्रकार के फल, गोंद, लाख तथा विभिन्न प्रकार की जड़ी बूटियां मिलती हैं।

मनुष्य वनों का उपयोग सैकड़ों वर्षों से कर रहा है। उसने वनों को बिना सोचे विचारे बहुत बड़े पैमाने पर उन्हें काट डाला है, इस कारण पृथ्वी पर वनसम्पदा बहुत कम रह गई है। इसके दूसरी ओर जनसंख्या के बढ़ने के कारण लकड़ी और वनीय उत्पाद की मांग बढ़ गई है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि वनीय क्षेत्र को बढ़ाया जाए और वर्तमान वनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जाए। विश्व के लगभग सभी विकासशील एवं विकसित देश अपने-अपने देश में वनीय क्षेत्र बढ़ाने में संलग्न हैं।

लकड़ी काटने का व्यवसाय

वनों से संबंधित अत्यंत महत्वपूर्ण आर्थिक क्रिया लकड़ी काटने की है। लकड़ी काटने का व्यवसाय विश्व के बहुत से क्षेत्रों में होता है। लेकिन इस व्यवसाय के प्रमुख क्षेत्र उत्तरी यूरोप, साईबेरिया के टैगा वन और उत्तर अमेरिका के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र हैं। किसी क्षेत्र में लकड़ी काटने का व्यवसाय, उसका विकास और प्रसार कई कारकों पर निर्भर करता है। इनमें से प्रमुख कारक हैं, वनों का प्रकार, भूमि का उच्चावच, यातायात सुविधाएं, जलवायु दशाएं, लकड़ी की स्थानीय मांग और श्रमिकों की सुविधा। संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि लकड़ी काटने का व्यवसाय शीतोष्ण कटिबंधीय और ऊष्ण कटिबंधीय, दोनों प्रकार के वनों में होता है। दोनों प्रकार के वनों में लकड़ी काटने की विशेषताएं नीचे दी जा रही हैं।

शीतोष्ण कटिबंधीय लकड़ी काटने का व्यवसाय

शीतोष्ण कटिबंधीय वन इमारत बनाने, कागज, लुगदी तथा फर्नीचर आदि के तैयार करने के लिए लकड़ी के प्रमुख स्रोत हैं। इन वनों में एक ही जाति के वृक्ष बहुत बड़े भू-भाग पर मिलते हैं। इसलिए अच्छी किस्म की लकड़ी के वृक्षों को पहचानना और उन्हें काटना आसान होता है। इन वनों में घनी तल-झाड़ी नहीं होती, इसलिए वनों में आना-जाना आसान होता है। वृक्षों की लकड़ी मुलायम और हल्की होती है। अतः उन्हें काटना आसान होता है और उनके ढोने का खर्च भी कम होता है। शीतोष्ण कटिबंधीय वनों में लकड़ी काटने के व्यवसाय का आधुनिकीकरण कर दिया गया है और यहां लकड़ी काटने में मशीनों का प्रयोग खूब होता है। लकड़ी को काटने के लिए शक्ति से चलने वाले आरे और लकड़ी के लट्ठों को ढोने के लिए ट्रैक्टर प्रयोग किए जाते हैं। ये वन विश्व के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों के पास स्थित हैं जहां लकड़ी, कागज, लुगदी और वनीय उत्पादों की बहुत मांग है। उत्तर अमेरिका और यूरोप के विकसित देशों में वनों की देखभाल और उनका प्रबन्ध बहुत ही उच्च स्तर का है।

उष्ण कटिबंधीय लकड़ी काटने का व्यवसाय

उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों की जलवायु गर्म और आर्द्र है, जो घने वनों और तल-झाड़ी के विकास के लिए बहुत ही अनुकूल है। इन वनों के घने होने के कारण इनमें से होकर आना-जाना बहुत कठिन है और लकड़ी काटने के व्यवसाय में यह सबसे बड़ी रुकावट है। इसके अतिरिक्त इन वनों की लकड़ी कड़ी और पानी से भरी होती है। इससे काटने और ढोने में रुकावट आती है। इस क्षेत्र में लकड़ी की

मांग भी कम है जिसके कारण यह व्यवसाय अधिक विकसित न हो सका। इन वनों में महोगनी, स्पेनिश सिडार, इबोनी, रोजवुड, आइबरीवुड, सन्दलवुड, टीक आदि कई उपयोगी वृक्ष हैं जिनकी लकड़ी की मांग स्थानीय व अंतर्राष्ट्रीय है। अब दिनों-दिन उष्ण कटिबंधीय वनों का महत्व बढ़ रहा है और हम आशा कर सकते है कि हमारी भविष्य की लकड़ी की अधिकतर मांग को उष्ण कटिबंधीय वन पूरा करेंगे।

अभ्यास

समीक्षात्मक प्रश्न

1. मनुष्य के प्राथमिक, गौण तथा तृतीयक व्यवसायों के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए और अपने उत्तर को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
2. निम्नलिखित व्यवसायों को स्पष्ट कीजिए :
   (i) संग्रहण, (ii) आखेट, (iii) मत्स्य ग्रहण, (iv) खनन और (v) लकड़ी काटना
3. निम्नलिखित को प्राथमिक, गौण और तृतीयक व्यवसायों के अतर्गत बांटिए :
   (i) पशुचारण, (ii) बस ड्राइवर, (iii) खनन, (iv) इंजीनियर, (v) कृषि, (vi) पशुपालन, (vii) अंतः स्थलीय मत्स्यग्रहण, (viii) भेड़-पालन, (ix) रेडियो बनाना, (x) फिल्म बनाना (xi) कागज बनाना, (xii) वस्त्र निर्माण
4. निम्नलिखित में से किसी एक का जीवन लिखिए :
   (क) मध्य एशिया के चलवासी चरवाहे।
   (ख) उत्तरी अफ्रीका के चलवासी पशुचारण।
   (ग) दक्षिण-पश्चिम एशिया के चलवासी चरवाहे।
   (घ) टुंड्रा प्रदेश के चलवासी चरवाहे।
5. मानव के विकास का स्तर किस प्रकार उसके व्यवसाय को चुनने और उनके जीवन मापन के तरीकों को प्रभावित करता है? उदाहरण देकर समझाइए।
6. एस्किमों के भौतिक वातावरण पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट कीजिए कि एस्किमों का जीवन किस प्रकार उनके वातावरण के अनुकूल है।
7. बुशमैन या पिगमी लोग कैसा जीवन जीते हैं? उनकी संस्कृति के अविकसित रहने के क्या कारण हैं?

8. संसार के अति शीत, अति गर्म, अति शुष्क एवं अति आर्द्र क्षेत्रों में अभी तक खानाबदोश शिकारी लोग क्यों बसते हैं ?
9. संसार की सब शिकार पर निर्भर रहने वाली खानाबदोश जातियों की जनसंख्या इतनी कम क्यों है ? इनकी जनसंख्या उत्तरोत्तर घटती क्यों जा रही है ?
10. वनीय और समुद्रीय प्राणियों के संरक्षण के लिये कौन से आवश्यक पग उठाने चाहिए ?

ज्ञात कीजिए

(i) अपने क्षेत्र में घूम-फिर कर मालूम कीजिए कि कौन-कौन व्यवसाय प्राथमिक, गौण और तृतीयक व्यवसायों के अंतर्गत आते हैं ।

(ii) अपने पास-पड़ोस के किसी वन में घूमिए और मालूम कीजिए कि वन में काम करने वाले व्यक्ति का जीवन कैसा है ।

मानचित्र कार्य

संसार के रेखामानचित्र से निम्नलिखित दिखाइए

(i) उष्ण कटिबंध के चलवासी पशुचारण क्षेत्र, (ii) शीतोष्ण कटिबंध के चलवासी क्षेत्र, (iii) गर्म मरुस्थलों के चलवासी क्षेत्र और (iv) टुंड्रा प्रदेश के चलवासी पशुचारण क्षेत्र ।

अतिरिक्त अध्ययन

1. डेविस, डी० एच०, **दि अर्थ एंड मैन**, दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1955
2. फोर्डे, सी० डी०, **हेबिटेट, इकोनामी एंड सोसाइटी**, लन्दन, 1961
3. हंटिंगटन, ई०, **प्रिंसपिल्स आफ ह्यूमन ज्योग्राफी**, न्यूयार्क, 1953
4. मोरगन, जी० सी०, **ह्यूमन एंड इकोनामिक ज्योग्राफी**, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1973
5. स्टो, जी० डब्लू०, **दि नेटिव रेस आफ साउथ अफ्रीका**, स्वान-सेननशियन एंड कम्पनी लिमिटेड, लन्दन, अध्याय 3 और 4

अध्याय 5

कृषि के विभिन्न प्रकार

मिट्टी को जोतने-गोड़ने तथा फसल उगाने एवं पशु-पालन करने की कार्य प्रणाली, कला एवं विज्ञान को कृषि कहते हैं। कृष्य भूमि विश्व की विशाल एवं विविध संपदाओं में से एक है। यह विश्व की लगभग समस्त जनसंख्या की भोजन, वस्त्र तथा आवास की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

कृषि का प्रारंभ कब और कैसे हुआ, इस का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। कुछ विद्वानों का मत है कि कृषि का प्रारंभ दक्षिण-पश्चिम एशिया में लगभग 4000 वर्ष ईसा पूर्व हुआ। पाषाण युग से संबंधित जो कुछ भी प्रमाण उपलब्ध हैं, उनसे ज्ञात होता है कि मानव उस युग में खेत को जोतने और फसल पैदा करने के लिए पत्थर तथा लकड़ी के औजार प्रयोग करता था और इस नाते यह कहा जाता है कि कृषि का इतिहास कम से कम पाषाण युग तक पुराना है।

प्राचीन काल में सम्भवत: जनसंख्या की वृद्धि और भोजन की मांग बढ़ने के साथ उस समय के लोगों ने अपने-अपने आवास खेतों के निकट बनाए और इस प्रकार कृषि के साथ स्थाई बस्तियां प्रारंभ हुई। जैसे-जैसे लोग एक स्थान पर स्थाई रूप से रहने लगे उनकी सभ्यता अधिकाधिक विकसित होने लगी और वातावरण के साधनों पर उनकी मांग उत्तरोतर बढ़ती चली गई। समुदाय में लोगों की संख्या बढ़ने के परिणामस्वरूप लोगों ने भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए नयी-नयी विधियों का आविष्कार किया। विश्व के विभिन्न भागों में कृषि के प्रसार के साथ फसल उत्पादन के प्रत्येक पहलू में प्रगति हुई। आधुनिक युग में भाप, तेल और जल-विद्युत के चालक शक्ति के रूप में प्रयोग होने से खेती में मशीनों का प्रयोग बढ़ने लगा और इसके परिणामस्वरूप खेतों की उत्पादकता प्रति हेक्टेयर बढ़ने के साथ अधिकाधिक भूमि कृषि के अंतर्गत आ रही है। कृषि के यंत्रीकरण से उत्पादन बहुत बढ़ा और कृषि के विभिन्न उत्पादन बड़ी मात्रा में बचने लगे जिससे विभिन्न फसलों में अंतर्देशीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सम्भव हुआ। इस प्रकार एक ओर संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया जैसे देशों में कृषि की फसलें अपनी मांग पूरा करने के बाद बहुत बड़ी मात्रा में बच जाती हैं जिसे वे और देशों को निर्यात कर देते हैं, तो दूसरी ओर संसार के बहुत से औद्योगिक देश जैसे यूनाइटेड किंगडम, नीदरलैंड और डेन्मार्क अपनी बहुत बड़ी जनसंख्या की भोजन की आवश्यकताएं

कृषि के विभिन्न उत्पादों को आयात करके पूरा करते हैं।

कृषि का वितरण और विभिन्न प्रकार की फसलों का पैदा करना और विविध प्रकार की कृषि क्रियाएं सामान्यतः कई कारकों पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर करती हैं। मुख्य-मुख्य कारक ये हैं—भूमि का ढाल, मिट्टी की संरचना, जलवायु (वर्षा, तापमान, सूर्य का प्रकाश, पवन,पाला आदि)। मिट्टी की उर्वरा शक्ति एवं सामाजिक-आर्थिक कारक जैसे भूमि का स्वामित्व, श्रमिक, बाजार, सिंचाई, यातायात, यंत्र तथा मशीनें आदि। इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप विश्व के विभिन्न भागों में अलग-अलग प्रकार की कृषि विधियां अपनाई जाती हैं (चित्र 9)।

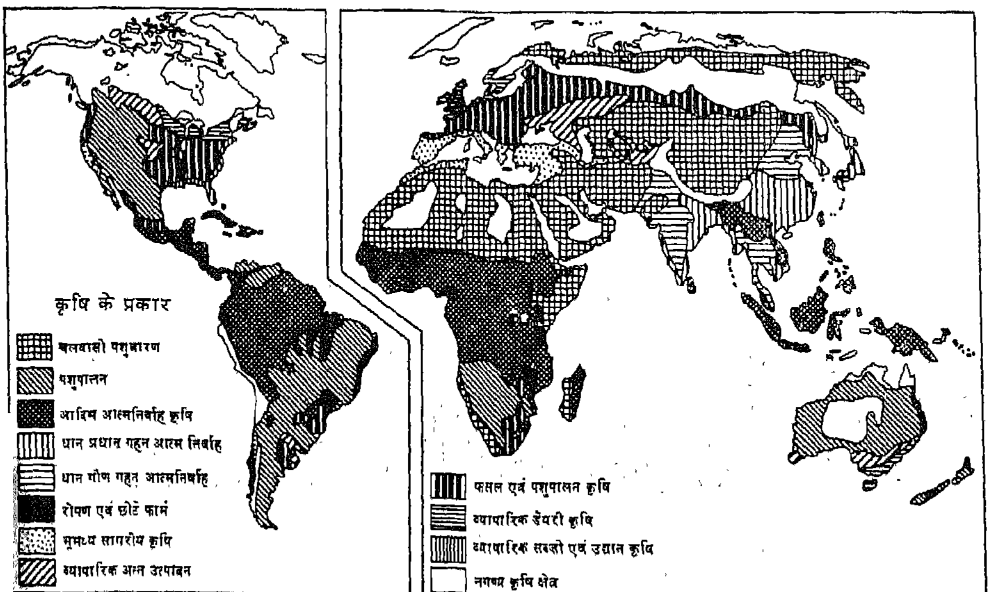
कृषि के प्रकार

संसार में कृषि के विभिन्न प्रकार ये है स्थानान्तरी कृषि, स्थान बद्ध कृषि, जीविका कृषि, व्यापारिक कृषि, गहन कृषि, विस्तृत कृषि, मिश्रित कृषि, डेरी फार्मिंग, ट्रक कृषि, रोपण कृषि और उद्यान कृषि। यह सभी कृषि की पद्धतियां व्यक्तिगत, सामूहिक अथवा सहकारिता के आधार पर अपनाई जाती हैं।

स्थानांतरी कृषि

स्थानांतरी कृषि आदिकालीन कृषि का एक उदाहरण है। यह मुख्यतः मध्य अफ्रीका और दक्षिण-पूर्व एशिया के गर्म-तर वनों में अपनाई जाती है। स्थानांतरी कृषि में किसान अपने परिवार की भोजन आवश्यकता को पूरा करने के लिए खेती करता है। जो कुछ भी थोड़ा बहुत उपयोग के बाद बच जाता है उनके बदले में दूसरे व्यक्तियों से अन्य आवश्यक वस्तुएं ले लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि स्थानांन्तरी कृषि के क्षेत्रों की अर्थ व्यवस्था लगभग स्थायी होती है और उसमें प्रगति करने की संभावना बहुत कम होती है। इस कृषि में अर्थ-व्यवस्था पूर्णतया ग्रामीण उत्पादन पर निर्भर करती है।

स्थानांतरी कृषि को विश्व के विभिन्न भागों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। इसे "काटना और जलाना" और "बुश फैलों" कृषि भी कहते हैं। हिन्देशिया में इसका स्थानीय नाम 'लेडान', उत्तरी-पूर्वी



चित्र 9 : विश्व के प्रमुख कृषि क्षेत्र

भारत में 'झूमिंग', फिलिपाइन्स में 'चेनगिन', मध्य अमेरिका और मैक्सिको में 'मिल्पा', वियतनाम में 'रे', वैनेज्वेला में 'कोनुको', ब्राजील में 'रोका' और जायरे नदी की घाटी तथा मध्य अफ्रीका में 'मसोले' कहते हैं। स्थानांतरी कृषि की प्रमुख विशेषताएं यह हैं—इसमें सबसे पहले कुल्हाड़ी से वन के किसी छोटे टुकड़े को साफ किया जाता है और काटे गए वृक्षों तथा झाड़ियों को जला देते हैं। उसके बाद साफ किए खेतों पर कुछ वर्षों तक फसलें उगाई जाती हैं। जब इन खेतों की उर्वरता तीन चार वर्षो में समाप्त हो जाती है और उनमें अनावश्यक पौधे उग आते हैं तो इन खेतों को छोड़कर नये स्थान पर वनों को साफ करके नये खेत बनाए जाते हैं। कुछ देशों में स्थानांतरी कृषि का चक्र आठ साल तक का होता है।

भारत के उत्तरी-पूर्वी भाग में जिसके अंतर्गत असम, मेघालय, मणीपुर, त्रिपुरा, नागालेंड और मिजोरम के राज्य आते हैं, यहां की अनेक जनजातियों द्वारा राज्यों के अलग-अलग एवं आंतरिक भागों में स्थानांतरी कृषि अपनाई जाती है। यह लोग वन के किसी टुकड़े पर वनस्पति काट देते हैं लेकिन उपयोगी वृक्षों को छोड़ देते हैं और तल-झाड़ी को साफ कर उसे जला देते हैं। साफ की गई भूमि पर छिटका बुआई की जाती है और फसल की कोई विशेष देखभाल नहीं की जाती। इन खेतों पर दो या तीन वर्ष तक खेती की जाती है और बाद में उन्हें छोड़ कर नये खेत बनाए जाते हैं। इस प्रकार स्थानान्तरी कृषि की विशेषता यह है कि इसमें फसलों के हेर फेर के स्थान पर खेतों का हेरफेर होता है। खेत का औसत आकार 0.5 से 0.7 हैक्टर तक होता है। इन खेतों पर एक साथ कई फसलें बोई जाती हैं। इनमें से कुछ जड़ों वाली फसलें होती हैं और कुछ खाद्यान्न वाली। विभिन्न प्रकार की फसलों के बोने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनी रहती है और मृदा अपरदन भी नहीं हो पाता। झूमिंग खेती में न्यूनतम औजारों जैसे कुल्हाड़ी और हंसिया का प्रयोग होता है। स्थानांतरी कृषि इस प्रकार उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय वनों में वातावरण की दशाओं के अनुकूल होती है।

भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में अपनाई जाने वाली स्थानांतरी कृषि वहां की अर्थव्यवस्था में एक बहुत बड़ी रुकावट है। इसलिए इन राज्यों की सरकारें इस बात का निरंतर प्रयत्न कर रही हैं कि स्थानांतरी कृषि को स्थान बद्ध कृषि में बदला जाए जिससे यहां की कई सामाजिक आर्थिक समस्याओं का निदान किया जा सके। झूमिंग कृषि को अपनाने वाले लोगों में जब एक बार यह विश्वास पैदा हो जाएगा कि इस प्रकार की कृषि से बहुत सी हानियां उत्पन्न होती हैं तो भूमि का अधिक अच्छा उपयोग हो सकेगा। स्थानांतरी कृषि को स्थानबद्ध कृषि में बदलने के लिए निम्नलिखित कार्य करने चाहिए :

स्थानांतरी कृषि में खेती करने वाले परिवार की कोई अपनी भूमि नहीं होती। इसलिए वह खेत को अच्छा बनाने के लिए इस पर लागत नहीं लगाता। अतः आवश्यक है कि प्रत्येक परिवार को भूमि का एक निश्चित टुकड़ा दिया जाए। स्थानांतरी कृषि अपनाने वाले किसानों को अच्छे किस्म के बीज, उर्वरक, कीटनाशक दवाएं नहीं मिल पाती क्योंकि वे आर्थिक रूप में पिछड़े होने के कारण इन्हे खरीद नहीं सकते। अतः राज्य की ओर से इन सब वस्तुओं का किसानों को उपलब्ध कराना आवश्यक है। अदरक, हल्दी, टेपिओका तथा बहुत से फलों वाली नकदी फसलें जो स्थानांतरी कृषि में पैदा की जाती हैं, उपयुक्त बाजार के न होने के कारण प्राय: खराब हो जाती है। अतः आवश्यक है कि इन वस्तुओं के प्रयोग के लिए उपयुक्त उद्योग स्थापित किए जाएं जिनमें इन वस्तुओं से अधिक उपयोगी वस्तुओं का निर्माण किया जा सके।

स्थानबद्ध कृषि

स्थानबद्ध कृषि स्थानांतरी के बिल्कुल विपरीत होती है। इस कृषि में किसी एक स्थान पर स्थायी रूप में निवास करने वाला किसान और उसका परिवार मिलजुलकर खेती करते हैं। आजकल संसार में अधिकतर खेती स्थानबद्ध कृषि के रूप में अपनाई जाती है।

स्थानबद्ध खेती अधिकतर उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में अपनाई जाती है जहां किसान एक ही स्थान पर स्थायी रूप में बस जाता है और खेती करता है। वह खेती में फसलों का हेरफेर करता है और भूमि तथा फसलों की अधिक देखभाल करता है। खेती करने की विधियां अधिक

अच्छी हैं एवं वह विभिन्न प्रकार के खेती के औजारों का प्रयोग करता है, अधिक उत्पादन प्राप्त करता है जिससे अधिक जनसंख्या की आवश्यकताओं की स्थायी रूप में पूर्ति होती है। वह खेतों पर पशुओं को रखता है जिनसे दूध और मांस मिलने के अतिरिक्त उन्हें बोझा ढोने और खेती का काम करने में उपयोग किया जाता है। फसलें वर्षा ऋतु और शीत ऋतु में पैदा की जाती हैं। मध्य अमेरिका और दक्षिण-पूर्व एशिया में स्थानबद्ध खेती करने वाले बहुत-से किसानों को बड़े-बड़े रोपण कृषि के फार्मों पर काम मिला है। यह लोग कुछ समय रोपण कृषि के फार्मों पर काम करते हैं और कुछ समय अपने निजी खेतों पर। दक्षिण-पूर्व एशिया और पश्चिम अफ्रीका की स्थानबद्ध कृषि में नकदी फसलों के उत्पादन के साथ वनीय वस्तुओं का संग्रह करना भी शामिल है।

जीविका कृषि

ऐसी कृषि, जो संपूर्ण रुप से खेती करने वाले परिवार या उसी क्षेत्र में खप जाती है जहां फसलें उपजाई जाती हैं, जीविका कृषि कहलाती है। जीविका कृषि भी कई प्रकार की होती है। यह स्थानांतरी अथवा स्थानबद्ध प्रकार की कृषि हो सकती है। यह आदिकालीन प्रकार या अप्राचीन कृषि हो सकती है। यह गहन और विस्तृत दोनों प्रकार की कृषि हो सकती है। जब तक कृषि का मुख्य उद्देश्य केवल स्थानीय उत्पादक की आवश्यकताओं को पूरा करना बना रहता है, उस समय तक हर प्रकार की कृषि जीविका कृषि कहलाती है।

आदिकालीन एवं अप्राचीन कृषि विधियों में प्रमुख अन्तर खेती में काम आने वाले औजारों और साज सामान से किया जाता है। आदिकालीन कृषि में मुख्यतः वही औजार प्रयोग किए जाते हैं, जो स्थानांतरी कृषि में इस्तेमाल होते हैं। अप्राचीन जीविका कृषि में लकड़ी का हल और पटेला का प्रयोग तथा बाड़ और मेड़ आदि बनाए जाते हैं। भारत में जीविका कृषि मध्य प्रदेश, बुंदेलखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं दक्षिण बिहार के अविकसित भागों में अपनाई जाती है।

गहन जीविका कृषि : गहन जीविका कृषि का सबसे अधिक विकास एशिया के मानसूनी प्रदेशों में हुआ है। चीन, जापान, कोरिया, भारत, बंगलादेश, बर्मा, थाईलैंड, श्रीलंका, मलेशिया, फिलीपाइन्स, हिन्देशिया एवं वियतनाम में गहन जीविका कृषि अपनाई जाती है। इन कृष्य देशों में यूरोप और उत्तर अमेरिका के औद्योगिक क्षेत्रों की अपेक्षा जनसंख्या का घनत्व बहुत अधिक है। गत कई दशाब्दियों से इन देशों में जनसंख्या अबाधगति से बढ़ रही है जिसके कारण भूमि का कृषि के लिए गहनतम उपयोग हो रहा है। आर्द्र निम्न भूमियों और सीढ़ीदार उच्च भूमियों दोनों का ही गहन उपयोग हो रहा है जिससे घनी जनसंख्या का निर्वाह हो सके।

गहन जीविका कृषि मूलतया दो प्रकार की होती है। एक तो वह कृषि जिसमें धान की खेती का प्रमुत्व होता है और दूसरी कृषि में अन्य फसलें जैसे गेहूं, दालें, मक्का, ज्वार-बाजरा, सारप्पम, कौलिंग, सोयाबीन, गन्ना, जड़ों वाली फसलें और तरकारियां पैदा की जाती हैं।

धान वाली गहन जीविका कृषि : मानसून-एशिया के अधिकांश देशों में ऐसी गहन जीविका कृषि अपनाई जाती है जिसमें धान की खेती का प्रमुत्व होता है। इस प्रकार की कृषि की निम्न विशेषताएं हैं। जोतें बहुत छोटी होती हैं। पुश्तदर पुश्त द्वारा खेतों को इतने छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट दिया गया है कि वे अब आर्थिक रूप से बेकार हो गए हैं। जापान में औसत जोत 0.6 हेक्टेयर है और कोरिया तथा पश्चिम बंगाल (भारत) में तो औसत जोत इससे भी कम है। प्रत्येक किसान इन छोटे-छोटे खेतों पर अपने परिवार की जीविका के लिए गहन खेती करता है। मानसून एशिया में भूमि की आवश्यकता इतनी अधिक है कि यहां कृष्य भूमि के चप्पे-चप्पे पर खेती की जाती है। विभिन्न खेत हाथ की बनाई मिट्टी की छोटी-छोटी मेड़ों से अलग-अलग किए गए हैं और किसान इन मेड़ों को अपने खेत पर जाने के लिए पगडंडी के रूप में प्रयोग करता है। खेती के लिए अधिक से अधिक भूमि प्राप्त करने के लिए इन मेड़ों को बहुत ही पतला बनाया जाता है। पहाड़ों के तीव्र ढाल और अनउपजाऊ ऊसर या कल्लर भूमि पर ही खेती नहीं की जाती। खेती इतनी गहन की जाती है कि एक ही खेत से वर्ष में दो, तीन या कहीं-कहीं चार फसलें तक प्राप्त की जाती हैं। जिन क्षेत्रों में वर्ष में चावल की एक ही फसल पैदा की जाती है वहां

शुष्क ऋतु में अन्य खाद्य फसलें या नगदी फसलें जैसे ओट, दालें, तम्बाकू और तेलहन आदि उपजाई जाती हैं।

धान की खेती में परंपरागत हाथों से बहुत अधिक काम होता है। पानी से भरे या गीले खेतों में भैंसों, बैलों या घोड़ों की मदद से जुताई की जाती है। धान का पौधा स्त्रियों द्वारा हाथों से कतारों में लगाया जाता है और हंसिये से फसल काटी जाती है। धान की कुटाई भी हाथों से की जाती है। खेतों के औजार बड़े साधारण होते हैं। हाल ही में कुछ ऐसी मशीनें बनाई गई हैं जो पानी भरे छोटे-छोटे खेतों को जोतने और गोड़ने के काम में लाई जा सकती हैं। जापान और चीन के खेतों में ऐसी मशीनें प्रयोग की जाती हैं और मानसून एशिया के अन्य देशों में भी इन मशीनों का प्रयोग बढ़ रहा है।

इस प्रकार की कृषि में किसान का ध्यान केवल खाद्य फसल, विशेषतया धान और सब्जियों की पैदावार पर केंद्रित होता है। अत: जानवरों के चरागाह के लिए बहुत ही कम भूमि छोड़ी जाती है। इसीलिए धान प्रधान गहन जीविका कृषि के क्षेत्रों में बहुत ही कम संख्या में भेड़, बकरियां और घोड़े पाले जाते हैं। भारवाहक पशु के रूप में भैंस कई क्षेत्रों में खेतों पर पाली जाती है। छोटे पैमाने पर कहीं-कहीं कुक्कुट पालन होता है। चीन और जापान में सूअर कूड़े-करकट पर अपमार्जक-जानवर के रूप में पाले जाते हैं। बहुत से किसान अपने खेतों पर मत्स्य पालन करते हैं। मछली के द्वारा वे अपने भोजन में प्रोटीन की कमी को पूरा करते हैं।

अपने खेतों से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने और भूमि की उर्वरता बनाए रखने के लिए किसान हर प्रकार की खादों, सड़ी-गली वस्तुओं, गोबर और मानव का मल-मूत्र खाद के रूप में प्रयोग करता है। वह हरी खाद और रासायनिक उर्वरकों का भी प्रयोग मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए करता है। पश्चिम बंगाल और केरल में की जाने वाली धान की खेती धान प्रधान गहन जीविका कृषि का उत्तम उदाहरण है।

अन्य फसल वाली गहन जीविका कृषि : उच्चावच, जलवायु और मृदा की विविधता के कारण मानसून क्षेत्र के बहुत-से भागों में धान की खेती करना संभव नहीं है। यद्यपि इन क्षेत्रों में भी कृषि का व्यापक स्वरूप जीविका कृषि ही है, परन्तु यहां धान को छोड़कर कई प्रकार की फसलें उपजाई जाती हैं। उत्तरी चीन, मंचूरिया, उत्तर कोरिया, पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गेहूं, जौ, मक्का, ज्वार-बाजरा, सोयाबीन और तेलहन की गहन खेती होती है। बर्मा, थाईलैंड और प्रायद्वीपी भारत में ज्वार-बाजरा और मक्का प्रमुख फसले हैं क्योंकि इन क्षेत्रों में चावल की खेती के लिए वर्षा पर्याप्त नहीं होती। इन क्षेत्रों में भी खेती की विशेषताएं बिल्कुल वैसी ही हैं जैसी धान प्रधान गहन जीविका कृषि के क्षेत्रों में पाई जाती है, अर्थात भूमि का गहन उपयोग, शारीरिक श्रम अधिक, खेतों में मशीनों का कम प्रयोग, और विभिन्न प्रकार की खादों और उर्वरकों का प्रयोग। यहां पानी की कमी को पूरा करने के लिए खेतों पर प्राय: सिंचाई की जाती है। परन्तु सिंचाई की सुविधा सभी जगह पर्याप्त नहीं है।

भारत में खेतों की जोतें छोटी और अलाभकारी हैं। ग्रामीण जनसंख्या के चौथाई भाग के पास औसत जोत 0.4 हेक्टेयर से भी कम है और दूसरी चौथाई जनसंख्या भूमिहीन किसान हैं। इस कारण यहां के अधिकांश किसान गरीब हैं, वे खेती के आधुनिक यंत्र, उर्वरक, उत्तम बीज और कीटनाशक आदि नहीं खरीद सकते। यद्यपि पंजाब, हरियाणा और पश्चिम उत्तर प्रदेश के कुछ किसान मालदार हैं जिनमें ट्रैक्टर और खेती के अन्य यंत्र काफी लोकप्रिय हैं, अन्यथा अधिकांश खेतों पर बैलों और भैंसों से खेती का तथा सामान ढोने का काम लिया जाता है।

रोपण कृषि

उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में मुख्यत: नकदी फसल उपजाने के लिए रोपण कृषि की जाती है। यह एक विशेष प्रकार की व्यापारिक कृषि है जिसमें बड़े-बड़े बागानों में मुख्यत: किसी एक नकदी फसल का उत्पादन कारखाने की तरह बड़े पैमाने पर किया जाता है। रोपण कृषि एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों के कई भागों में की जाती है। रोपण कृषि की मुख्य फसलें रबर, तैल-ताड़, कोको, कहवा,

चाय, नारियल, कपास, पटसन, हैम्प, अनन्नास, केला तथा गन्ना है।

विश्व में रोपण कृषि का प्रारंभ उपनिवेशी-काल से हुआ है जिसमें यूरोपीय संगठन, कुशलता और पूंजी का निवेश हुआ और सस्ते श्रम का स्थानीय या आयातित प्रयोग किया गया। प्रारंभ में कुछ स्थानों पर दास या बंधुआ मजदूरों को काम पर लगाया गया, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका के कपास के खेत और ब्राजील के गन्ने के खेतों पर अफ्रीका के नीग्रो से काम लिया गया और श्रीलंका के चाय के बागानों तथा मलेशिया के रबर के बगानों पर भारत के तमिल लोगों को काम पर लगाया गया।

इन बागानों पर विशेष कुशलता से खेती की जाती है और अधिकतर बगानों में मशीनों तथा उर्वरकों का खूब प्रयोग होता है। इस कृषि का उद्देश्य प्रति हेक्टेयर उपज अधिक करने के लिए उत्तम कोटि का एवं अत्यधिक मात्रा में उत्पादन है जिसका अधिकाधिक भाग निर्यात किया जा सके। इन बागानों में तैयार किया गया अंतिम उत्पाद, चाहे वह रबर हो, ताड़ का तेल हो या चाय की पत्ती अथवा काफी का पाउडर, इन सभी का संसाधन बड़ी सावधानी से किया जाता है और उनका निर्माण विश्व की मांग के स्तर और मापदंड, के अनुसार किया जाता है। इन उत्पादों में विश्व स्पर्धा बहुत अधिक होती है। अतः व्यक्तिगत किसान की अपेक्षा बड़े-बड़े बागानों की कम्पनियां इन विश्व-मांगों को अच्छी तरह पूरा कर लेते हैं।

उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में जहां रोपण कृषि अपनाई जाती है, श्वेत मजदूर शायद ही देखने को मिलता है। वह संभवतः जलवायु और स्वास्थ्य के कारण यहां काम नहीं कर पाता। फिर भी उष्ण कटिबंध के सभी भाग रोपण कृषि के अनुकूल नहीं है। कुछ क्षेत्रों में लगातार भारी वर्षा होती है। इसके विपरीत कुछ भागों में बहुत ही कम वर्षा हो पाती है। इसी प्रकार सभी जगह तापमान की दशाएं फसलों की पैदावार और मनुष्य के लिए अनुकूल नहीं हैं। इसके अतिरिक्त तूफान, उच्चावच, अपवाह, मिट्टी और प्राकृतिक वनस्पति की दशाएं भी रोपण कृषि के विकास में रुकावट डालती हैं। अभिगम्यता, श्रमिकों का मिलना, वनस्पति को साफ करने में कठिनाइयां, विभिन्न प्रकार के कीड़ों, मकोड़ों, मच्छरों और बीमारियों का होना, उष्ण कटिबंधीय मृदा का शीघ्र खराब होना तथा सरकार की नीतियां कुछ ऐसे कारक हैं जो रोपण कृषि के विकास को नियंत्रित करते हैं। इन कारकों के परिणामस्वरूप संसार के रोपण कृषि के प्रमुख क्षेत्र उष्ण कटिबंध की संकरी पट्टी में समुद्र के किनारे स्थित हैं या ऐसे भागों में हैं जहां सड़कों, रेलों और नाव्य नदियों की अच्छी सुविधाएं हैं।

रोपण कृषि के बागान बहुत बड़े-बड़े होते हैं और ये मुख्यतः विरल जनसंख्या के क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इन बागानों का आकार मलेशिया में 40 हेक्टेयर से लेकर लिबेरिया में 60000 हेक्टेयर तक होता है। इतने बड़े-बड़े बागानों में बहुत बड़ी संख्या में अनुशासित श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। चूंकि रोपण कृषि के बागान विरल जनसंख्या के क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं, अतः श्रमिकों को सघन जनसंख्या के क्षेत्रों से मंगाना पड़ता है और बागान पर ही उनके रहने, भोजन, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि की सुविधाओं का प्रबन्ध करना होता है। उपनिवेशी-युग में इस समस्या का निदान दासों द्वारा किया जाता था। बाद में बहुत-से बंधुआ मजदूर विशेषतया भारत से ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न भागों पर गन्ने के बागानों पर काम करने के लिए ले जाए गए। मलेशिया के रबर के बागानों और श्रीलंका के चाय के बागानों पर भी बहुत-से भारतीय काम करते हैं।

इन बागानों पर सभी अधिकारी, मालिक, तकनीकी कर्मचारी एवं प्रबंधक प्रधानतया यूरोपीय होते हैं। इन बागानों में लगभग सभी फसलों को बाहर भेजने से पूर्व पूरी तरह संसाधित किया जाता है। बागानों पर ही वहां की पैदावार को संसाधित करने के कई कारण हैं। पहला, फसल काटने के बाद उसमें मात्रा का ह्रास शीघ्र होने लगता है। दूसरे, संसाधन के बाद उत्पाद का मूल्य बढ़ जाता है और संसाधित उत्पाद अधिक मात्रा में ढोया जा सकता है। तीसरे, बहुत सी वस्तुएं अपनी कच्ची अवस्था में अथवा बिना संसाधित किए शीघ्र ही खराब हो जाती हैं, परंतु संसाधित करने के बाद वे लम्बे समय तक खराब नहीं होती। रोपण फसल के संसाधित करने की आवश्यकता फसलों के अनुसार अलग-अलग होती है।

वास्तव में जिस फसल के संसाधित करने की प्रक्रिया जितनी ही जटिल होगी उस फसल के बागानों में उत्पादन करने की सम्भावनाएं उतनी ही बढ़ जाएंगी। रोपण कृषि में वार्षिक फसलों के बजाय चिरस्थाई वृक्षों या झाड़ी वाली फसलें अधिक उपयुक्त होती हैं क्योंकि ऐसी फसलों के लिए हर वर्ष खेत तैयार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती और न फसल की कटाई के लिए एक विशेष ऋतु में एक साथ अधिक मजदूरों की जरूरत पड़ती है। फिर रोपण कृषि की सफलता मुख्यत: सस्ते श्रम पर निर्भर करती है।

गहन कृषि

गहन कृषि वह खेती है जिसमें अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रति इकाई भूमि पर पूंजी और श्रम अधिक मात्रा में लगाया जाता है। गहन खेती में अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरक, अच्छे किस्म के बीज, कीटनाशक दवाइयां, सिंचाई, सस्यावर्तन एवं हरी खाद का खूब प्रयोग किया जाता है। कृषि की यह पद्धति संसार के उन्हीं क्षेत्रों में अपनाई जाती है, जहां प्रति व्यक्ति कृष्य भूमि का भाग बहुत कम होता है, जहां खेती करने के लिए भूमि सीमित है और जहां जनसंख्या का घनत्व अधिक है। चीन, जापान, बंगला देश, भारत फिलीपाइन्स, वियतनाम, मलेशिया और थाईलैंड में गहन कृषि अपनाई जाती है।

तालिका 2

रोपण फसलें—1974

फसल	क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर में)	निर्यात मूल्य (करोड़ डालर)	उ० और द० अमेरिका क	ख	एशिया क	ख	अफ्रीका क	ख	ओसनिया क	ख
कपास	310	230	35	42	37	14	9	25	—	—
मूंगफली	180	40	15	—	53	9	30	82	—	—
गन्ना	100	209	50	50	39	17	7	8	4	7
रबर	60	125	1	—	90	89	7	5	—	—
कहवा	60	228	66	69	06	05	27	25	—	—
कोको	50	54	25	19	—	—	72	79	—	—
तम्बाकू	40	107	31	62	46	16	5	10	—	—
पटसन	29	17	—	—	96	94	—	—	—	—
केला	16	43	61	76	25	11	5	9	—	1
चाय	12	67	—	—	27	81	7	10	—	—
नारियल	—	41	8	3	77	83	5	1	6	1
ताड़-तेल	—	25	—	—	25	—	69	—	—	—
सिसल और अगेव्स	12	12	48	—	3	54	49	39	—	—

(क) विश्व उत्पादन का प्रतिशत भार

(ख) विश्व निर्यात का प्रतिशत मूल्य

स्रोत : एफ० ए० ओ० प्रोडेक्शन इयर बुक 1974

गहन कृषि दो प्रकार की होती है : (1) धान प्रधान गहन कृषि और (2) अन्य फसलों वाली गहन कृषि। इन दोनों प्रकार की कृषि पद्धतियों का विवरण गहन जीविका कृषि के अंतर्गत पिछले पृष्ठों में दिया गया है। गहन कृषि की प्रमुख विशेषताएं ये हैं (क) कृषि जोतों का बहुत छोटा होना, (ख) बहुत अधिक शारीरिक श्रम का लगाना, (ग) पशुचारणिक खेती का बहुत कम विकास, (घ) एक वर्ष में उसी खेत से दो या तीन फसल प्राप्त करना और (ङ) खाद, उर्वरक, कीटनाशक दवाइयों और सिंचाई का अधिक उपयोग।

विस्तृत कृषि

बड़े-बड़े खेतों या जोतों पर मुख्यत: यांत्रिक खेती को विस्तृत खेती कहते हैं। इसमें श्रमिकों का उपयोग कम, प्रति हेक्टेयर उपज अपेक्षाकृत कम, कुल उत्पादन अधिक और प्रति व्यक्ति उत्पादन अपेक्षाकृत अधिक होता है। इस प्रकार की कृषि मुख्यत: विरल आबाद क्षेत्रों में ही अपनाई जाती है क्योंकि वहां कृष्य भूमि की कोई कमी नहीं होती।

विस्तृत कृषि का विकास हाल ही में हुआ है। यह मुख्यत: मध्य अक्षांशों के महाद्वीपीय भागों में पाई जाती है। ये वास्तव में वही क्षेत्र हैं जहां प्राचीन काल में चलवासी चरवाहे घूमा करते थे। महाद्वीपों के ये आन्तरिक भाग समुद्र के समकारी प्रभाव से बहुत दूर हैं और यहां वर्षा बहुत कम, पूरे वर्ष में लगभग 30 से 60 सेंन्टीमीटर के बीच होती है। अत: ऐसे क्षेत्र में फसलें पैदा करना जान-बूझकर नुकसान का खतरा मोल लेना है। कृषि की मशीनों के अविष्कार के ही कारण यहां खाद्यान्न, विशेषतया गेहूं की खेती बड़े पैमाने पर सम्भव हो सकी। इस क्षेत्र में महाद्वीपीय रेल मार्गों की सुविधा हो जाने के कारण यहां के उत्पादों को बड़ी मात्रा से निर्यात करना सरल हो सका। विश्व में विस्तृत कृषि के प्रमुख क्षेत्र सोवियत संघ में स्टेप्स का भाग, संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य और पश्चिमी मैदान, कनाडा का प्रेयरी भाग, अर्जेन्टिना के पम्पास और आस्ट्रेलिया के डाउन्स हैं। विस्तृत कृषि की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं।

विस्तृत कृषि में खेतों का आकार सामान्यत: बहुत बड़ा होता है, ये प्राय: 240 से 16000 हेक्टेयर तक के होते हैं। विस्तृत कृषि के क्षेत्रों में बस्तियां बहुत छोटी और अलग-अलग तथा दूर-दूर छिटकी होती है जिससे मनुष्य का एकाकी जीवन एक मानवीय समस्या बन जाता है। खेती पूर्णतया यांत्रिक है और इस प्रकार यहां खेती के सारे कार्य, खेत तैयार करने से फसल काटने तक मशीनों द्वारा ही किए जाते है। विस्तृत कृषि में प्रयोग होने वाली प्रमुख मशीनें ट्रैक्टर, हल, ड्रिल कम्बाइन हार्वेस्टर, थ्रेशर और विनोअर हैं। खाद्यानों को सुरक्षित रखने के लिए बड़े-बड़े गोदाम, साइलो या एली वेटरस बनाए गए हैं। एक फसली खेती अर्थात गेहूं की पैदावार विस्तृत कृषि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। इनमें बोने की ऋतु के अनुसार दो प्रकार का गेहूं, शीतकालीन गेहुं और बसन्त कालीन गेहूं पैदा किया जाता है। जौ, ओट, राई, फलैक्स और तेलहन अन्य फसलें हैं जो कहीं-कहीं गेहूं के अतिरिक्त पैदा की जाती हैं। विस्तृत यांत्रिक खेतों में जो गेहूं पैदा किया जाता है उसकी उपज प्रति हेक्टेयर अधिक नहीं होती। इसके विपरीत गहन कृषि के अन्तर्गत पंजाब और जापान में खाद्यान्न की प्रति हेक्टेयर उपज तीन गुना तक होती है। विस्तृत खेती के यांत्रिक फार्मों में श्रमिक बहुत कम संख्या में काम करते हैं। इसलिए प्रति व्यक्ति उत्पादन काफी ऊंचा होता है। विस्तृत कृषि की और विशेषताएं सिंचाई की कमी, खेतों की मिलकियत किसान के हाथ में होना, बटाई की पद्धति न होना, फसल की कटाई के समय कुछ अतिरिक्त लोगों को दैनिक वेतन पर रखा जाना और फसलों को जलवायु की विषमताओं का सामना करना आदि हैं।

गेहूं उत्पादन की प्रमुख पट्टियां अब लगातार कम हो रही हैं और उनके स्थान पर बाजार विकसित हो रहे हैं। इसका कारण यह है कि अधिक घनी आबादी के क्षेत्रों में भूमि का मूल्य बढ़ जाने के कारण पूर्वी संयुक्त राज्य, ब्यूनस आयर्स, आस्ट्रेलिया के तटीय भाग और यूक्रेन से लोग गेहूं के इन क्षेत्रों की ओर आ रहे हैं। लोगों का यह प्रवास अपेक्षाकृत अधिक शुष्क प्रदेश की ओर हो रहा है। इसलिए अब विस्तृत खेती धीरे-धीरे मिश्रित गहन खेती द्वारा हटाई जा रही है। इस प्रकार

विस्तृत यांत्रिक कृषि जो 19वीं शताब्दी से प्रारंभ हुई और जिसका इतिहास बहुत ही अल्प कालिक है, अब सम्भवत: विश्व के बहुत ही सीमित क्षेत्रों में देखने को मिलती है।

मिश्रित कृषि

एक प्रकार की कृषि जिसमें फसलें उगाना और पशुपालन दोनों ही कार्य साथ-साथ होते हैं, मिश्रित कृषि कहलाती है। यह मिश्रित बुबाई से भिन्न है। मिश्रित बुबाई में एक ही खेत पर एक साथ कई फसलें पैदा की जाती हैं। मिश्रित कृषि समस्त यूरोप में, पश्चिम में आयरलैंड से प्रारम्भ होकर मध्य यूरोप होते हुए रूस तक लगभग सभी देशों में अपनाई जाती है। यह उत्तर अमेरिका के पूर्वी भाग, अर्जेन्टिना के पम्पास, दक्षिण-पूर्व आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका और न्यूजीलैंड में भी अपनाई जाती है। वास्तव में मिश्रित खेती का संबंध मूलतया घनी जनसंख्या, शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों से है जहां का कृषक अपने उत्पादों की बिक्री के लिए अधिक से अधिक उत्पादन करता है और उद्योगों द्वारा अपनी कृषि में अधिक उत्पादन पाने के लिए अधिकाधिक निवेश देता है। प्रभावी कृषि विधियां, उत्तम यातायात की सुविधाएं, नगरीय बाजार की निकटता और विश्वसनीय वर्षा आदि जैसे कारक मिश्रित खेती में अधिक उत्पादन में मदद देते हैं। शीतल आर्द्र ग्रीष्म ऋतु और आर्द्र शीत ऋतु चारे की फसल के विकास में सहयोग देती है और पर्वतीय ढलानों तथा निम्न समतल भूभागों पर सारा वर्ष घास उपलब्ध होती है। अतः चरागाह पूरे वर्ष हरी घास से भरे रहते हैं और ऊपर बड़ी संख्या में भेड़ें तथा गाय-बैल पाले जाते हैं।

मिश्रित कृषि की प्रमुख विशेषताएं यह हैं कि इस कृषि प्रकार में खेतों से दोनों प्रकार के उत्पाद, फसलें तथा पशु-उत्पाद मिलते हैं और इसमें दोनों क्रियाओं का पूर्ण समन्वय किया जाता है। इस कृषि में कृष्य भूमि का लगभग 20 प्रतिशत भाग चारे की उपज और लगभग 80 प्रतिशत भूमि फसलों के उत्पादन को दी जाती है। चारे की फसल पर वही ध्यान दिया जाता है जो अन्य फसलों को किसान देता है। यही एक विशेषता मिश्रित कृषि को अन्य कृषि प्रकारों से अलग करती है।

मिश्रित कृषि में विभिन्न प्रकार की फसलें उपजाई जाती हैं। भूमि उपयोग में खाद्यानों की प्रधानता रहती है, जो मिट्टी और जलवायु के अनुसार बदलते रहते हैं। यूरोप में गेहूं और संयुक्त राज्य अमेरिका में मक्के की प्रधानता होती है। खाद्यानों का एक बहुत बड़ा हिस्सा जानवरों को खिलाने पर खर्च किया जाता है और शेष भाग को विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ बनाने के लिए उद्योगपतियों को बेच दिया जाता है। मिश्रित खेती में जड़ वाली फसलें भी पैदा की जाती हैं जिनमें से प्रमुख हैं शलगम, मूली, आलू और चुकन्दर। सुअरों और गाय बैलों को खिलाने के लिए तथा सब्जी के लिए जर्मनी में आलू पैदा किया जाता है। यहाँ आलू का बहुत सा भाग शराब बनाने के लिए उद्योगों को बेच दिया जाता है। चुकन्दर से चीनी बनाई जाती है। मिश्रित खेती की यह और विशेषता है कि इसमें मशीन, खेतों के लिए मकान गोदाम, खाद और उर्वरक एवं अतिकुशल श्रमिकों तथा कृषि संबंधी विविध प्रकार के प्रशिक्षण पर बहुत अधिक धन व्यय किया जाता है। मिश्रित कृषि के तीन लाभ हैं, पहला यह कि इससे किसान की बाजार में गिरावट आने पर नुकसान से रक्षा होती है, दूसरा यह कि श्रमिकों की आवश्यकता को पूरे वर्ष के लिए सुवितरित करती है। तीसरा, यह प्रणाली सस्यावर्तन द्वारा मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनाए रखती है और साथ ही पौधों को उनकी बीमारियों से दूर रखा जाता है।

मिश्रित खेती में गाय बैलों तथा अन्य जानवरों को विभिन्न तरीकों से खिलाया जाता है। गाय बैल और सुअरों को फसल का कुछ अंश खिलाते हैं। शीत ऋतु में चारे की फसलें खिलाई जाती हैं। ग्रीष्म ऋतु में वे चरागाहों पर चरते हैं। उनके मलमूत्र को खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। पशुओं की देखभाल के लिए प्रतिदिन ध्यान देना आवश्यक होता है इसलिए श्रमिकों के परिवार इस कार्य में लगाए जाते हैं। आजकल श्रमिकों की मजदूरी इतनी अधिक बढ़ रही है कि मिश्रित कृषि में विभिन्न प्रकार की फसलों का उपजाना और विविध प्रकार के जानवरों को पालना बहुत ही खर्चीला एवं कष्ट साध्य हो गया है।

मिश्रित खेती में कृषि जोत का औसत आकार

विभिन्न देशों में अलग-अलग है। यूनाइटेड किंगडम में यह आकार 10 से 50 हेक्टर तक है और संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा में यह 40 से 100 हेक्टर तक है। मिश्रित कृषि के खेतों पर परिवार के सदस्य श्रमिक के रूप में अपना-अपना काम करते हैं। इसमें दैनिक मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिक बहुत कम रखे जाते हैं और न ही इस कृषि में बंटाई पर खेती होती है।

डेरी फार्मिंग

एक प्रकार की कृषि जिसके अन्तर्गत दुधारु पशुओं के प्रजनन और पालन पर विशेष ध्यान दिया जाता है, डेरी फार्मिंग कहलाती है। डेरी फार्मिंग में दुधारु पशुओं विशेषतया गायों का पालन उनके दूध और दूध से बने अन्य उत्पाद जैसे मक्खन, पनीर, क्रीम, संघनित दूध और पाउडर दूध प्राप्त करने के लिए किया जाता है। डेरी फार्मिंग में कुछ फसलों का उत्पादन भी मुख्यतः पशुओं को खिलाने के लिए किया जाता है। सुअरों और कुक्कुटों का भी पालन डेरी फार्मिंग के अतिरिक्त व्यवसाय के रूप में किया जाता है।

डेरी फार्मिंग का व्यवसाय यूरोप के विभिन्न देश जैसे यूनाइटेड किंगडम, आयरलैंड, बेल्जियम, डेन्मार्क, नीदरलैंड, दक्षिण स्केन्डिनेविया, स्विटजरलैंड, फ्रांस और उत्तर अमेरिका में विशाल झीलों के आस-पास के क्षेत्र, दक्षिण-पूर्व आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में किया जाता है। इस व्यवसाय में दुधारु पशुओं का पालन मुख्यतः नगरों और औद्योगिक केंद्रों को रोजाना दूध की आपूर्ति करने के लिए होता है।

डेरी फार्मिंग मुख्यतः उन क्षेत्रों में की जाती है जहां की जलवायु खाद्यान्न पैदा करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक आर्द्र है, और जो नगरीय बाजारों के बहुत पास में स्थित हैं। यह वास्तव में अत्यधिक पूंजी निवेश वाली कृषि है। यद्यपि इस कृषि में पशुओं के चरने के लिए खुले प्राकृतिक चरागाह अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं फिर भी शीत ऋतु में पशुओं को शीत से बचाने के लिए बड़े-बड़े बन्द बाड़ों में रखना आवश्यक होता है। अतः शीत ऋतु में पशुओं के लिए बड़े-बड़े सायबान और चारे का प्रबंध एवं उसे सुरक्षित रूप में रखने के लिए गोदाम आदि का प्रबन्ध आवश्यक है। दूध दुहने के लिए 'मिल्किंग मशीन' और खिलाने के लिए 'फीडिंग टावर' तथा मक्खन, पनीर, क्रीम, सूखा दूध आदि का निर्माण करने के लिए विविध प्रकार की मशीनों या यंत्रों का भी प्रबन्ध आवश्यक है। अधिक से अधिक दूध प्राप्त करने के लिए अच्छे नस्ल की गाएं रखी जाती हैं जिनसे औसतन प्रति वर्ष 3000 किलोग्राम दूध मिलता है। गायों की नस्ल सुधारने हेतु अच्छी नस्ल के सांडों का रखना, पशुओं को बीमारियों से मुक्त रखने के लिए पशु चिकित्सक एवं दवाओं का प्रबन्ध भी आवश्यक है। दूध जल्दी खराब होने वाली वस्तु है अतः इसे और उसके उत्पादों को लम्बे समय तक सुरक्षित रखने के लिए प्रशीतन का भी प्रबन्ध आवश्यक है। अच्छे यातायात की सुविधाएं एवं दूध ढोने के लिए ठंडे टैंकरों का होना भी इस व्यवसाय में सहायक है।

ट्रक कृषि एवं उद्यान कृषि

नगरों और बाजारों से दूर अपनाई जाने वाली एक प्रकार की विशेषीकृत कृषि जिसमें मुख्यतः सब्जियों, फलों और फूलों का उत्पादन होता है और इन वस्तुओं को प्रतिदिन नगरीय बाजारों में लाने के लिए ट्रकों का प्रयोग किया जाता है। ट्रक और उद्यान कृषि विश्व के मुख्यतः औद्योगिक क्षेत्रों के पास विकसित हैं, जैसे उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के देश—यूनाइटेड किंगडम, डेन्मार्क, बेल्जियम, नीदरलैंड, जर्मनी और फ्रांस तथा संयुक्त राज्य का उत्तरी-पूर्वी भाग। इन देशों में ताजी सब्जियों, सलाद, फल, अंडे, दूध, मांस और फूल की प्रतिदिन भारी मांग रहती है। नीदरलैंड में विशेषतया टुलिया फूलों की खेती का विशेषीकरण हुआ है और यहां प्रतिदिन रंगबिरंगे फूल वायुयान द्वारा यूरोप और उत्तर अमेरिका के प्रमुख नगरों को भेजे जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में कैलीफोर्निया राज्य सब्जियों और फलों के उत्पादन में महत्वपूर्ण है। ट्रक और उद्यान कृषि उत्तर अमेरिका के झील प्रायद्वीप, फ्लोरिडा प्रायद्वीप और यू० एस० ए० तथा कनाडा के पूर्वी तटीय भागों में भी महत्वपूर्ण है। ट्रक कृषि क्षेत्र की स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि वह स्थान नगरीय बाजारों से कितना दूर है अर्थात वहां से बाजार तक ट्रक द्वारा रात भर चलने में कितनी दूरी तय करनी

पड़ती है। इसीलिए इस कृषि का नाम ट्रक कृषि रखा गया है, यद्यपि फलों का उत्पादन बाजार की अपेक्षा जलवायु पर अधिक निर्भर करता है।

बाजारी कृषि की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं। खेत छोटे-छोटे होते हैं और वे उन स्थानों पर स्थित होते हैं जहां यातायात की अच्छी सुविधाएं होती हैं। ट्रक कृषि में भूमि पर गहन खेती होती है और सिंचाई अक्सर की जाती है। सब्जियां खुले खेत या कांच घरों में उपजाई जाती है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति खाद और उर्वरकों के भारी मात्रा में प्रयोग द्वारा कायम रखी जाती है। खेतों पर अधिकतर काम हाथों से किया जाता है। उत्पादन अधिक से अधिक प्राप्त करने और बिक्री द्वारा अधिक धन कमाने के लिए ट्रक कृषि का प्रबन्ध वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। अच्छे बीजों और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग तथा नर्सरी, कृत्रिम रूप से गर्म रखने और उत्पादों की तुरन्त बिक्री आदि की समुचित व्यवस्था की जाती है। इन सभी कारणों के परिणामस्वरूप इन खेतों से प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक होती है।

भारत में गर्म और धूप वाली जलवायु के कारण यहां विविध प्रकार की हरी सब्जियां, फल और फूल उपजाए जाते हैं। सेम, प्याज, टमाटर, गाजर, मूली, लौकी, खीरा, गोभी, पत्ता-गोभी, और सभी प्रकार की पत्ते वाली हरी सब्जियां यहां उपजाई जाती हैं। इन विभिन्न सब्जियों के बीच वर्ष के अलग-अलग महीनों में बोए जाते हैं जिससे नगरीय बाजारों में सब्जियों की आपूर्ति निरंतर बनी रहती है। यद्यपि भारत में सब्जियों की खेती प्रत्येक गांव, कस्बा और नगर में की जाती है, परंतु यह बम्बई, मद्रास, दिल्ली, कलकत्ता, हैदराबाद, कानपुर आदि नगरों के आसपास बहुत ही महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इन बड़े नगरों में सब्जियों की प्रतिदिन भारी मांग रहती है। श्रीनगर में सब्जियों की खेती मुख्यत: बसन्त और गर्मियों में डलझील पर होती है। इन दिनों इस नगर में हजारों की संख्या में पर्यटक आते हैं और सब्जी की बहुत मांग होती है। भारत में विभिन्न जलवायु दशाओं के अंतर्गत उष्ण-कटिबंधीय अक्षांशों से लेकर शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों तक के अनेक प्रकार के फल उपजाए जाते हैं। इनमें से प्रमुख हैं—आम, सेब, संतरा, अंगूर, केला, अमरूद, आड़ू, खुबानी, अलुचा, लीची, चीकू, अनार, पपीता और विभिन्न प्रकार की स्ट्राबेरियां तथा बेर भी पैदा किए जाते हैं। नींबू की यहां विशेष क्षेत्रों में खेती होती है। आम, भारत का सबसे महत्वपूर्ण फल है जिसकी इस देश में बहुत मांग होने के साथ-साथ विदेशों में, विशेषतया मध्य-पूर्व, यूरोप और अमेरिका के देशों तथा सोवियत संघ में भी बहुत मांग है। इन देशों में आम की बिक्री से हम अच्छी खासी विदेशी मुद्रा कमाते हैं।

व्यक्तिगत, सहकारी एवं सामूहिक खेती

कृषि को वर्गीकृत करते समय हम उसे कृषि-विधि, फसल-प्रकार, और पशु-प्रकार के अनुसार भी बांटते हैं। खेती करने का प्रबंध भी कृषि पर प्रभाव डालता है। खेती का संगठन इस बात पर आधारित है कि भूमि को किस प्रकार रखा और प्रयोग किया जा रहा है। भूमि का स्वामी किसान खुद हो सकता है अथवा वह बंटाई पर खेती कर सकता है या वह खेत पर केवल खेतिहर मजदूर के रूप में काम कर सकता है। हाल ही में विश्व के विभिन्न भागों में कृषि भूमि के स्वामित्व पर कई प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। कुछ भागों में भूमि का स्वामी किसान खुद है तो कुछ भागों में विभिन्न किसान मिल-जुलकर सहकारिता के आधार पर खेती करते हैं तो कुछ क्षेत्रों में भूमि का स्वामित्व राज्य के हाथ में है और वहां विभिन्न किसान सामूहिक रूप में खेती करते हैं। आगे के अनुच्छेदों में भूमि के स्वामी के आधार पर विभिन्न प्रकार की कृषि पद्धतियों का विवरण दिया गया है।

व्यक्तिगत खेती

व्यक्तिगत खेती में किसान स्वयं अपनी भूमि का मालिक होता। है इस भूमि पर खेती की सारी क्रियाएं जैसे जोतना, बोना फसल काटना और फसल को बाजार में ले जाकर बेचना आदि सभी कार्य किसान स्वयं करता है। फसल बोते समय अथवा काटते समय कई लोगों की आवश्यकता पड़ती है। अत: उन दिनों किसान कुछ मजदूरों को दैनिक मजदूरी अथवा फसल का कुछ हिस्सा

देने के आधार पर उन्हें मजदूरी पर रख सकता है। इस प्रकार के किसान जो अपनी भूमि के स्वयं मालिक होते हैं वे खेती के लिए बीज, मशीनें तथा अन्य उपकरण, उर्वरक, कीटनाशक दवाएं आदि स्वयं खरीदता है और फसल को स्वयं बेचकर धन कमाता है। इस प्रकार की खेती में लाभ या हानि की पूरी जिम्मेदारी खुद किसान की होती है। चूंकि किसान के व्यक्तिगत साधन बहुत ही सीमित होते हैं अतः सहकारी या सामूहिक खेती में जो सुविधाएं उपलब्ध हैं उससे यह किसान वंचित रहता है। विश्व के अधिकांश देशों में जैसे पश्चिमी यूरोप के देश, भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बर्मा, हिन्देशिया, मलेशिया आदि में व्यक्तिगत खेती का बहुत प्रचलन है।

भारत में स्वतन्त्रता के बाद किसान और सरकार के बीच में जो जमीदार तथा जागीरदार थे उन्हें समाप्त कर दिया गया है। अब किसान भूमि का स्वयं मालिक है और वह भूमि का टैक्स अर्थात लगान स्वयं सरकार को देता है। भारत के कुछ भागों में अब भी रैयतवारी व्यवस्था चल रही है। इसे भी समाप्त करने की कोशिशें राज्य सरकारें कर रही हैं। भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े और उनके छिटके होने की समस्या को सुलझाने के लिए लगभग सभी राज्यों में चकबन्दी कर दी गई है। किसान के पास न्यूनतम कितनी जोत होनी चाहिए इस संबंध में जोत सीमा निर्धारण करने के लिए विभिन्न राज्यों में कानून बनाए जा रहे हैं। विभिन्न प्रकार की कृषि-आर्थिक तथा जलवायु दशाओं को ध्यान में रखते हुए भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग जोत सीमाएं प्रस्तावित की गई हैं। जिस भूमि पर निश्चित रूप से सिंचाई की व्यवस्था उपलब्ध है और जिस पर वर्ष में दो या दो से अधिक फसलें मिल सकती हैं, ऐसी भूमि की जोत सीमा एक परिवार के लिए 4.05 और 7.28 हेक्टेयर के बीच रखी गई है। जिस पर सिंचाई की जा सकती और जिससे वर्ष में एक फसल मिल सकती है ऐसी भूमि की जोत सीमा 10.93 हेक्टेयर रखी गई है। शेष प्रकार की कृषि भूमि की जोत सीमा 21.85 हेक्टेयर रखी गई है।

सहकारी खेती

सहकारी खेती एक ऐसी कृषि पद्धति है जिसमें सभी सदस्य किसान स्वेच्छा से अपनी कृष्य भूमि एक दूसरे के साथ एकत्र करते हैं और सभी मिल-जुलकर खेती के विभिन्न कार्यों को प्रजातांत्रिक ढंग से करते हैं। सहकारी खेती की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक सदस्य अपनी भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व अधिकार को छोड़ने के लिए राजी हो जाता है और सबकी रजामंदी से एक समिति बनाई जाती है जो खती के विभिन्न पहलुओं पर महत्वपूर्ण निर्णय लेती है। सहकारी खेती में किसान को किसी न किसी सहकारी संघ का सदस्य बनना होता है और वह उस संघ द्वारा प्रदान की गई उन सारी सेवाओं का लाभ उठाता है जिन्हें वह व्यक्तिगत रूप से सामान्यतया प्राप्त नहीं कर सकता। अतः सहकारी खेती किसानों का एक ऐसा स्वेच्छा प्रेरित संघ है जो मानवीय और भूमि साधनों का सर्वोत्तम उपयोग करने में अपने अधिकतर सदस्यों का सहयोग खेती की विविध क्रियाओं में प्राप्त करता है, जिससे कृषि उत्पादन और आमदनी में वृद्धि होने के साथ लोगों को अधिकाधिक काम मिलता है। सहकारी खेती भी पूंजीपति के तरीकों पर आधारित होती है। बहुत बड़े पैमाने का उद्यम होने के नाते यह वे सभी लाभ उठाता है जो एक बड़े उद्यम को मिलते हैं, जैसे बड़े पैमाने का उत्पादन, अधिक अच्छी बाजार की सुविधाएं, अधिक लाभ, आदि। इस पद्धति की सबसे बड़ी कमी कुछ भूस्वामियों के अनुपस्थित और निष्क्रिय होने से जुड़ी हुई है।

संसार के कुछ विकसित देशों जैसे स्वीडन, नार्वे, नीदरलैंड, बेल्जियम और डेन्मार्क में सहकारी आंदोलन बहुत ही सफल रहा है। डेन्मार्क में यह आंदोलन इतना कामयाब हुआ है कि इस देश का लगभग प्रत्येक किसान एक सहकारी किसान है। सहकारी खेती का महत्व भारत जैसे कृषि प्रधान देश में बहुत अधिक है। भमि का समुचित प्रबन्ध कृषि उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में अधिकतर खेत अथवा जोतें बहुत छोटी हैं। भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दाब और उत्तराधिकार संबंधी कानूनों के परिणामस्वरूप कृष्य भूमि के बड़े भाग को ऐसे छोटे-छोटे टुकड़ों या जोतों में बांटा गया है जिनसे कोई विशेष आर्थिक लाभ नहीं मिलता। ये जोतें केवल छोटी ही नहीं हुई हैं वरन् बंटवारे

के कारण वे छोटे-छोटे खेतों के रूप में गांव के विभिन्न भागों पर छिटक गई है। ये छोटी-छोटी जोतें, जिनसे कोई आर्थिक लाभ नहीं मिलता, भारतीय कृषि के विकास में बहुत बाधक हैं। अत: इसका विकल्प सहकारी खेती है, जो अपनी कुछ कमजोरियों के बावजूद भी, कृषि उत्पादन बढ़ाने और ग्रामीण जनसंख्या का जीवन स्तर ऊंचा करने में बहुत मदद दे सकती है।

सामूहिक फार्म (कोलखोज)

1917 में रूस की कम्यूनिस्ट क्रांति के बाद सोवियत संघ की कृषि पद्धतियों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है और इसके बाद ये परिवर्तन हंगरी, रोमानिया, पोलैंड, बल्गेरिया और चेकोस्लावाकिया में भी आए हैं। इन देशों में सामूहिक खेती और सरकारी खेती की कृषि पद्धतियां प्रारम्भ की गई हैं। कम्यूनिस्ट व्यवस्था द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार सामूहिक फार्म, एक ऐसा स्वेच्छा प्रेरित सहकारी उत्पादन संघ है जो उत्पादन साधनों के सामाजिक स्वामित्व और सामूहिक श्रम के आधार पर कार्य करता है और जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण बिल्कुल समाप्त कर दिया जाता है।

सामूहिक फार्म किसानों के परिवारों का एक ऐसा आर्थिक समुदाय है जिसमें वे अपने साधनों को एकत्र करके और आपस में एक प्रबंध समिति चुनकर उसके अधीन मिल-जुलकर खेती के विभिन्न कार्यों को करते हैं। यह समिति फार्म का सारा प्रबंध करती है, लोगों के बीच काम और आमदनी, वस्तु अथवा धन के रूप में बांटती है और अतिरिक्त उत्पादन को बेचने का काम करती है। सभी काम करने वाले सदस्यों को श्रमिक वर्ग अथवा ब्रिगेड में रखा जाता है और विभिन्न ब्रिगेडों को अलग-अलग काम सौंपा जाता है। सामूहिक फार्म पर काम करने वाले लोगों का पारिश्रमिक 'कार्य दिवस इकाई' के आधार पर आंकलित किया जाता है। 'कार्य दिवस इकाई' औसत काम का एक मूल्य है जो सामूहिक फार्म पर काम करने वाला व्यक्ति एक कार्य दिवस में काम करने के बदले प्राप्त करता है। हर प्रकार के काम की कार्य दिवस के अनुसार एक मानक मात्रा निर्धारित की हुई है। कुछ कार्य जिसमें विशेष कुशलता या योग्यता की आवश्यकता पडती है उन्हें उच्च श्रेणी में रखा जाता है और उन्हें अधिक 'कार्य दिवस इकाइयां' दी जाती है। प्रत्येक सामूहिक फार्म को अपना उत्पादन सरकार को निश्चित दर पर और मात्रा में बेचना होता है।

सोवियत संघ में कृषि दो प्रकार के फार्मों, कोलखोज (सामूहिक फार्म) और सोकखोज (सरकारी फार्म) के अंतर्गत होती है। सामूहिक फार्म की भूमि चिरस्थाई पट्टे के आधार पर किसानों द्वारा बनाई फार्म की प्रबन्धक समिति को दी जाती है। फार्म के सभी उपकरण, पशु और इमारतें फार्म की सम्पत्ति होते हैं। प्रारंभ में इन फार्मों पर कोई भी वेतन नहीं दिया जाता था। प्रत्येक आदमी के काम का पारिश्रमिक 'कार्य दिवस इकाई' के आधार पर आंकलित करके धन अथवा वस्तु के रूप में दिया जाता था। इस प्रकार के आंकलन में काम की मात्रा, काम करने में लगा समय और आवश्यक कुशलता को ध्यान में रखा जाता था। परन्तु 1966 से मासिक वेतन की पद्धति चला दी गई है। इसमें प्रत्येक मास के अंत में धन का मिलना निश्चित हो गया। पुरानी पद्धति में पारिश्रमिक तभी मिलता था जब वहां अतिरिक्त उत्पादन हो और वह भी अन्य आवश्यकताएं—जैसे सरकार को निश्चित कोटा देना, टैक्स अदा करना, नए उपकरण की खरीद, पेंशन और सांस्कृतिक फंड की अदायगी आदि पूरी किए जाने पर ही मिल पाता था। सामूहिक फार्म के सदस्य अपने व्यक्तिगत प्रयोग के लिए कृषि भूमि का एक छोटा टुकडा और कुछ पशु रख लेते हैं। इस पद्धति का कृषि अर्थ व्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। सामूहिक फार्म पर लगभग सारा काम मशीनों से होता है और इस संदर्भ में सरकार की मशीन ट्रैक्टर स्टेशन (एम० टी० एस०) सेवा, जिसके हर राज्य में उपयुक्त स्थानों पर केन्द्र हैं का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। ये केन्द्र सामूहिक फार्मों को ट्रैक्टर, कम्बाइन, और हारवेस्टिंग मशीनें निश्चित किराए पर देते हैं। सोवियत संघ में सामूहिक फार्म का औसत आकार पश्चिम में 250 हेक्टेयर से लेकर दक्षिण मध्य साइबेरिया और कजाकिस्तान में 2,000 हेक्टेयर तक है।

सरकारी फार्म (सोकखोज)

सोवियत संघ में सरकारी फार्म राज्य की सरकारों

द्वारा खोले गए हैं और इनमें काम करने वाले लोग वेतन भोगी कर्मचारी हैं। सरकारी फार्मों का अत्यधिक यंत्रीकरण हुआ है, उनमें बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है और यह संगठन बहुत विशाल है। ये फार्म सामान्यतः बहुत बड़े आकार के होते है और उन्हें प्रायः नयी भूमियों पर विकसित किया जाता है। इन फार्मों पर बहुधा विशेषीकरण एवं अनुसंधान कार्य होता है। ये सोवियत संघ में कृषि के विकास में नेतृत्व प्रदान करते हैं। वैसे सोवियत संघ में सामूहिक फार्मों (कोलखोज) की संख्या सरकारी फार्म (सोकखोज) से कहीं अधिक है। सरकारी फार्म वास्तव में विशेषीकरण और अनुसंधान की ओर बढ़ रहे हैं, तो सामूहिक फार्म सोवियत संघ का अधिकांश कृषि उत्पादन प्रदान करते हैं। सामूहिक खेती में प्रत्येक सदस्य को जो कृषि भूमि का टुकड़ा व्यक्तिगत उपयोग के लिए मिलता है उसका भी कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान है। इन व्यक्तिगत खेतों की मुख्य उपज आलू, सब्जी, मांस, दूध और अंडे हैं। इनका सम्पूर्ण देश के कुल उत्पादन में काफी ऊंचा भाग है। इस प्रकार की कृषि पद्धति में सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि किसान सामूहिक फार्म पर अपने व्यक्तिगत खेत की तुलना में कम रुचि लेते हैं।

सोवियत संघ के सामूहिक फार्मों और सहकारी फार्मों मे बहुत बड़ा अंतर है। सहकारी फार्म एक जनतांत्रिक संस्था है जिसका प्रबन्ध संस्था के सदस्य स्वयं करते हैं और उसमें सरकार का हस्तक्षेप बिल्कुल नहीं होता। सहकारी फार्म की भूमि पूर्ण स्वामित्व अथवा पट्टे में ली जाती है। इसके प्रत्येक सदस्य को पूर्ण स्वतंत्रता है कि वह सहकारी समिति से स्तीफा दे सकता है और कुछ निर्धारित अवधि के पूर्व अपनी सारी सम्पत्ति, भूमि आदि वापिस ले सकता है। इसके दूसरी ओर सामूहिक फार्म को भी यद्यपि जनतांत्रिक ढंग से नियंत्रित किया जाता है, परंतु इसमें सरकार का हस्तक्षेप कहीं अधिक होता है। इसे सरकारी निर्धारित मूल्य नीतियों के अनुसार कार्य करना होता है और राष्ट्रीय उत्पादन के लक्ष्यों को पूरा करना पड़ता है तथा सरकार द्वारा निर्धारित बाजारों में उत्पादन को बेचना होता है।

सिंचाई

फसलों की वृद्धि के लिए कृत्रिम साधनों द्वारा जल का कृष्य भूमि पर वितरण सिंचाई कहलाता है। सिंचाई द्वारा सूखे के बुरे प्रभावों से बचा जा सकता है। यह वातावरण को कुछ शीतल करती है, बीज के उगने के लिए अनुकूल दशाएं प्रदान करती हैं और मिट्टी को मुलायम करती है जिसमें उसे जोतना और गोड़ना आसान हो जाता है।

सिंचाई करना मानव की अत्यंत पुरानी कला है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि सभ्यताएं सिंचित क्षेत्रों पर ही पनपी और उनका विकास भी सिंचाई के साधनों की वृद्धि के साथ हुआ। यद्यपि शुष्क एवं अधिशुष्क क्षेत्रों में सिंचाई का महत्व सबसे अधिक है, परन्तु अब अर्ध आर्द्र क्षेत्रों में भी इनकी उपयोगिता बढ़ रही है। जिन क्षेत्रों को सिंचाई की आवश्यकता है, वे बहुत ही विस्तृत हैं और दोनों गोलार्धों में पाए जाते हैं। उत्तरी गोलार्ध में भूमि की पट्टी जिसे सिंचाई की आवश्यकता है, यह संयुक्त राज्य अमेरिका और मैक्सिको के पश्चिमी भाग, स्पेन, फ्रांस, इटली, ग्रीस, टर्की, दक्षिण-पश्चिम एशिया, पाकिस्तान, भारत, दक्षिण-पूर्व एशिया, और चीन में है। दक्षिणी गोलार्ध की सिंचाई योग्य भूमि दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट, अफ्रीका के दक्षिणी भाग और आस्ट्रेलिया में है।

सिंचाई के लिए जल कई स्रोतों से मिलता है। वे हैं बारहमासी नदियां, विशेष ऋतु में बहने वाली नदियां, स्रोत, तालाब, झील और भूमिगत जल। वर्षा का जल सिंचाई का सबसे सस्ता साधन है। परन्तु यह तभी उपयोगी होता है जब वर्षा समयानुसार पर्याप्त हो। लेकिन दुर्भाग्य से विश्व के अधिकांश भाग पर वर्षा अनिश्चित होती है और इसका वितरण भी बहुत ही असमान है। वर्षा के न होने पर विश्व के कई भागों में बार-बार सूखा या अकाल पड़े हैं। अन्य देशों के किसानों की भांति भारतीय किसान को भी वर्षा के न होने से उत्पन्न मुसीबतों का सामना करना पड़ा है।

सिंचाई का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह सूखा या अकाल से सुरक्षा प्रदान करती है। सभ्यता के विकास में

सिंचाई का महत्वपूर्ण योगदान है। सिंचाई स्थाई जीवन के विकास में सहायक है। नहरें तथा बांध बनाने के लिए बड़ी संख्या में अनुशासित एवं सहयोगी श्रमिक काम करते हैं और साथ-साथ रहते हैं। अतः सिंचाई लोगों को साथ-साथ काम करने और रहने को प्रोत्साहन देती है। इस प्रकार सिंचाई शुष्क एवं अधिशुष्क क्षेत्रों में कृषि व्यवसाय को निश्चित एवं विश्वसनीय बनाती है।

विश्व में सिंचाई का कितना विस्तार है, इस पर अब भी कोई निश्चित आंकड़े उपलब्ध नहीं है। ऐसा अनुमान है कि विश्व में लगभग 16 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर सिंचाई होती है। "फूड एंड एग्रीकलचर आर्गेनाइ-जेशन" (एफ० ए० ओ०) के आकड़ों के अनुसार सिंचाई के अंतर्गत सबसे अधिक क्षेत्र चीन, भारत, पाकिस्तान, सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका में है। सोवियत संघ को छोड़कर अकेले एशिया में विश्व के सिंचित क्षेत्र का 73 प्रतिशत भाग है। संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ में विश्व के सिंचित क्षेत्रों का भाग क्रमशः 8 और 5 प्रतिशत है।

अभ्यास

समीक्षात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित में से प्रत्येक में अंतर स्पष्ट कीजिए :
   (i) स्थानांतरी और स्थानबद्ध कृषि
   (ii) जीविका एवं व्यापारिक कृषि
   (iii) गहन एवं विस्तृत कृषि
   (iv) मिश्रित कृषि और डेरी फार्मिंग
   (v) उद्यान एवं रोपण कृषि
   (vi) मिश्रित कृषि तथा मिश्रित फसलें।
2. निम्नलिखित को उदाहरण सहित समझाइए :
   (i) सहकारी खेती
   (ii) सामूहिक खेती
   (iii) व्यक्तिगत खेती
3. निम्नलिखित में से किन्हीं दो को स्पष्ट कीजिए :
   (i) खाद्यान्न की बड़े पैमाने पर की जाने वाली यांत्रिक कृषि में प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम होता है परन्तु प्रति व्यक्ति उत्पादन ऊंचा होता है।
   (ii) धान की खेती वाले गहन जीविका कृषि के प्रदेश वहीं हैं जहां गरीबी और घनी जनसंख्या है।
   (iii) स्थानान्तरी कृषि अब अधिक समय तक चलने वाली नहीं है।

(iv) आर्द्र धान की कृषि दक्षिण-पूर्व एशिया तक सीमित है।

4. "उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधों के वनों के आंन्तरिक भागों में स्थानान्तरी कृषि अति उत्तम है" इस कथन से आप कहां तक सहमत या असहमत हैं, कारण सहित स्पष्ट कीजिए।
5. शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में ही केवल सिंचाई होती है, विषय पर चर्चा कीजिए।
6. स्थानान्तरी कृषि के विकास में कौन सी कठिनाईयां बाधक हैं ?

ज्ञात कीजिए

(i) अपने पास-पड़ोस में किसी फार्म का भ्रमण कीजिए और मालूम कीजिए कि वहां किस प्रकार की कृषि होती है।

(ii) किसी आधुनिक डेरी को देखने जाइए और वहाँ के विभिन्न कार्यों का अवलोकन कीजिए और बाद में उसकी पूरी रिपोर्ट तैयार कीजिए।

(iii) भाखरा-नांगल बांध के बारे में जानकारी एकत्र कीजिए।

मानचित्र कार्य

संसार के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित दिखाइए :

(i) स्थानान्तरी कृषि के क्षेत्र

(ii) गहन जीविका कृषि के क्षेत्र

(iii) मिश्रित खेती के क्षेत्र

(iv) व्यापारिक पशुचारण के क्षेत्र और

(v) रोपण कृषि के क्षेत्र

अतिरिक्त अध्ययन

1. डेविस, डी० एच०, **दि अर्थ एंड मैन,** दि मैकमिलन कंपनी, न्यूयार्क, 1955
2. मोरगन, जी० सी० एंड लांग, जी० सी०, **ह्यूमन एंड इकोनामिक ज्योग्राफी,** आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, क्वालालंपुर, 1973
3. डि बिलिज, एच० जे०, **मैन शेप्स दि अर्थ, ए टोपीकल ज्योग्राफी,** कैलीफोर्निया, 1974
4. ग्रिग्ग, डी० बी०, **दि एग्रीकल्चर सिस्टमस आफ दि वर्ल्ड—एन इवोलुशनरी एप्रोच,** कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1974
5. लियोनार्ड, एम० सी०, **ए वर्ल्ड ज्योग्राफी आफ इरीगेशन,** लन्दन, 1967
6. परपिलन, ए० बी०, **ह्यूमन ज्योग्राफी,** लांग मैन ग्रुप लिमिटिड, लन्दन, 1971
7. सिमोन, एल०, **एग्रीकल्चर ज्योग्राफी,** इडिनबरा, 1970

अध्याय 6

प्रमुख फसलें

विश्व की प्रत्येक संस्कृति के मौलिक लक्षण भोजन पदार्थों के उत्पादन, वितरण और उनके उपभोग से जाने जाते हैं। इस समय हम जितनी भी वस्तुएं उपयोग कर रहे हैं लगभग वे सब पृथ्वी की सतह पर की गई विभिन्न क्रियाओं अथवा श्रृंखलाबद्ध क्रियाओं के परिणाम-स्वरूप प्राप्त किए उत्पाद हैं। संसार के अधिकांश लोगों का जीवन मिट्टी से उपजाए विभिन्न प्रकार के खाद्यानों पर निर्भर है।

चावल

विश्व की लगभग आधी जनसंख्या का भरण-पोषण केवल चावल पर होता है। मानसून एशिया और उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंध में जहां कहीं भी भौतिक एवं जलवायु दशाएं चावल की खेती के लिए अनुकूल हैं, वहां की अधिकांश जनसंख्या का प्रमुख भोजन चावल ही है। मानसून-एशिया में तो यह अत्यंत महत्वपूर्ण फसल है ही, परन्तु साथ ही बाढ़ग्रस्त मैदानों, दलदलों, डेल्टा प्रदेशों और अच्छी तरह सिंचित निम्न भूमियों में भी चावल खूब पैदा होता है। यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में दक्षिणी-कोष्ण-शीतोष्ण क्षेत्र की निम्न भूमियों पर भी चावल की खेती सफलतापूर्वक की जा रही है (चित्र 10)।

आहार के रूप में चावल

बिना पालिश किया हुआ चावल आहार के रूप में बहुत ही पोषक होता है। वैज्ञानिकों का मत है कि पालिश करने के बाद चावल के बहुत से पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। चावल में प्रोटीन तथा चर्बी दोनों ही कम होते हैं और इसमें विटामिन 'सी' बिल्कुल ही नही होता। चावल की बाहरी सतह पर अधिकतर खनिजीय पोषक तत्व होते हैं। मिलों में धान से चावल निकालने, उसे पालिस करने, और उसे धो कर पकाने में अधिकतर विटामिन और खनिज तत्व (विशेषतया विटामिन 'ए' और 'बी' तथा कैल्शियम) अलग हो जाते हैं और इस प्रकार पका हुआ चावल अत्यन्त असंतुलित आहार बनता है।

जिन क्षेत्रों में पालिश किए हुए चावल को भोजन के मुख्य अंग के रूप में खाया जाता है वहां प्राय: अनेक प्रकार की बीमारियां जैसे बेरी-बेरी सामान्य

रूप से पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त मानसून एशिया की अति घनी आबादी के कारण चावल की बहुत कमी हो जाती है और इसके कारण भी भुखमरी की दशाएं उत्पन्न हो जाती हैं। बहुत से क्षेत्रों में, जहां की जनता एक मात्र चावल के आहार पर ही निर्भर है वहां के अधिकांश लोग कुपोषण और अपर्याप्त भोजन से पीड़ित है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिण-पूर्व एशिया के लोगों का स्वास्थ्य क्यों गिरा है, उनमें मृत्यु दर अधिक क्यों है और उनकी जीवन प्रत्याशा बहुत कम क्यों है। इसके प्रतिकूल विश्व के जिन क्षेत्रों का प्रमुख भोजन गेहूं है वहां के लोग हृष्ट-पुष्ट, उनमें मृत्यु दर कम और जीवन प्रत्याशा अधिक पाई जाती है। चावल के अतिरिक्त यदि लोग अपने आहार में कुछ फल, साग सब्जी और मछली अथवा मांस और लेने लगें तो पूर्वी देशों का भोजन अधिक संतुलित हो सकता है। आजकल उष्ण कटिबंध के बहुत से देशों में गेहूं की भी मांग बढ़ रही है और लगभग सभी बड़े-बड़े शहरों में डबलरोटी खाने का प्रचलन हो रहा है। इससे आशा की जाती है कि चावल के क्षेत्रों के असंतुलित भोजन में कुछ सुधार आएगा और हरित क्रान्ति से भुखमरी भी कुछ कम होगी।

लोगों का ऐसा अनुमान है कि चावल की खेती का प्रमुख स्थल प्राचीन काल में भारत ही था और बाद में यहां से चावल की खेती का प्रसार चीन और दजलाफरात की निम्न घाटी में हुआ। अपने सम्पूर्ण ऐतिहासिक समय में चावल की खेती का प्रसार उष्ण कटिबंध के मुख्यतः गर्म और आर्द्र प्रदेशों में ही हुआ है और इसकी खेती इन क्षेत्रों के बाहर न के बराबर है। चावल की खेती के लिए कम से कम 20°C का तापमान और बोते समय जल में डूबी हुई उपजाऊ मिट्टी चाहिए। जिन क्षेत्रों में वर्षा कम होती है वहां पानी की कमी को चावल की खेती के लिए सिंचाई से पूरा किया जाता है। चावल की लगभग 200 किस्में हैं और प्रत्येक किस्म के लिए तापमान, वर्षा तथा मिट्टी की अलग-अलग आवश्यकताएं होती हैं। उच्च भूमि के चावल का पौधा छोटा होता है और उसमें दाना भी छोटा तथा लाल रंग का होता है। यह मैदानी चावल की तुलना में अधिक कड़ा होता है और पकने के बाद इसका स्वाद भी अधिक अच्छा नहीं होता। यह थोड़ी सी ही वर्षा में उग जाता है और फसल तैयार होने के लिए कम समय लेता है। इसके प्रतिकूल मैदानों में कई प्रकार का चावल पैदा किया जाता है। चावल की पैदावार के लिए बहुत अधिक संख्या में मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि चावल को नर्सरी में बोते समय, खेत तैयार करते समय, खेतों में पानी भरने और पौध को खेतों में प्रतिरोपित करने, फसल की देखभाल करने, फसल को काटने, चावल को निकालने आदि सभी कार्यों में बहुत से लोगों की आवश्यकता पड़ती है। सौभाग्यवश चावल की उपज के क्षेत्र वे हैं जहां घनी जनसंख्या पाई जाती है अतः श्रमिकों की जरूरत आसानी से पूरी हो जाती है।

चावल के अधिकतर खेतों पर किसान और उसके परिवार के सदस्य मिल-जुलकर काम करते हैं। बोते अथवा फसल काटते समय दैनिक मजदूरी पर कुछ भूमिहीन मजदूर रख लिए जाते हैं। जापान में चावल की खेती का काफी यंत्रीकरण होने के कारण मजदूरों की कम आवश्यकता पड़ती है।

दक्षिण-पूर्व एशिया में चावल की खेती करने वाले अधिकतर किसान जीविका कृषि करते हैं क्योंकि वे अपने उत्पादन का लगभग सारा चावल अपने परिवार अथवा क्षेत्र की जरूरतों को पूरा करने में उपयोग कर लेते हैं। इससे व्यापार में बहुत कम चावल आता है। इसका मुख्य कारण यह है कि चावल के अधिकांश क्षेत्र ऊंची जनसंख्या घनत्व का भरण-पोषण करते हैं, उदाहरणार्थ गंगा-ब्रह्मपुत्र और टोंकिन डेल्टा प्रदेशों और जावा द्वीप के कुछ भागों में जनसंख्या का घनत्व 1500 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी अधिक है। बंगला देश के डेल्टा प्रदेशों में सामान्य जनसंख्या घनत्व 390 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से अधिक है और बिहार तथा पश्चिम बंगाल में गंगा के निम्न मैदानों में यह कुछ कम है। केरल राज्य में जनसंख्या घनत्व 428 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। यदि जनसंख्या घनत्व कृष्य भूमि के क्षेत्रफल पर आंकलित किया जाये तो यह और भी बढ़ जाता है।

चावल की खेती का एक विशेष लक्षण यह है कि इसमें भूमि का गहन उपयोग और श्रम का अधिक निवेश होता है। ग्रीष्म मानसून के प्रारम्भ होते ही डाइक, बंद

तथा नहरों और जल वितरिकाओं की मरम्मत की जाती है। उसके बाद खेत तैयार किए जाते हैं। खेत में पानी देकर मिट्टी को कीचड़ का रूप दिया जाता है। इसके लिए हल और भैंसों की मदद से खेतों की खूब जुताई की जाती है। भारवाहक पशुओं की संख्या पूर्वी एशिया में भारतीय उपमहाद्वीप की अपेक्षा कम है।

चावल के बीज को छिटककर बोया जाता है या इसके छोटे-छोटे पौधों को प्रतिरोपित करते हैं। चावल की खेती में प्रतिरोपण विधि सबसे अधिक अपनाई जाती है। भारत, बंगलादेश और श्रीलंका में छिटका बुवाई विधि भी अपनाई जाती है। दक्षिण-पूर्व एशिया के लगभग सभी देशों में चावल के बोने की परम्परागत विधि यह है कि पहले चावल को नर्सरी में बोकर उसकी पौध तैयार करते हैं और फिर 40 दिन बाद उन छोटे-छोटे पौधों या पौध को चावल के खेतों में प्रतिरोपित करते हैं। नर्सरी में जैवीय पदार्थों की खाद बड़ी मात्रा में दी जाती है और बीजों की प्रत्येक क्यारी को पानी से अच्छी तरह तर कर देते हैं। जिन क्षेत्रों में वर्षा का आगमन बिलकुल अनिश्चित होता है वहां चावल की पौध को शुष्क नर्सरियों में तैयार करते हैं। इन नर्सरियों में पौध 70 दिन तक रखी जाती है। पौधों को खूब गोड़े हुए खेतों में तभी प्रतिरोपित किया जाता है जब अच्छी वर्षा हो जाती है और पौधे लगभग 25 से 30 सेंटीमीटर ऊंचे हो जाते हैं।

पौध के प्रतिरोपण करने का कार्य बहुत ही कठिन होता है और इसमें बहुत से व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। नियमानुसार नर्सरी से पौध को निकालने और उसे सुरक्षित रूप में खेतों तक ले जाने का कार्य पुरुषों का है और पौध को खेतों में प्रतिरोपित्त करने का काम महिलाओं का है। चीन तथा भारत में एक दिन में लगभग आधा हेक्टेयर भूमि पर पौध को प्रतिरोपित करने के लिए औसतन 12 व्यक्तियों की एक टोली की आवश्यकता पड़ती है। अधिकांश देशों में छिटका बुवाई की अपेक्षा प्रतिरोपण विधि से चावल की प्रति हेक्टेयर उपज बहुत अधिक होती है। वास्तव में प्रतिरोपण विधि में चावल का पौधा समान दूरी पर लगाने के कारण बड़ी तेजी से बढ़ता है और उसकी फसल के तैयार होने का समय भी बहुत कम है।

प्रतिरोपण के बाद पौधों को लगभग 4 महीनों तक बढ़ने दिया जाता है। इस बीच फसल की अच्छी देखभाल की जाती है। खरपतवार तथा अन्य अनावश्यक पौधों को उखाड़ फेंका जाता है। खतों में पानी की निर्धारित ऊंचाई रखी जाती है। पानी के कम होने पर सिंचाई द्वारा अतिरिक्त जल खेतों में पहुंचाया जाता है। बढ़ती हुई फसल का नियमित रूप से निरीक्षण किया जाता है और फसल पर कीड़े-मकोड़े आदि के लगने की अवस्था में कीटनाशक दवाएं छिड़की जाती हैं।

जब पौधों की वृद्धि हो रही होती है, खेत को दूसरी बार खाद या उर्वरक दिए जाते हैं और गुड़ाई तथा निराई इस प्रकार की जाती है कि जल मिट्टी में काफी नीचाई तक अच्छी तरह चला जाय। इन सब बातों के साथ ही फसल काटने के 10 से 15 दिन पूर्व तक पानी की निश्चित ऊंचाई बनाई रखी जाती है। खेतों को क्रमशः पानी से भरा और कुछ दिनों तक सूखा भी छोड़ा जाता है। धान-फसल की कटाई हाथों द्वारा हंसिया की मदद से की जाती है। काटते समय धान के फलकों को छोटी चरखीनुमा गांठ में बांधकर गांव ले जाया जाता है। पौधों के तनों को भूसी के रूप में जानवरों को खिलाते हैं या उनसे किसान के घर की छतें बनाई जाती हैं अथवा इसे ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

चावल को उसके पौधों से अलग करने की अनेक पुरानी विधियां हैं। कहीं-कहीं इसे भैंसों या बैलों के खुरों के नीचे रौंद-रौंद-कर अलग किया जाता है तो कहीं इसके डंठलों को लकड़ी के पहिए के ऊपर मार-मार कर दानों को अलग करते हैं। कुछ लोग इस कार्य के लिए छोटी-छोटी मशीनों का प्रयोग करते हैं। आजकल पौधे से धान को अलग करने का कार्य खेतों पर भी होता है। इससे पौधों के ढोने का खर्च बच जाता है। धान को कूटने पर दाने से उसकी भूसी अलग हो जाती है। दक्षिण-पूर्व एशिया और अफ्रीका के बहुत से देशों में चावल को उसकी भूसी से अलग करने की सामान्य विधि यह है कि धान को लकड़ी की ओखली में डालकर उसे किसी लकड़ी के मोटे डंडे या हथौड़े से कूटते हैं। भारत में

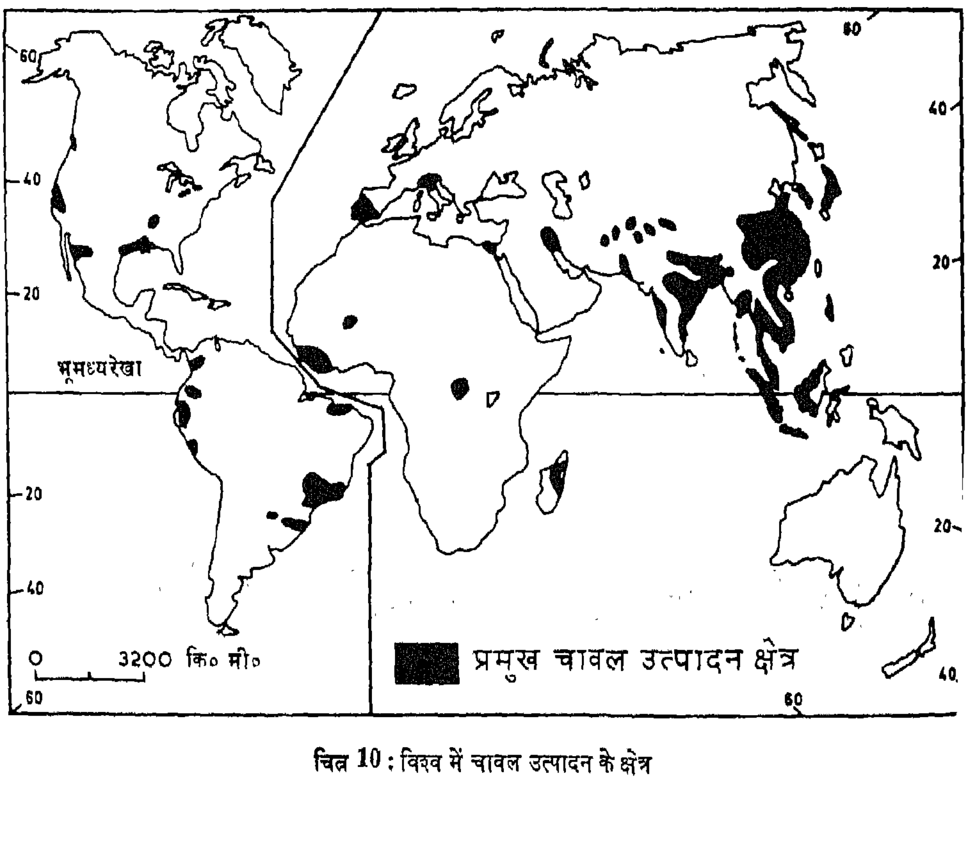
लकड़ी के इस डंडे को मूसल कहते हैं। भूसी से चावल निकालने की यह विधि बहुत धीमी है और इसमें चावल का दाना प्राय: टूट जाता है। आजकल यह कार्य पूर्णतय: चावल की मिलों में होता है। एक बड़ी चावल की मिल एक दिन में एक हजार टन चावल साफ कर सकती है। विश्व के लगभग सभी चावल मिल चावल उत्पादन के क्षेत्रों में स्थापित किए गए हैं।

चावल का विश्व उत्पादन

चावल की पैदावार की विशेष आवश्यकता, जैसे अधिक जल, उच्च तापमान और उपजाऊ चिकनी मिट्टी आदि बातों के कारण इसके प्रमुख उत्पादक क्षेत्र आर्द्र मानसून एशिया के समतल मैदान, डेल्टा प्रदेश और सीढ़ीनुमा पर्वतीय ढलानों आदि में सीमित हैं। चावल उत्पादक देश मुख्यत: चीन, भारत, जापान, बंगला देश, पाकिस्तान, हिन्देशिया, तैवान, बर्मा, मलेशिया, कोरिया, फिलिपाइन्स, वियतनाम आदि हैं। मानसून एशिया के बाहर चावल का उत्पादन मिश्र, ब्राजील, संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली, स्पेन, टर्की, फ्रांस के रोन डेल्टा और सोवियत संघ में होता है (चित्र 10)।

चीन : चीन में चावल की खेती इसके कोष्ण दक्षिणी भाग, यांगटज और सिक्यांग घाटियों, दक्षिण-पूर्व तटीय भाग, सैचवान बेसिन तथा यांगटिजि क्यांग के दक्षिण में पर्वतीय ढालों पर होती है। विश्व में चावल के कुल उत्पादन का लगभग एक-तिहाई भाग अकेले चीन प्रदान करता है।

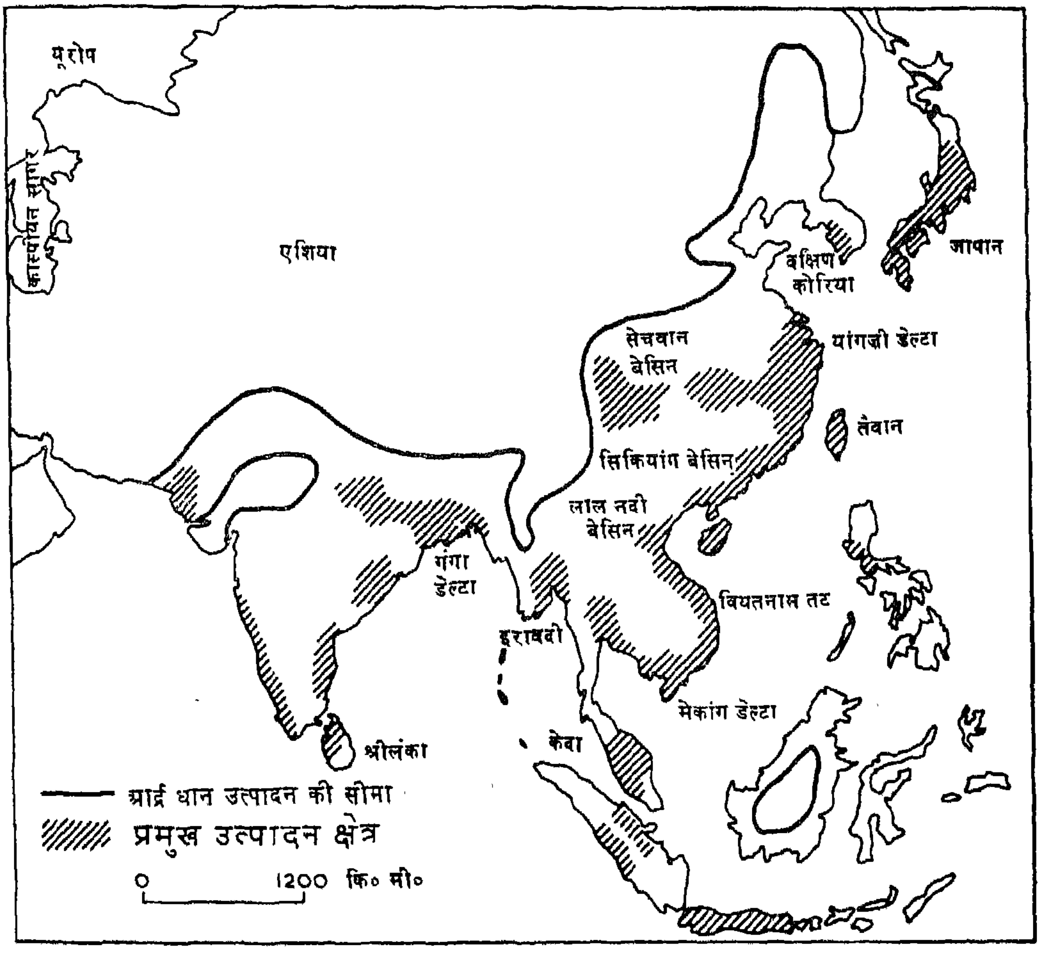
भारत : भारत चावल के कुल विश्व उत्पादन का लगभग पांचवा भाग प्रदान करता है। भारत की लगभग एक-चौथाई कृषि भूमि चावल की खेती के अंतर्गत है और यहां के चावल का वार्षिक उत्पादन लगभग आठ



चित्र 10 : विश्व में चावल उत्पादन के क्षेत्र

करोड़ टन है। भारत के लगभग सभी अधिक वर्षा वाले क्षेत्र, जहां 150 सेंटीमीटर से अधिक वर्षा होती है का प्रमुख भोजन चावल है। कम वर्षा वाले क्षेत्र जैसे पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब में इसकी खेती सिंचाई द्वारा की जाती है। भारत में चावल उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र गंगा की मध्य व निचली घाटी, असम की घाटी और प्रायद्वीपीय भारत के तटीय भाग हैं (चित्र 11)।

जापान : जापान में चावल का प्रति हेक्टेयर उत्पादन विश्व में सबसे अधिक होने के कारण यह देश संसार में प्रसिद्ध है। जापान ने अपने देश में धान की विशेष नस्ल निकाली है जिसमें उत्पादन बहुत अधिक होता है। यहां जल्दी तैयार होने वाली कुछ नस्लें इस्तेमाल होती हैं जिनके प्रयोग से 90 दिन के भीतर चावल की फसल तैयार हो जाती है। जापान में देश की लगभग आधी कृषि भूमि पर चावल की खेती होती है। यह मुख्यतः दक्षिण द्वीपों क्युशु, शिकोक्यु और दक्षिणी होंशु में सीमित है। जापान के सुदूर दक्षिणी



चित्र 11 : मानसून एशिया में चावल उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र

सिंचित जलोढ़ मैदानों में चावल की फसलें वर्ष में दो बार निकाली जाती हैं। अन्य क्षेत्रों में केवल एक फसल होती है। हाल ही में जापान में गेहूं की खेती करने की ओर लोगों का रुझान बढ़ रहा है। यह संभवतः इसलिए हुआ है कि जापानी लोग यह मानने लगे हैं कि गेहूं में चावल की अपेक्षा अधिक पोषण तत्व हैं और इसके व्यापार से अधिक लाभ मिलता है।

बंगला देश : बंगला देश में चावल की खेती गंगा-ब्रह्मपुत्र के डेल्टा प्रदेश में होती है जहां वर्षा 200 सेंटीमीटर से अधिक है और मिट्टी भारी तथा वर्ष भर आर्द्र रहती है।

पंजाब, पाकिस्तान में सिन्धु नदी का डेल्टा और हरियाणा के कुछ क्षेत्रों में भी चावल पैदा किया जाता है। इन क्षेत्रों में सिन्धु और उसकी सभी सहायक नदियों और उनसे निकाली गई विश्व की सबसे बड़ी नहरों के जाल से सिंचाई होती है। अतः यहां चावल की खेती के लिए पानी की कमी अनुभव नहीं की जाती (चित्र 11)।

हिन्देशिया : हिन्देशिया में लगभग 80 लाख हेक्टेयर भूमि पर चावल की खेती होती है और यहां चावल की खेती के लिए पर्याप्त वर्षा होती है। भूमि की कमी के कारण पर्वतीय ढलानों पर भी सीढ़ीनुमा खेत बना कर चावल की खेती की जाती है (चित्र 11)।

मानसून एशिया के बाहर बहुत कम मात्रा में चावल का उत्पादन होता है। मिश्र में नील नदी के डेल्टा और उसकी घाटी में चावल की खेती होती है। इस देश के निवासियों का मुख्य भोजन चावल है। दक्षिणी महाद्वीपों में चावल का, सबसे अधिक उत्पादन ब्राजील में होता है। ब्राजील के दक्षिणी-पूर्वी भाग में जहां वर्षा अधिक होती है, तटीय मैदान दलदली है और तापमान अपेक्षाकृत ऊंचे हैं, चावल की खेती के लिए अति उत्तम हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्व का लगभग दो प्रतिशत चावल पैदा होता है। इस देश में प्रमुख चावल उत्पादक राज्य लुशियाना, कैलिफोर्निया और टैक्सास तथा दक्षिण कैरोलिना हैं।

यूरोप : यूरोप में चावल की खेती मुख्यतः इटली में *पो नदी के डेल्टा*, स्पेन में एब्रो नदी की घाटी और फ्रांस में रोन नदी के डेल्टा में होती है। सोवियत संघ में भी चावल का कुछ उत्पादन होता है। यूरोप में चावल की उपज विश्व में सबसे अधिक लगभग 6000 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है।

गेहूं

गेहूं विश्व का दूसरा सबसे अधिक लोकप्रिय खाद्यान्न है। इसमें प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की अधिक मात्रा तथा इसके रस-स्वाद और पैदा करने में आसानी होने के कारण गेहूं को उच्चतम कोटि का अनाज माना जाता है। गेहूं का मूल स्रोत निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। यह प्रारंभ में संभवतः टर्की में पैदा किया जाता था और बाद में यह भूमध्यसागरी देशों में से होता हुआ यूरोप के अन्य देशों में फैल गया। पश्चिमी यूरोप के देश इसे दक्षिणी गोलार्ध के महाद्वीपों और उत्तर अमेरिका में ले गए।

यद्यपि गेहूं मध्य अक्षांशों के शीतोष्ण कटिबंधी घासस्थलों का प्रमुख पौधा है, परंतु इसकी उपज विश्व के कोष्ण शीतोष्ण भूमध्यसागरी चीन तुल्य जलवायु, उष्ण कटिबंधीय मानसून, सवाना और शुष्क तथा अर्ध-शुष्क प्रदेशों में सिंचाई द्वारा होती है। गेहूं की खेती विषुवत वृत्त के ठंडे और कम आर्द्र पठारी भागों में भी होती है, जैसे एंडीज के पठारी भाग।

गेहूं को बोते समय अच्छी आर्द्रता और शीतल मौसम चाहिए। इसके बाद खुली धूप वाला बिना वर्षा का मौसम चाहिए। दाने को अच्छी तरह पकने के लिए पर्याप्त गर्मी और शुष्क मौसम की आवश्यकता होती है। गेहूं के पकने से कुछ समय पूर्व हल्की वर्षा दाने को मोटा करने में सहायक होती है। विश्व के अधिकांश गेहूं पैदा करने वाले क्षेत्रों में वर्षा 100 सेंटीमीटर से कम होती है। हल्की वर्षा या अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में गेहूं की पैदावार शुष्क खेती विधि द्वारा ली जाती है। गेहूं को न्यूनतम वर्षा के (लगभग 20 सेंटीमीटर वार्षिक) क्षेत्रों में भी बोया जा सकता है। इन क्षेत्रों में पानी की कमी को सिंचाई द्वारा पूरा करते हैं। गेहूं की पैदावार के लिए जल की वास्तविक आवश्यकताएं कई अन्य कारकों पर भी निर्भर करती हैं, जैसे वाष्पीकरण की दर, जल के

अंतः स्रवण एवं अपवाह की मात्रा, स्थाई पवनें, भूमि का उच्चावच और मृदा में आर्द्रता का अंश।

आर्द्रता की अधिकता और अति ऊंचा तापमान दोनों ही गेहूं की पैदावार के लिए हानिकारक हैं क्योंकि ऐसी दशा में दानें को बीमारी लग जाती है। यह बात इस तथ्य से और भी स्पष्ट हो जाती है कि उष्ण कटिबंध के भारी वर्षा वाले क्षेत्रों और शीतोष्ण कटिबंध के वर्ष भर वर्षा वाले क्षेत्रों, जैसे पश्चिमी इंग्लैंड और आयरलैंड में गेहूं की उपज नहीं होती। इसके अतिरिक्त गेहूं अति निम्न तापमान को भी नहीं सह सकता। जिन क्षेत्रों का न्यूनतम तापमान —4^0 C से नीचे चला जाता है, वहां गेहूं की पैदावार अच्छी नहीं होती। सोवियत संघ और कनाडा में अति निम्न तापमान के कारण कई बार गेहूं की फसल खराब हो चुकी है।

गेहूं की पैदावार के लिए हल्की मिट्टी, मृतिका-दुमट या भारी-दुमट चाहिए जो अपेक्षाकृत कुछ कड़ी हो जिससे पौधा मजबूती से खड़ा रहे। इसके साथ ही मिट्टी पर्याप्त गहरी और पारगम्य होनी चाहिए जिससे नमी काफी गहराई तक पहुंच सके। दानें की अच्छी किस्म पाने के लिए मृदा में पर्याप्त चूना और फास्फेट होना जरूरी है। संसार में गेहूं उत्पादन की सबसे अच्छी मिट्टियां यूक्रेन के स्टेपी क्षेत्र और संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा के प्रेयरी क्षेत्र में हैं। इन मिट्टियों को चर्नोजम या काली मिट्टी कहते हैं। इसमें सड़े-गले जैविक पदार्थ अर्थात् ह्यूमस की मात्रा बहुत अधिक होती है। सीढ़ीदार खेतों पर गेहूं की खेती बहुत कम होती है। चीन, जापान और हिमाचल प्रदेश में गेहूं के सीढ़ीदार खेत पाए जाते हैं।

अनेक स्थानीय दशाओं को पूरा करने के लिए गेहूं की सैकड़ों जातियां विकसित की गई हैं। इन जातियों में अलग-अलग गुण होते हैं जैसे, कुछ थोड़े से समय में ही पक जाती हैं, कुछ जतियां ऐसी हैं जो सूखे को सह सकती हैं, कुछ अतिशीत को, तो कुछ बीमारियों और कीड़ों-मकोड़ों को सह सकती हैं। कुछ जातियां ऐसी भी हैं जो तेज हवा में भी दाना नहीं गिरातीं। गेहूं की विभिन्न जातियों को उनकी कठोरता, कोमलता और उपज-अवधि के अनुसार बांटा जाता है।

शीत-कालीन गेहूं

यह गेहूं पतझड़ की ऋतु के अंत में अथवा शीत ऋतु के प्रारंभ में बोया जाता है और ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभ में काट लिया जाता है। इस प्रकार के गेहूं को शीतकालीन गेहूं कहते हैं। यह गेहूं मध्य अक्षांशों के उन प्रदेशों में बोया जाता है जहां शीत ऋतु कोमल अर्थात् बहुत ठंडी नहीं होती। साथ ही यह ऋतु पर्याप्त रूप में आर्द्र होती है और इसमें पाला नहीं पड़ता। इन क्षेत्रों में गेहूं का बीज संपूर्ण शीत ऋतु की अवधि में मिट्टी के अन्दर प्रसुप्त अवस्था में पड़ा रहता है, लेकिन वसन्त ऋतु के शुरू होते ही बड़ी तेजी से बढ़ने लगता है और ग्रीष्म ऋतु में फसल काट ली जाती है। विश्व में जितना गेहूं पैदा किया जाता है उसका 80 प्रतिशत शीत-कालीन गेहूं ही है।

वसंत-कालीन गेहूं

वसंत ऋतु में बोये जाने वाले गेहूं को वसंत-कालीन गेहूं कहते हैं। यह ऐसे क्षेत्रों में पैदा किया जाता है जहां शीत ऋतु अति तीव्र होती है। कनाडा के प्रेयरी क्षेत्र और साइबेरिया के स्टैप्स वाले क्षेत्र ऐसे प्रदेश हैं जहां शीत ऋतु में तापमान हिमांक बिंदु से 16^0 सेंटीग्रेड से लेकर 22^0 सेंटीग्रेड तक नीचे चला जाता है। इन क्षेत्रों में वसंत-कालीन गेहूं की खेती होती है। यहां शीत ऋतु के बाद ही गेहूं बोया जा सकता है। गेहूं का पौधा शीतल वसंत ऋतु में बढ़ता है और ग्रीष्म ऋतु के अंत तक फसल काटने योग्य हो जाती है।

शीत-कालीन तथा वसंत-कालीन दोनों जातियां कठोर हो सकती हैं या कोमल। कठोर गेहूं में नमी की मात्रा बहुत कम होती है, अतः यह डबल रोटी बनाने के लिए बहुत उपयुक्त है। कोमल गेहूं में नमी की मात्रा अधिक होती है, इसलिए यह केक, बिस्कुट और पेस्ट्री बनाने के लिए अधिक उपयुक्त है।

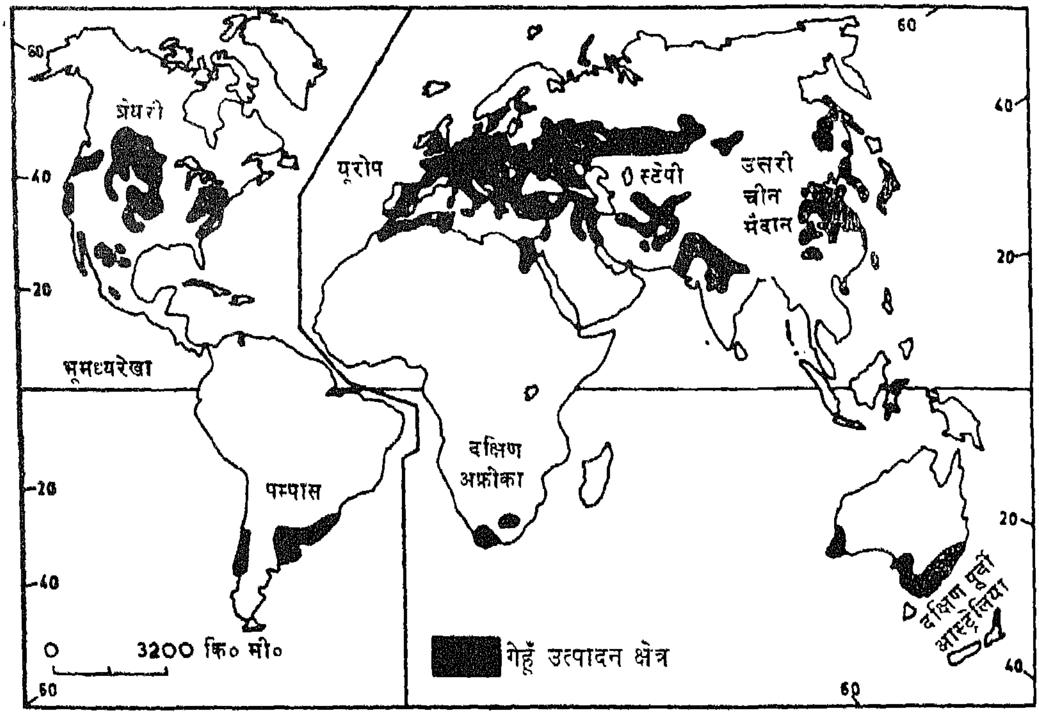
गेहूं का विश्व उत्पादन

ऐसा अनुमान है कि विश्व में गेहूं के अंतर्गत लग-

भग 22 करोड़ हेक्टेयर कृषि भूमि है और गेहूं का विश्व में वार्षिक उत्पादन लगभग 30 करोड़ टन है। विश्व में गेहूं के प्रमुख उत्पादक देश यूरोप, उत्तर अमेरिका, सोवियत संघ, चीन और दक्षिण एशिया के देश हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण महाद्वीपों के कुछ देश भी गेहूं का उत्पादन करते हैं (चित्र 12)।

यह संसार मे गेहूं के प्रमुख उत्पादक देशों में से एक है (चित्र 12)।

दक्षिण और पूर्वी यूरोप के देशों की जलवायु अपेक्षाकृत शुष्क है और गेहूं की खेती के लिए अधिक अनुकूल है। परंतु इन देशों में गेहूं की उपज पश्चिमी यूरोप के देशों के समान नहीं है। भूमध्य सागरीय यूरोप में दक्षिणी



चित्र 12 : विश्व मे गेहूं के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

यूरोप में गेहूं की विस्तृत खेती होती है। यहां गेहूं के उत्पादक देशों के दो वर्ग हैं। उत्तर-पश्चिम यूरोप के देशों में गेहूं के उत्पादन के लिए अनुकूल जलवायु न होते हुए भी गेहूं की गहन खेती होती है और विश्व-भर में यह क्षेत्र गेहूं की सबसे अधिक उपज देते हैं। यूनाइटेड-किंगडम, बेल्जियम, नीदरलैंड और डेन्मार्क में गेहूं की खेती के स्थान पर नगदी फसलों की खेती होने लगी है। लेकिन फ्रांस में गेहूं की खेती का अब भी महत्वपूर्ण स्थान है और फ्रांस, दक्षिणी इटली, ग्रीस और दक्षिणी पुर्तगाल में बहुत अच्छी किस्म का गेहूं पैदा किया जाता है। पूर्वी यूरोप में हंगरी से लेकर वोलगा नदी तक के क्षेत्रों में गेहूं का क्षेत्र एवं इसका उत्पादन बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। सोवियत संघ में गेहूं के उत्पादन में बहुत वृद्धि हुई है (चित्र 12)।

उत्तरी चीन का लोएस क्षेत्र विश्व में गेहूं का एक बहुत बड़ा उत्पादक क्षेत्र है। चीन में गेहूं की अधिकतर खेती परंपरागत विधियों द्वारा होती है जिसमें हाथ से

बहुत काम किया जाता है। कुछ क्षेत्रों में गेहूं की खेती के यंत्रीकरण के परिणामस्वरूप यहां भी उत्पादन बड़ी तेजी से बढ़ रहा है।

विश्व में गेहूं के उत्पादन का दूसरा विशाल क्षेत्र उत्तरी अमेरिका है। यहां की कोष्ण ग्रीष्म ऋतु, वसंत ऋतु में अच्छी वर्षा और उपजाऊ भूमि गेहूं की उपज के लिए बहुत अनुकूल है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक संयुक्त राज्य अमेरिका में गेहूं के उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र वर्जीनियां राज्य और दूरी झील के बीच में थे। परंतु बाद में पश्चिम की ओर अच्छी-अच्छी सड़कें और रेल मार्ग खुल जाने से प्रेयरी का क्षेत्र गेहूं की खेती के लिए महत्वपूर्ण हो गया है। आजकल संयुक्त राज्य अमेरिका के गेहूं के कुल उत्पादन का दो-तिहाई भाग उत्तर और दक्षिण डकोटा, कैंसास, मिनिसोटा, नेबरास्का और मोन्टाना राज्यों से आता है। कनाडा में भी इसी प्रकार गेहूं की खेती के क्षेत्र प्रेयरी भागों की ओर स्थानान्तरित हो रहे हैं। कनाडा के गेहूं के यह क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका के गेहूं क्षेत्रों के उत्तरी प्रसार हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में गेहूं का अधिकतर उत्पादन व्यापारिक स्तर पर हो रहा है। इन देशों के गेहूं के फार्म बहुत बड़े-बड़े है और कुछ तो सैकड़ों हेक्टेयर लम्बे-चौड़े हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के विशाल मैदानों में गेहूं की खेती पूर्णतया मशीनों से की जाती है। इन मशीनों को चलाने वाले खेती के विशिष्ट कार्यों के अनुभवी व्यक्ति होते हैं। गेहूं की कटाई और उसकी भूसी से दाना निकालने का काम मशीन द्वारा एक ही साथ होता है। यह कार्य दक्षिणी राज्यों से प्रारंभ किए जाते हैं और धीरे-धीरे फसल की कटाई उत्तरी राज्यों तक होती जाती है। यह विधि इसलिए अपनाई जाती है कि दक्षिणी राज्यों में ग्रीष्म ऋतु पहले आ जाती है और फिर धीरे-धीरे उत्तर की ओर प्रवास करती है।

दक्षिणी गोलार्ध में गेहूं की खेती अर्जनटीना के पम्पास घास स्थलों और युरुगुए में की जाती है। यहां भौतिक और सामाजिक-आर्थिक कारक गेहूं की खेती के लिए बहुत ही अनुकूल हैं। उपजाऊ मिट्टी और अपेक्षाकृत हल्की वर्षा वाली शीतल जलवायु में यहां विशाल मात्रा में गेहूं पैदा किया जाता है। अर्जनटीना विश्व में गेहूं का महत्वपूर्ण निर्यातक देश है। आस्ट्रेलिया में गेहूं की खेती यहां के घास स्थलों पर होती है। परंतु वर्षा की अनिश्चितता के कारण यहां पानी सिचाई द्वारा प्रदान किया जाता है। आस्ट्रेलिया विश्व में गेहूं का सबसे बड़ा निर्यातक देश है। गेहूं की खेती न्यूजीलैंड के पूर्वी भाग अर्थात् सैलसबरी के मैदानों में भी होती है। अफ्रीका में गेहूं की खेती का अधिक महत्व नहीं है, फिर भी उत्तरी अफ्रीका के कुछ देश और सुदूर दक्षिणी अफ्रीका में गेहूं की कुछ पैदावार होती है। इन सभी क्षेत्रों की जलवायु अर्ध-शुष्क होने के कारण यहां गेहूं का उत्पादन अपेक्षाकृत कम है।

भारत और पाकिस्तान में गेहूं की खेती शीत ऋतु में उन क्षेत्रों में की जाती है जहां वार्षिक वर्षा 100 सेंटीमीटर से कम होती हैं। उत्तरी भारत के विशाल मैदानों की मिट्टियां जलोढ़क है जो गेहूं की खेती के लिए अति उत्तम है। यहां शीत ऋतु में पश्चिमी विक्षेपों से होने वाली हल्की वर्षा गेहूं की वृद्धि में सहायक है। पानी की कमी को सिंचाई द्वारा पूरा किया जाता है। भारत में गेहूं के प्रमुख उत्पादक राज्य पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश हैं। पाकिस्तान में गेहूं की खेती मुख्यत: पंजाब और सिंध राज्यों में है।

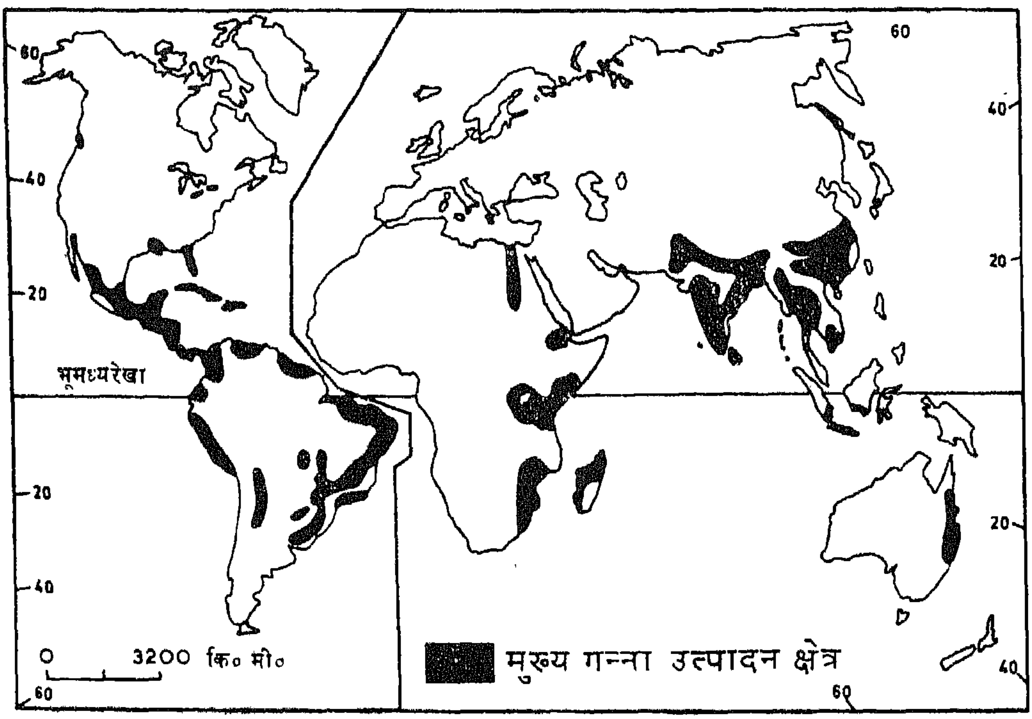
गन्ना

चीनी का प्रमुख स्रोत गन्ना है और यह हमारे भोजन का महत्वपूर्ण अंग है। चीनी से हमारे शरीर को गर्मी मिलती है, अत: भोजन में इसका महत्वपूर्ण स्थान होता है। गन्ना उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों का पौधा है और इसकी खेती 21^0 C और 27^0 C के बीच तापमान वाले क्षेत्रों में होती है। इसके लिए लम्बी अवधि विशेषतया गर्मियों में लगभग आठ महीनों तक का लम्बा वर्षा काल चाहिए और वर्षा की वार्षिक मात्रा लगभग 150 सेंटीमीटर होनी आवश्यक है। गन्ने की फसल काटते समय शीतल शुष्क जलवायु अत्यन्त आवश्यक है। पाला गन्ने की फसल के लिए अति हानिकारक है, इसीलिए इसकी खेती प्राय: पाला मुक्त क्षेत्रों में की जाती है। आवश्यकता से अधिक

भारी वर्षा होने पर गन्ने में रस पतला हो जाता है और उसमें चीनी की मात्रा कम हो जाती है। इसके दूसरी ओर जरूरत से कम पानी मिलने पर गन्ने की वृद्धि बहुत कमजोर होती है और उस दशा में भी चीनी की मात्रा गन्ने से कम मिलती है। गहरी दुमट मिट्टी जिसमें जल का बहाव अच्छी तरह से होता हो, गन्ने की खेती के लिए उत्तम होती है। जिन मिट्टियों में चूने का अंश अधिक होता है वे गन्ने की वृद्धि में सहायक होती हैं। गन्ने की फसल को बड़ी मात्रा में खाद और उर्वरक की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त गन्ने की खेती के लिए अधिक संख्या में सस्ते श्रमिक भी चाहिए, क्योंकि इसके खेत को जोतना, गन्ने की पौध लगाना, सिंचाई करना, गन्ने को काटना, गन्ने को चीनी मिलों तक ढोना आदि यह सारे कार्य शारीरिक श्रम द्वारा किए जाते हैं। गन्ने के पौधे को प्रायः अनेक बीमारियां लग जाती हैं। अतः पूरी उपज अवधि में इसकी अच्छी तरह निगरानी आवश्यक है। कीड़े-मकोड़े आदि लगने पर कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करना भी आवश्यक होता है।

विश्व के विभिन्न भागों में गन्ने की खेती की अलग-अलग पद्धतियां अपनाई जाती हैं। भारत में गन्ने की अधिकांश खेती गुड़ की स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए, छोटे-छोटे खेतों पर की जाती है। इसके विपरीत हवाई और क्यूबा में गन्ना और चीनी का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है और यहां रोपण कृषि प्रचलित है।

भारत गन्ने का विश्व में सबसे बड़ा उत्पादक देश है। यह संसार की चीनी के कुल उत्पादन का लगभग पांचवां भाग प्रदान करता है। भारत में गन्ने का उत्पादन मुख्यतः भारतीय प्रायद्वीप के कर्नाटक, तमिलनाडु, और आंध्र प्रदेश राज्यों तथा गंगा की घाटी में होता है। उत्तर भारत के मैदानों में गन्ने की पैदावार मुख्यतः सिंचाई से



चित्र 13 : विश्व में गन्ने का वितरण

की जाती है। पाकिस्तान में गन्ने की खेती पंजाब और सिंध राज्यों में सिंचाई की सहायता से की जाती है। चीन में स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए गन्ने की खेती सिक्यांग बेसिन के गर्म क्षेत्रों में की जाती है। दक्षिण पूर्व एशिया में गन्ने का सबसे बड़ा उत्पादक देश फिलिपिंस है। इंडोनेशिया कुछ समय पूर्व गन्ने का महत्वपूर्ण उत्पादक देश था, परंतु अब यहां इसकी खेती घट गई है। यह देश अब चीनी का निर्यात करने की बजाय आयात करता है। मलेशिया, बर्मा, थाईलैंड, कम्बोडिया और वियतनाम भी गन्ने का उत्पादन अपनी स्थाई मांग को पूरा करने के लिए करते हैं। तैवान बहुत बड़ी मात्रा में गन्ने का उत्पादन करता है और यह चीनी का निर्यात जापान को करता है (चित्र 13)।

क्यूबा विश्व में चीनी का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। यहां गन्ने के बड़े-बड़े बागान और चीनी की मिलें उत्तरी-तटीय भाग और हवाना के पूर्व में है। क्यूबा की अर्थव्यवस्था की रीढ़ और इस देश के लोगों के जीवन यापन का मुख्य साधन यहां के गन्ने की खेती और चीनी उद्योग है। क्यूबा में चीनी की 160 से भी अधिक मिलें हैं। लेकिन यहां चीनी के उत्पादन और गन्ने की कटाई का काम मुख्यत: एक ही ऋतु में होता है। इसलिए बहुत से कर्मचारी उस समय बेकार हो जाते हैं, जब चीनी की मिलों में काम नहीं होता। यह देश के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है। 1959 में क्यूबा की क्रान्ति से पूर्व क्यबा की चीनी का सबसे बड़ा खरीददार संयुक्त राज्य अमेरिका था। परन्तु कम्युनिस्ट क्रान्ति के पश्चात अब यह सारी चीनी सोवियत संघ को निर्यात की जाती है (चित्र 13)।

लैटिन अमेरिका में गन्ना उत्पादन के अन्य प्रमुख देश मैक्सिको, कोलम्बिया, अर्जेन्टाइना, पेरु, इक्वेडर, पोर्टोरिको, जमाइका और बार्बाडोस हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में गन्ने का प्रमुख उत्पादक राज्य लुशियाना और प्रशान्त महासागर का हवाई द्वीप है। यहां गन्ने की खेती के सारे कार्य मशीनों द्वारा किए जाते हैं क्योंकि यहां सस्ते श्रमिक नहीं मिलते। इस कारण यहां चीनी का उत्पादन मूल्य बहुत ऊंचा है, अत: इस उद्योग को आर्थिक सहायता सरकार द्वारा दी जाती है।

हिन्द महसागर के मारीशस द्वीप और प्रशान्त महासागर के फीजी द्वीप में भी गन्ने की पैदावार की जाती है। दक्षिण अफ्रीका के नेटाल प्रान्त की भी प्रमुख उपज गन्ना है।

कपास

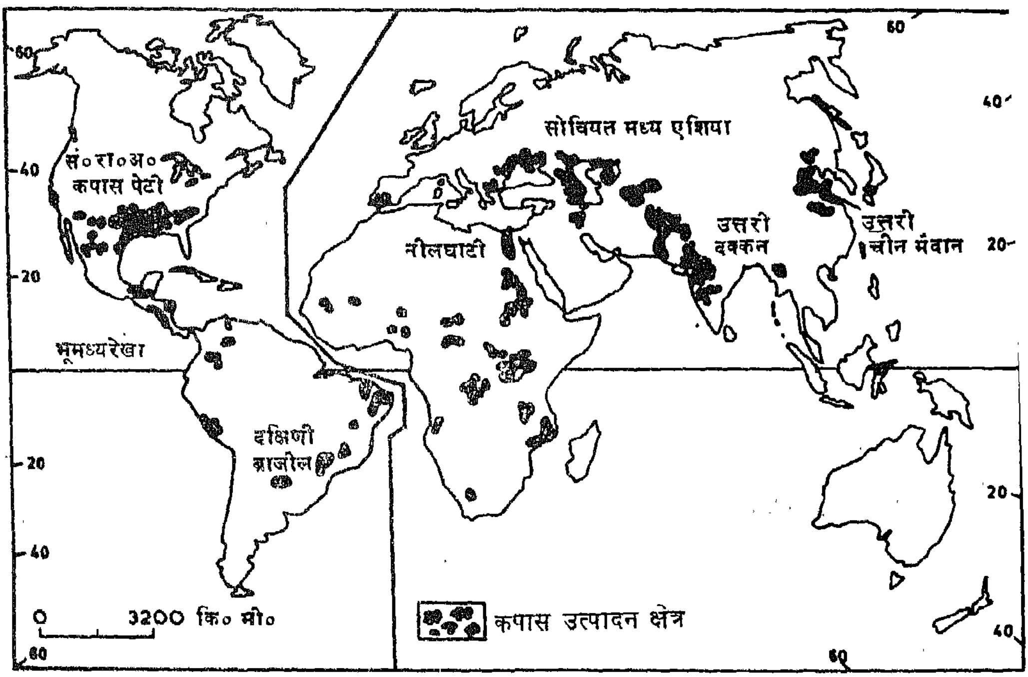
वस्त्र मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं में से एक है। संसार के विभिन्न भागों में लोग अपनी इस मौलिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए विविध प्रकार के पदार्थों, जैसे वृक्षों की छाल, पत्तियों, जानवरों की खालों, फ्लैक्स, कपास, पटसन, रेशम, ऊन, सन, हैम्प, सिसल और कृत्रिम रेशों का प्रयोग विभिन्न रूप में कर रहे हैं। सभी प्रकार के रेशों में कपास का उत्पादन सबसे अधिक होता है। प्राचीन काल में मिश्र के लोग कपास का प्रयोग कपड़ा बनाने में करते थे। कई शताब्दियों तक चीन और मध्य एशिया में कपास का प्रयोग कपड़ा बनाने में होता रहा। मोहनजोदड़ों के पुरातात्विक उत्खननों में पाए धागों से सिद्ध हो गया है कि भारत में भी पांच हजार वर्ष पहले से कपास का उपयोग हो रहा है।

कपास की उपज के लिए कोष्ण जलवायु और सामान्य वर्षा चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में 25° C से ऊंचे तापमान कपास के लिए उत्तम होते हैं। इसके लिए पर्याप्त धूप की भी जरूरत रहती है। इसके लिए 50 से 100 सेंन्टीमीटर वर्षा चाहिए। यह इसके विकास की अवधि में सुवितरित हो तथा थोड़े दिनों के अंतराल पर झड़ी के रूप में बरसे। जहां वर्षा पर्याप्त नहीं होती वहां भी सिंचाई की सहायता से यह उपजता है। शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में सिंचाई द्वारा बहुत ही अच्छे किस्म की कपास पैदा की जाती है। डोंडियों के पकने तथा उसके बाद कपास चुनने की अवधि में मौसम शुष्क, साफ तथा धूप वाला होना चाहिए। इस समय वर्षा और अधिक आर्द्रता से फसल को क्षति हो सकती है। पाले से फसल बर्बाद हो जाती है। अत: इसकी उपज के लिए पाला रहित 200 दिनों की अवधि चाहिए। अच्छे अपवाह वाली हल्की दुमट मिट्टी कपास की खेती के लिए

अनुकूल है। कपास की खेती से मिट्टी का उपजाऊपन बहुत कम हो जाता है। अतः इसे खाद तथा उर्वरक की भारी मात्रा में आवश्यकता होती है। कपास की खेती के लिए प्रचुर मात्रा में सस्ते श्रम की भी जरूरत पड़ती है।

कपास की खेती का सबसे अधिक विकास 19वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के साथ हुआ, जब कपास से बिनौला निकालने, सूत कातने और कपड़ा बुनने वाली मशीनों का आविष्कार किया गया। इन मशीनों से कपड़े का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होने लगा और कपड़े की कीमतें गिरीं जिससे जनसाधारण भी कपड़े को खरीद सका। उपनिवेशी ताकतों ने कपास के बड़े पैमाने पर बागान लगाए और कहीं-कहीं विशेषतया सूडान और मिश्र जैसे शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में कपास की खेती के लिए बड़ी-बड़ी सिंचाई योजनाओं की व्यवस्था की। आज यद्यपि कपास को नाइलोन और रिओन जैसे कृत्रिम रेशों के साथ मुकाबला करना पड़ रहा है, फिर भी इसका सारा उत्पादन विश्व के बाजारों में बिक जाता है। वास्तव में कपास द्वारा बनाया गया स्थानीय कपड़ा कृत्रिम रेशे से बने कपड़े से कहीं सस्ता होता है। इसके अतिरिक्त यद्यपि विकसित देशों में कृत्रिम रेशों का सबसे अधिक विकास हुआ है, फिर भी ये देश कपास का खूब आयात करते हैं। जापान, यूनाइटेड किंगडम और पश्चिमी यूरोप के अन्य देश बड़ी मात्रा में कपास का आयात करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका अपने यहां की कपास जापान और यूरोपीय देशों को बेचता है। मिश्र की अधिकांश कपास यूरोपीय देशों को जाती है। सूडान, यूगांडा और टर्की भी कपास बेचने के लिए यूरोपीय बाजारों को भागते हैं।

विश्व के अनेक भागों में कपास का उत्पादन होता है। लेकिन इसके प्रमुख उत्पादक क्षेत्र, संयुक्त राज्य अमेरिका की विख्यात कपास की पेटी, चीन का उत्तरी-पूर्वी भाग, सोवियत संघ का मध्य एशिया और दक्षिणी-



चित्र 14 : विश्व में कपास का वितरण

पश्चिमी भाग, भारत के दक्कन पठार की काली मिट्टी वाला क्षेत्र, मिश्र, मैक्सिको, उत्तरी-पूर्वी ब्राजील और पाकिस्तान हैं (चित्र 14)।

भारत विश्व के कुल कपास उत्पादन का 8 प्रतिशत प्रदान करता है। कपास की पैदावार में भारत के प्रमुख राज्य महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश हैं। भारत में कपास की अधिकांश खेती सिंचाई पर आधारित है और यहां की कपास का अधिकांश उत्पादन देश की कपड़ा मिलों में ही खप जाता है।

चाय

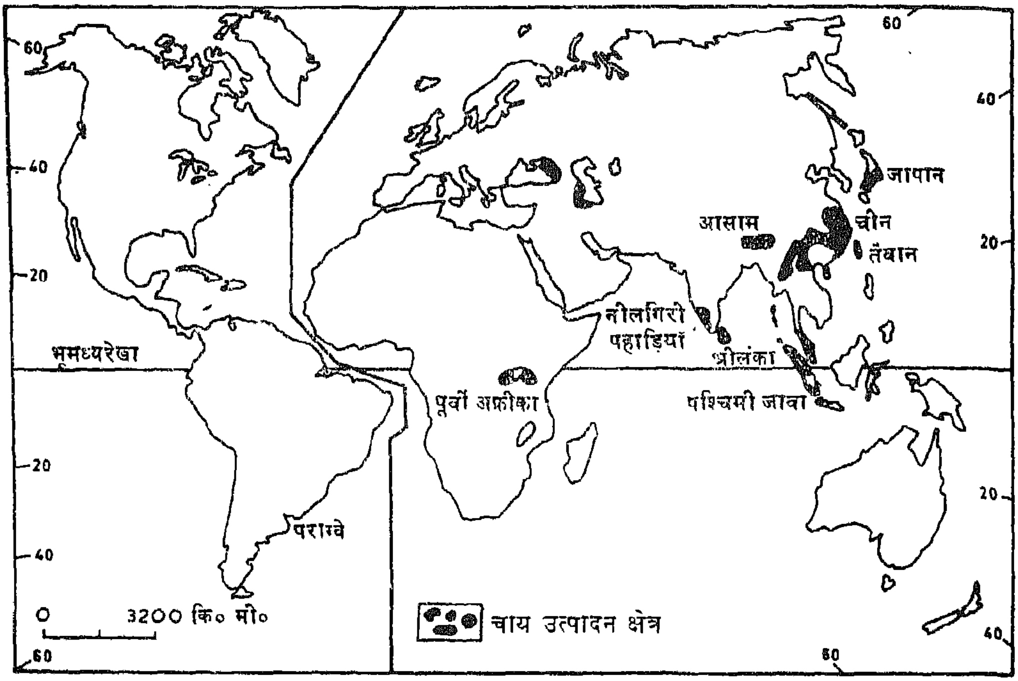
चाय विश्व का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पेय है। चाय, मानसून-एशिया की पहाड़ी ढलानों पर मूल रूप से उगने वाली एक उष्ण कटिबंधीय झाड़ी है, जिसकी पत्तियों से चाय तैयार की जाती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि चीन की यांग्टोसोक्यांक घाटी में चाय की खेती सर्वप्रथम प्रारंभ की गई। स्फूर्तिदायक पेय के रूप में चाय का उपयोग चीन में सदियों से हो रहा है। यूरोप में चाय का प्रचलन 17 वीं शताब्दी के मध्य से हुआ है।

चाय की खेती के लिए गहरी, सुप्रवाहित, उर्वर मिट्टी की आवश्यकता होती है। मिट्टी में लोहे का अल्पांश विशेष सहायक होता है और मिट्टी का सुप्रवाहित होना चाय की खेती के लिए अति महत्वपूर्ण है। अतः इसकी खेती प्रायः पहाड़ी ढलानों पर ही की जाती है। सुप्रवाहित नदी-घाटियों में भी चाय पैदा की जाती है। चाय का पौधा अपनी 8 महीने तक की उपज-अवधि में तभी अच्छी तरह फलता-फूलता है जब उसे लगभग 25° सेंटीग्रेट औसत तापमान निरंतर मिलता रहे। इसकी पत्तियों के निरंतर एवं अच्छे विकास के लिए वर्ष भर समान रूप से वितरित, लगभग 200 से 250 सेन्टीमीटर तक भारी वार्षिक वर्षा अत्यावश्यक है। इन भौतिक आवश्यकताओं के कारण ही चाय की खेती उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधों के आर्द्र प्रदेशों में ही सीमित है। इसके अतिरिक्त चाय की रोपण कृषि में अधिक मात्रा में पूंजी विनियोग के साथ-साथ कुशल श्रमिकों की बड़ी संख्या में उपलब्धता एक महत्वपूर्ण कारक है।

चाय की खेती शुरू करने के लिए भूमि, मुख्यतः पहाड़ी ढलानों को साफ किया जाता है। चाय की पौध नर्सरी में तैयार की जाती है और जब पौधे लगभग 20 सेन्टीमीटर ऊंचे हो जाते हैं तो उन्हें पर्वतीय ढलानों पर विशेष रूप से बनाए खेतों पर प्रतिरोपित कर दिया जाता है। इन पौधों को कतारों में और एक दूसरे के बीच लगभग डेढ़ मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। अनावश्यक पौधों को उखाड़ फेंकने और भारी मात्रा में खाद देने का काम नियमित अंतरालों पर किया जाता है। नियमित काट-छांट से पौधे की उचित ऊंचाई बनी रहती है और नयी पत्तियों के विकास में सहायता मिलती है। पत्तियों की पहली बार चुनाई पौधे के लगाने के दो वर्ष बाद की जाती है, परन्तु यह कार्य पूर्ण रूप में पांच वर्ष के अन्त में ही हो पाता है। चाय की झाड़ी एक बार लगाने के बाद वह लगभग पचास वर्षों तक पत्तियों का लगातार उत्पादन्न करती रहती है। इसके बाद चाय के पौधे को फिर से प्रतिरोपित करना आवश्यक हो जाता है। पत्तियों को चुनने के बाद उन्हें विभिन्न क्रियाओं द्वारा संसाधित किया जाता है। आजकल अधिकांश चाय बागानों पर ये सारी क्रियाएं मशीनों द्वारा की जाती हैं।

भारत विश्व में चाय का सबसे अधिक उत्पादन करता है और यह अकेले संसार के कुल चाय उत्पादन का लगभग 35% प्रदान करता है। भारत में चाय की खेती असम की पहाड़ियों, हिमालय और नीलगिरी के ढलानों पर की जाती है। असम की पहाड़ियों और हिमालय के ढलानों से चाय का सबसे अधिक उत्पादन मिलता है (चित्र 15)। इन क्षेत्रों में चाय की खेती के लिए अनुकूल कारक, प्रचुर मात्रा में वर्षा, उपजाऊ सुप्रवाहित मिट्टी और आसपास के घनी आबादी वाले क्षेत्रों से पर्याप्त संख्या में कुशल श्रमिक, उपलब्ध हैं।

श्रीलंका विश्व का दूसरा सबसे बड़ा चाय उत्पादक है। श्रीलंका में चाय का व्यापारिक उत्पादन सन 1870 से प्रारंभ हुआ। श्रीलंका के शीतल और आर्द्र मध्य पर्वतीय ढलान चाय की खेती के आदर्श स्थल हैं। यहां की चाय उच्चकोटि की मानी जाती है। श्रीलंका चाय के निर्यात द्वारा सबसे अधिक विदेशी मुद्रा कमाता है।



चित्र 15 : विश्व में चाय उत्पादन का वितरण

चीन शताब्दियों से चाय का सबसे बड़ा उत्पादक, उपभोक्ता और निर्यातक रहा है। चाय के क्षेत्र और उत्पादन में चीन का अब भी महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु इसका निर्यात भारत और श्रीलंका की तुलना में बहुत कम हो गया है। चीन में चाय के प्रमुख क्षेत्र पर्वतीय भू-भाग विशेषतया यांगटीसीक्यांग घाटी और सैंचवान बेसिन हैं (चित्र 15)। चीन में चाय का अधिक उत्पादन स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए होता है। यहां हरी चाय पैदा की जाती है जिसके संसाधन में बहुत कम क्रियाएं की जाती हैं।

चाय के अन्य उत्पादक देश जापान और हिन्देशिया हैं। इन देशों में भी चाय की पैदावार मुख्यत: स्थानीय मांग के लिए होती है और यहां का निर्यात बहुत कम है। मानसून-एशिया के बाहर चाय के प्रमुख उत्पादक देश कीनिया, मलावी, यूगांडा और मुजाम्बिक हैं (चित्र 15)।

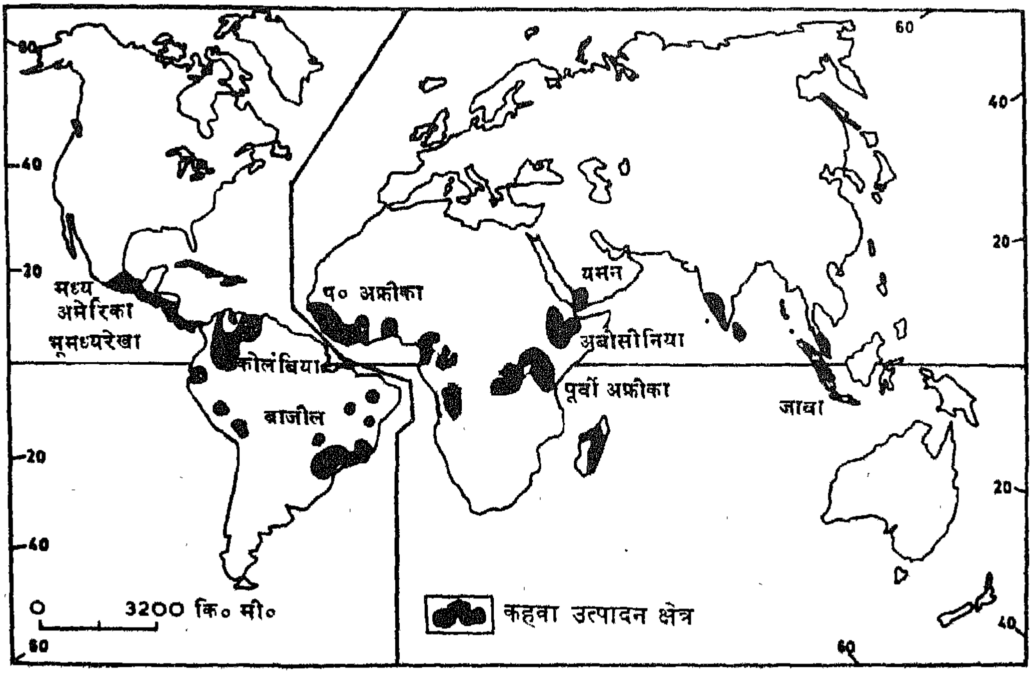
कहवा

कहवा का पौधा एक उपोष्ण कटिबंधीय सदा हरित झाड़ी है जिसका मूल वास स्थल अफ्रीका के उच्च पठारी क्षेत्र हैं। इस झाड़ी से फलों से प्राप्त बीजों को भूनकर उन्हें पीस लिया जाता है और यह पिसा हुआ पाउडर अन्य प्रक्रियाओं द्वारा संसाधित करके काफी पेय बनाने में काम आता है। संसार के लगभग एक तिहाई लोग कहवा को गर्म पेय अथवा शीतल पेय के रूप में प्रयोग करते हैं। कैफीन नामक नशीला तत्व होने के कारण इसके पीने पर एक विशेष प्रकार की स्फूर्ति मिलती है और इसी कारण यह पेय आजकल अधिक लोक प्रिय हो रहा है।

प्राचीन काल में इथोपिया के उच्च पठारों पर कैफा नाम का जंगली पौधा उगता था। 15 वीं शताब्दी में यह पौधा दक्षिण अरब के क्षेत्रों में उगाने के लिए ले जाया गया। 16 वीं शताब्दी में इसकी खेती यूरोप के कुछ देशों में प्रारंभ की गई। इसकी लोकप्रियता बढ़ने के साथ कहवा की खेती अब श्रीलंका, जावा, हिन्देशिया, हैती, सूरिनाम, ब्राजील, जमैका, क्यूबा, पोर्टोरिको, कोष्टारिका, वैनेज्वैला, मैक्सिको, कोलम्बिया, भारत तथा हवाई द्वीपों में होती है।

कहवा की दो उपजातियां हैं—अरेबिका और रोबस्टा। अरेबिका जाति का कहवा मुख्यत: लेटिन अमेरिका के देशों में और रोबस्टा की खेती मुख्यतः अफ्रीकी देशों में की जाती है। भारत तथा हिन्देशिया में दोनों जातियों का कहवा उगाया जाता है।

कहवा की अच्छी उपज के लिए गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है और इसके लिए 32° C का तापमान आदर्श माना जाता है। यद्यपि यह उच्च भागों में 14° C से 26° C तक के बीच पैदा की जाती है। इसकी वृद्धि ग्रीष्म ऋतु के अधिक वर्षा वाली अवधि में खूब होती है। कहवा के लिए गर्म मौसम और लगातार खुली धूप अति आवश्यक है। इसके फलों को तोड़ते समय शुष्क मौसम अच्छा होता है। इसके लिए प्रचुर मात्रा में वर्षा, 100 से 200 सेंटीमीटर तक आवश्यक है। इसकी जड़ों में पानी रुकना हानिकारक होता है। इसीलिए कहवा की खेती सुप्रवाहित पहाड़ी ढलानों पर की जाती है। जिन क्षेत्रों में वर्षा 100 सेंटीमीटर से कम होती है वहां सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है। कहवा की फसल मिटटी की उर्वरता जल्दी समाप्त कर देती है इसलिए इसे नियमित समय पर खाद और उर्वरकों की भारी मात्रा देना जरूरी होता है।



चित्र 16 : विश्व में कहवा उत्पादन का वितरण

कहवा की खेती के लिए सर्वप्रथम इसके पौधे नर्सरी में बीजों द्वारा तैयार किए जाते है। छः महीने बाद जब पौधे विशेष ऊंचाई के हो जाते हैं तो इन्हें पहाड़ी ढालों पर बनाए विशेष प्रकार के खेतों में प्रतिरोपित किया जाता है। इन पौधों को कतारों में एवं एक दूसरे के बीच तीन मीटर की दूरी पर लगाते हैं जिससे वे द्रुतगति से बढ़ सकें। इनकी प्रति वर्ष कांट-छांट की जाती है जिससे फल तोड़ने में सुविधा होती है और पौधों में कहवा के फल भी बड़ी मात्रा में आते है। कहवा के फल तोड़ने का काम हाथों से किया जाता है। इसमें तैयार फलों को उनके डंठल से अलग करते है। फिर इन फलों को विविध क्रियाओं द्वारा संसाधित किया जाता है। कहवा की खेती की आधुनिक विधियों द्वारा, अब एक हेक्टेयर भूमि से अरेबिका कहवा का 800 से 1200 किलोग्राम और रोबस्टा कहवा का 1000 से 1800 किलोग्राम उत्पादन होता है।

कहवा के उत्पादन में ब्राजील विश्व में सबसे आगे है। यहां कहवा के बागान, जिन्हें यहां फेजेन्डा कहते हैं मुख्यतः साओपोलो पठार के ढलानों पर केंद्रित हैं। कहवा का उत्पादन कोलम्बिया, इक्वेडर, वेनेजुएला, गुयाना, गोटेमाला, एल-सल्वाडोर, कोस्टारिका, मेक्सिको, क्यूबा, हैठी, जैमाइका, अंगोला, आइवरी कोस्ट, यूगांडा, इथोपिया, जामटे, कैमरुन, रौंड-बूंडी, मैलागासी, हिन्देशिया, श्रीलंका और भारत में भी होता है। भारत में कहवा उत्पादन के प्रमुख राज्य तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक हैं (चित्र 16)।

रबर

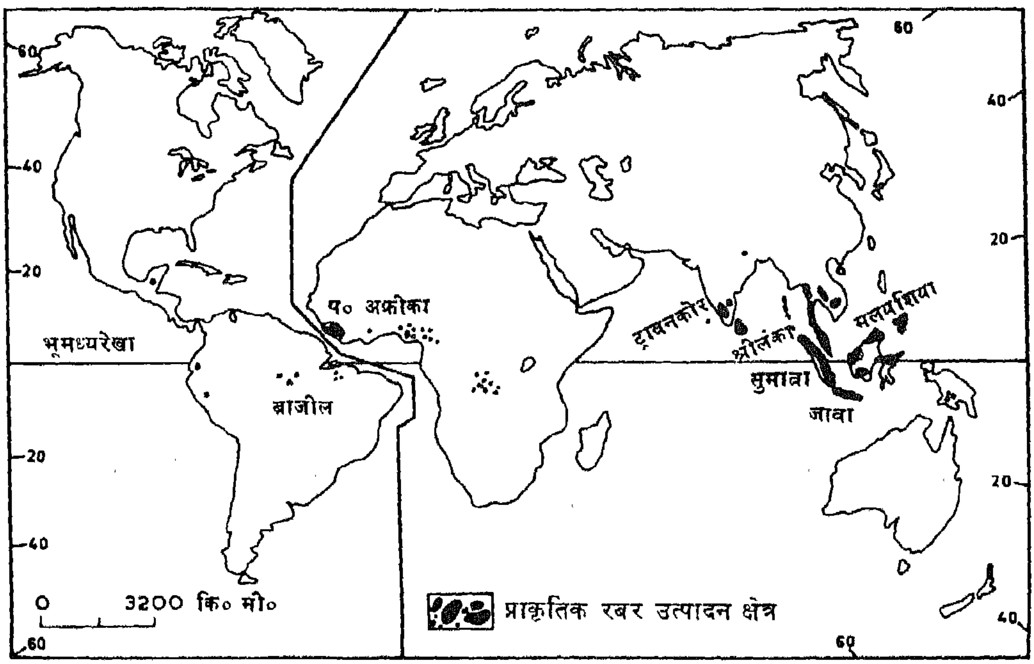
रबर विषुवतीय वनों में उपजने वाले वृक्षों से प्राप्त होने वाला एक चिपचिपा रस है जिसे लैटेक्स या रबर क्षीर कहते हैं। प्रत्यास्थता, जल-प्रतिरोधी और विद्युत का अचालक होना रबर के तीन विशेष गुण हैं और इन्हीं गुणों के कारण रबर से अनेक प्रकार की वस्तुएं बनाई जाती हैं। वर्तमान शताब्दी के प्रारंभ से साइकिल, मोटरकार तथा ट्रकों के टायर बनाने एवं विद्युत के सामानों के निर्माण के लिए रबर की मांग अधिक हो रही है।

कई जातियों के वृक्ष लैटेक्स प्रदान करते हैं और इनसे रबर बनाया जा सकता है। प्रारंभ में अमेजिन नदी के बेसिन में पाए जाने वाले रबर वृक्ष से लैटेक्स निकाला जाता था। अमेजिन नदी पर स्थित मनौस नगर से बड़ी मात्रा में लेटेक्स विदेशों को जाता था। लेकिन रबर का यह व्यवसाय अमेजिन की घाटी में अधिक समय तक न चल सका। यहां से रबर के वृक्ष विश्व के उष्ण कटिबंध के अन्य भागों पर लगाए गए। इनमें से प्रमुख क्षेत्र श्रीलंका, भारत और मलाया हैं जो उस समय ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश थे। मलाया में रबर का पौधा अच्छी तरह से पनपा और इसके बड़े-बड़े बागान यहां तैयार किए गए।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया रबर की विश्व में मांग बढ़ती गई। वाहनों के टायर और ट्यूब में अब भी रबर का सबसे अधिक उपयोग होता है। द्वितीय महायुद्ध में दक्षिण-पूर्व एशिया के द्वीप जो उस समय रबर का उत्पादन विश्व में सबसे अधिक करते थे जापान के अधीन आ गए। उन दिनों पश्चिम के देशों को रबर की आपूर्ति बहुत कम हो गई। अतः संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों ने रबर के अन्य स्रोत ढूंढ लिए। कृत्रिम रबर का आविष्कार वास्तव में दूसरे महायुद्ध में प्राकृतिक रबर की पूर्ति के कम होने के परिणामस्वरूप हुआ है। इस समय कृत्रिम रबर का उपयोग प्राकृतिक रबर से कहीं अधिक हो रहा है। सन 1970 में विश्व के कुल रबर का उत्पादन 80 लाख टन था, जिसमें 50 लाख टन कृत्रिम रबर थी और 30 लाख टन प्राकृतिक। प्राकृतिक रबर का 90% दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों ने प्रदान किया। यहां एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि रबर का वृक्ष प्रारंभिक समय में अमेजिन बेसिन में ढूंढ़ा गया और वहां कुछ समय तक इसका उत्पादन भी हुआ, लेकिन बाद में रबर की उपज वहां न बढ़ाकर मलाया या दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में क्यों विकसित की गई ? कांगो नदी की घाटी में भी उन दिनों जंगली रूप में रबर का वृक्ष मिलता था, अतः यहां भी रबर के बागान लगाए जा सकते थे। परंतु रबर की खेती का विकास करने के लिए इस क्षेत्र को भी नहीं चुना गया। ऐसा क्यों ? इस प्रश्न का

उत्तर रबर के वृक्ष की अपेक्षा लोगों से ज्यादा संबंध रखता है। दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में सस्ते श्रमिक अमेजिन की घाटी और कांगो की घाटी की तुलना में अधिक संख्या में उपलब्ध थे। रबर-क्षीर प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन बहुत अधिक संख्या में मजदूर चाहिए। दूसरे, बागानी खेती के आधार पर रबर का उत्पादन प्रारंभ करने के लिए विदेशी पूंजी और कुशलता एवं तकनीकी ज्ञान अमेजिन तथा कांगो की घाटियों को उपलब्ध न था। इसके विपरीत यह सब सुविधाएं ब्रिटेन द्वारा मलेशिया को प्राप्त थीं। इसके साथ ही मलेशिया में रबर के बागान उच्च भूमि पर लगाए गए हैं और वे समुद्र के अधिक निकट हैं। यह सुविधा अमेजिन और कांगो क्षेत्रों में नहीं थी। हाल ही में फायर स्टोन कम्पनी ने अफ्रीका में बड़े पैमाने पर रबर के बागान लगाए हैं और अमेजिन की घाटी में भी रबर की रोपण कृषि का विकास किया जा रहा है।

जिन देशों में लाखों और करोड़ों की संख्या में कारें, ट्रक, बसें और अन्य ऐसे वाहन प्रयोग किए जाते हैं, जिनमें रबर के पहिए लगे होते हैं, ऐसे देशों में रबर की अत्याधिक मांग है। संयुक्त राज्य अमेरिका प्राकृतिक रबर का सबसे अधिक उपयोग करता है। यह देश कृत्रिम रबर का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता भी है। इसके बाद पश्चिमी यूरोप का स्थान आता है। यद्यपि रबर की खेती का विस्तार उष्ण कटिबंधीय प्रदेश के अनेक क्षेत्रों में किया गया है। फिर भी दक्षिण-पूर्व एशिया प्राकृतिक रबर के उत्पादन में सबसे आगे है। इस समय मलेशिया, हिन्देशिया, थाईलैंड और श्रीलंका प्राकृतिक रबर के प्रमुख उत्पादक हैं (चित्र 17)। रबर का उत्पादन भारत, लिबोरिया, कम्बोडिया, नाईजीरिया, वियतनाम, जायरे और ब्राजील में भी होता है। भारत में केरल और तमिलनाडु राज्यों में रबर पैदा की जाती है। यहां रबर का उत्पादन प्रति वर्ष 63,000 टन है।



चित्र 17 : प्राकृतिक रबर का विश्व वितरण

फसलों का संयोजन

फसलों को प्रायः एक दूसरे के संयोजन से उपजाया जाता है। ऐसा बिरले ही होता है कि किसी फसल को खेत में अकेले बोया जाए। विभिन्न फसलों के अलग-अलग मानचित्र अध्ययन के लिए उपयोगी हैं, लेकिन किसी क्षेत्र के विविध शस्य-संयोजन जानना इससे भी अधिक रुचि-पूर्ण है। उदाहरण के लिए भारत का विभाजन गेहूं प्रदेश और चावल प्रदेशों में करना भारतीय कृषि के एक महत्वपूर्ण तत्व को छिपा देता है। इससे यह बात उभर कर आती है कि गेहूं के प्रदेश में भी कुछ ऐसे छोटे-छोटे क्षेत्र हैं जहां चावल की खेती होती है या गेहूं की पैदावार दालों के साथ या गन्ने के साथ होती है। अतः किसी क्षेत्र के वास्तविक कृषीय चित्र की सुस्पष्ट जानकारी और सुव्यवस्थित ज्ञान के लिए उस क्षेत्र के फसल-सयोजन का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

भूगोल वेत्ताओं ने शस्य-संयोजन के क्षेत्रों को सीमांकन करने की कुछ उपयोगी विधियां निकाली हैं, और उनके द्वारा शस्य-संयोजन के प्रमुख क्षेत्रों का आसानी से अध्ययन किया जा सकता है। शस्य-संयोजन के प्रदेशों को सीमांकन करने की जो विभिन्न विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं, उन्हें दो-शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है। प्रथम शीर्षक के अंतर्गत स्वेच्छा चयन विधि अर्थात केवल पहली फसल, प्रथम दो फसलें अथवा प्रथम तीन फसलें आदि-आदि ली जाती हैं। स्वेच्छा चयन विधि के आधार पर जो शस्य-संयोजन निकाला जाता है वह बिलकुल ठीक नहीं होता, क्योंकि उसमें स्वेच्छा के द्वारा कुछ प्रमुख फसलों के संयोजन को ही चुना जाता है और अन्य फसलों को, उनका सम्पूर्ण शस्य क्षेत्र में प्रतिशत मान होते हुए भी छोड़ दिया जाता है। शस्य-संयोजन प्रदेश के सीमांकन करने की दूसरी विधि सांख्यकीय अर्थात आंकड़ों पर आधारित है। इसके द्वारा किसी क्षेत्र की फसलों को विभिन्न वर्गों में बांटा जाना अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध होता है। ये सांख्यकीय विधियां भूगोल वेत्ताओं द्वारा समय-समय पर संशोधित की गई हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य पश्चिमी भाग के अति जटिल कृषीय क्षेत्रों को सीमांकन करने के लिए 'वीवर' ने एक महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय विधि का उपयोग किया है। वीवर ने अपने अध्ययन में प्रत्येक फसल का कितना प्रतिशत भाग सम्पूर्ण शस्य क्षेत्र में आता है, इसका ध्यान रखा। उन्होंने एक सैद्धांतिक मानक से प्रत्येक घटक क्षेत्रीय इकाई के सभी संभव शस्य-संयोजनों के विचलन मान निकाले। एक फसली खेती के सम्पूर्ण शस्य क्षेत्रफल का सैद्धांतिक मानक 100 प्रतिशत, दो फसलों के संयोजन के लिए 50 प्रतिशत, तीन फसलों के लिए 33 प्रतिशत और चार फसलों के लिए 25 प्रतिशत माना। जिस फसल का विचलन सैद्धांतिक मानक वक्र से सबसे कम होता है उसे संयोजन में सम्मिलित किया जाता है। भारत में भी सूक्ष्म से स्थूल स्तरों तक शस्य-संयोजन क्षेत्रों का निरुपण करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण अध्ययन किए गए हैं।

शस्य-संयोजन क्षेत्रों के अध्ययन द्वारा कृषीय भूमि-उपयोग के आयोजक विभिन्न क्षेत्रों की मुख्य-मुख्य फसलें और उनके संयोजन को जान लेते हैं। इससे किसी क्षेत्र के कृषीय विकास और उसकी योजना बनाने में बड़ी मदद मिलती है।

कृषि क्षेत्र (कृषि-प्रदेश)

भूगोल अध्ययन में प्रादेशिक जानकारी को महत्व-पूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रदेश पृथ्वी-सतह का एक ऐसा भाग है, जो अपनी कुछ खास विशेषताओं के कारण एक इकाई के रूप में पहचाना जाता है और जो आसपास की अन्य इकाइयों से अलग दिखाई देता है। किसी देश अथवा क्षेत्र के भौतिक लक्षण अध्ययन करते समय हम प्रदेशों की संकल्पना नदी-द्रोणी, पर्वतीय प्रदेश, मैदानी प्रदेश, पठारी प्रदेश आदि में करते हैं। जलवायु का अध्ययन करते समय उन्हें विषुवतीय, टुन्ड्रा, सवाना आदि प्रदेशों में; और सामाजिक-आर्थिक दशाओं के अध्ययन में उनकी संकल्पना वस्त्र निर्माण क्षेत्र, कोयला उत्पादन क्षेत्र, कपास, पटसन, चावल, गेहूं आदि के प्रदेशों में की जाती है।

कृषि, प्रदेश धरातल पर एक ऐसा विस्तृत भूभाग होता है। जिसमें कृषि की दशाएं एवं विधियां लगभग एक सी होती हैं और इन विशेषताओं के कारण ही वह आसपास

के अन्य प्रदेशों से अलग दिखाई देता है। विश्व के विभिन्न भागों में अलग-अलग कृषि पद्धतियां पाई जाती हैं। अत: संसार को प्रत्येक कृषि पद्धति के अंतर्गत अलग-अलग कृषि-प्रदेशों में बांटा जा सकता है। एक फसली प्रदेश, शस्य-संयोजन प्रदेश, फसल और पशु संयोजन प्रदेश आदि कृषि-प्रदेशों के कुछ उदाहरण हैं। इसी प्रकार के कृषि-प्रदेशों के उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा का बंसत-कालीन गेहूं का प्रदेश, अर्जेन्टाइना के पम्पाज में गेहूं, अल्फाल्फा-पशु प्रदेश, संयुक्त राज्य अमेरिका की कपास पट्टी और मक्का पट्टी आदि हैं। इसी प्रकार भारत में भी विभिन्न प्रकार के कृषि प्रदेशों का निरूपण किया गया है। उदाहरणार्थ पंजाब और पश्चिम बंगाल क्रमश: गेहूं प्रदेश और चावल-प्रदेश में सीमांकन करते हैं और महाराष्ट्र के काली मिट्टी के क्षेत्र को भारत के कपास प्रदेश में निरूपित किया जाता है।

कृषि-प्रदेशों के अध्ययन द्वारा विभिन्न क्षेत्रों की मुख्य फसलों, शस्य संयोजन, और कृषि समस्याओं आदि की पूरी जानकारी मिलती है। अत: किसी क्षेत्र के समाकलित कृषि विकास के लिए कोई योजना बनाने और उसे कार्यरूप देने से पूर्व यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके मूलभूत कृषि-प्रदेशों को अच्छी तरह से अध्ययन कर लिया जाए।

अभ्यास

समीक्षात्मक प्रश्न

1. चावल की खेती के लिए आवश्यक दशाएं बताइए। विश्व के किन-किन भागों में चावल की खेती होती है ? अपने उत्तर को उपयोगी स्केचमैप द्वारा भी स्पष्ट करिए।
2. गेहूं के उत्पादन के लिए कौन-कौन सी भौगोलिक दशाएं आवश्यक हैं ? गेहूं के प्रमुख उत्पादक प्रदेशों को रेखा मानचित्र पर दिखाइए।
3. विश्व के दो ऐसे विपरीत क्षेत्र चुनिए, जिनमें से एक में गेहूं की जीविका कृषि होती है और दूसरे में व्यापारिक कृषि। इन दोनों क्षेत्रों में गेहूं के भिन्न उत्पादन के कारणों की विवेचना करिए।
4. निम्नलिखित के बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए क्या-क्या भौगोलिक कारक उत्तरदाई हैं ?
   (क) चाय और कहवा, (ख) रबर और कपास।
5. चाय या गन्ना के उत्पादन, उपभोग और व्यापार के बारे में पूर्ण विवरण दीजिए।
6. वस्त्र निर्माण उद्योग आजकल मुख्यत: उन्हीं प्रदेशों में चल रहा है जो कपास का उत्पादन करते हैं। क्या वस्त्र निर्माण उद्योग के इतिहास में ऐसा ही होता आया है ? अपने उत्तर कारण सहित विवेचना कीजिए।
7. शस्य-संयोजन और कृषि-प्रदेश की व्याख्या कीजिए और उनका आर्थिक महत्व स्पष्ट कीजिए।
8. रबर के वृक्ष लगाने के लिए कौन-सी भौगोलिक आवश्यकताएं होनी चाहिएं ?

ज्ञात कीजिए

(i) अपने क्षेत्र में पैदा की जाने वाली गेहूं, चावल, मक्का और ज्वार-बाजरा की अलग-अलग किस्मों के बीज एकत्र कीजिए और प्रत्येक खाद्यान्न के अलग-अलग बीज प्रकार की विशेषताओं में अंतर मालूम कीजिए।

(ii) गन्ने के किसी फार्म का भ्रमण कीजिए और बोई गई नई फसल और रतून फसल में अंतर मालूम कीजिए।

मानचित्र कार्य

विश्व के रूपरेखा मानचित्र में निम्नलिखित दर्शाइए :

(क) चावल की पैदावार के क्षेत्र,

(ख) गेहूं के उत्पादन क्षेत्र,

(ग) चाय, कहवा और रबर के उत्पादन क्षेत्र।

अतिरिक्त अध्ययन

1. अहमद, ए० एंड सिद्दीकी, एम० पी०, (1967), **क्राप एशोसिएशन पैटर्न इन दि लूनी बेसिन**, दि ज्योग्राफर, वाल्यूम XIV, पृष्ठ 66-80
2. ऐय्यर, एन० पी०, (1969), **क्राप रीजंस आफ मध्य प्रदेश—ए स्टडी इन मेथोडोलॉजी**, दि ज्योग्राफिकल रिव्यू आफ इंडिया, मार्च, पृष्ठ 1-19
3. ग्रिग, डी० बी०, **दि एग्रीकल्चुरल सिस्टम आफ दि वर्ल्ड—एन एवोलुशन एप्रोच**, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1975
4. डी बिलिज, एच० जे०, **मैन शेप्स दि अर्थ—ए टोपिकल ज्योग्राफी**, कैलीफोर्निया, 1974
5. हुसेन, एम०, (1972), **क्राप कम्बीनेशन रीजंस आफ उत्तर प्रदेश—ए स्टर्ज इन मेथेडोलॉजी**, दि ज्योग्राफिकल रिव्यू ऑफ इंडिया, वाल्यूम XXXIV, जून, पृष्ठ 134-156
6. परपिलन, ए० बी०, **ह्यूमन ज्योग्राफी**, लांगमैन ग्रुप लि० लन्दन, 1966

अध्याय 7

निर्माण उद्योग

निर्माण उद्योग वह संगठित मानव प्रयास है जिनमें कच्चे माल को मशीनों की सहायता से बड़े पैमाने पर अधिक उपयोगी वस्तुओं में बदला जाता है। मानव व्यवसायों की क्रमिक श्रेणी में निर्माण उद्योग द्वितीयक व्यवसाय या गौण व्यवसाय कहलाता है। यह प्राथमिक उत्पादन, जिसमें वस्तु-संग्रह, शिकार करना, लकड़ी काटना, मछली पकड़ना, खनन, पशुचारण एवं कृषि व्यवसाय आते हैं, के बाद का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादन वर्ग है। आजकल निर्माण उद्योग के अंतर्गत छोटी से छोटी वस्तु सुई, बटन, चन्दन का तेल, सरसों का तेल, मोम जैसी चीजों के निर्माण से लेकर बड़ी से बड़ी जटिल मशीनें, औजार, वायुयान, पनडुब्बी, विशाल कंप्यूटर आदि तक निर्मित किए जाते हैं।

प्राचीन काल में कई शताब्दियों तक निर्मित-वस्तुओं के प्रमुख स्रोत शिल्पकार हैं। जनसंख्या की जैसे-जैसे वृद्धि हुई इन निर्मित वस्तुओं की मांग और विविधता में भी वृद्धि होने लगी। इसके परिणामस्वरूप शिल्पकारों का समुदाय बढ़ने लगा। उस समय शिल्पकार वस्तुओं का निर्माण अपने घरों में करते थे और इसीलिए इस प्रकार के निर्माण उद्योग को कुटीर-उद्योग कहा जाता था। भारत में अब भी वस्त्र निर्माण की कुल मात्रा का एक बड़ा भाग हथकरघा बुनकरों द्वारा अपने-अपने घरों पर बनाया जाता है।

यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में घटित औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप निर्माण उद्योग में बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। मशीनों के अविष्कार ने तैयार माल के बड़े पैमाने पर उत्पादन करने में बहुत मदद दी। अन्य क्षेत्रों में प्रगति, जैसे इस्पात का विकास और यातायात में सुधार ने भी औद्योगिक क्रान्ति को संवेग दिया। सर्वप्रथम उन उद्योगों का विकास किया गया जो, कपास, पटसन, ऊन, लौह-अयस्क आदि जैसे कच्चे माल को निर्मित वस्तुओं में बदलते थे। इन दिनों वे उद्योग अधिक महत्वपूर्ण, समझे जाते थे जो विद्युत उपकरण, मोटरकार, विभिन्न प्रकार की मशीनों, घड़ियों और अनेक प्रकार की विलास सामग्री बनाने के लिए आंशिक रूप में निर्मित वस्तुओं का उपयोग करते थे। इस प्रकार आधुनिक निर्माण उद्योग को स्थापित करने के लिए विविध प्रकार का कच्चामाल, प्रचुर मात्रा में शक्ति, अत्यधिक पूंजी, बहुत बड़ी संख्या में कुशल श्रमिक और मशीनों तथा उपकरणों के स्वचालित नियंत्रकों की

आवश्यकता पड़ती है। सामान्यतः कोई भी बड़े पैमाने का उद्योग बिना अधिक परिश्रम और समय के स्थापित नहीं हो सकता। इसी कारण से उद्योग को विश्व के समस्त देशों के बीच दो वर्गों में बांटा गया है, जिसमें एक वर्ग के देश वस्तुओं को निर्मित करके बेचते हैं और दूसरे वर्ग के देश उन्हें खरीदते हैं।

औद्योगिक निवेश एवं उत्पादन

कच्चा माल, शक्ति, श्रम और पूंजी के लगाने पर ही उद्योग इच्छित वस्तुओं का निर्माण करते हैं। इन सभी कारकों को, जिन्हें उत्पादक अपने उद्योग में लगाता है, औद्योगिक निवेश कहलाते हैं। कुशल तथा अकुशल श्रमिक और 'विशाल' अथवा थोड़ी पूंजी सामान्य औद्योगिक निवेश हैं, जो सभी प्रकार के उद्योगों के स्थापित करने और उनके विकास में अति आवश्यक हैं। परन्तु प्रत्येक उद्योग का कच्चा माल अलग-अलग हो सकता है। उदाहरण के लिए कुछ उद्योग खानों से प्राप्त कच्चे माल पर आधारित होते हैं, तो कुछ उद्योगों को वनों, खेतों या समुद्र से कच्चे माल की जरूरत पड़ती है। औद्योगिक निवेश की प्रकृति और उसकी मात्रा के अनुसार ही मुख्यतः पता चलता है कि किसी उद्योग का उत्पादन और लाभ किस पैमाने का होगा।

किसी उद्योग द्वारा जो वस्तुएं बनकर निकलती हैं उन्हें उस उद्योग का **उत्पादन** कहते हैं। उद्योग में हर उत्पादक का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि वह इतना उत्पादन करे जिससे उसे सर्वाधिक लाभ मिले। अतः कोई भी उत्पादक, उस सीमा के बाहर उत्पादन नहीं करेगा, जिसमें उपान्त आमदनी उपान्त लागत के बराबर हो जाए। यदि वह ऐसा करता है तो उसकी कुल लागत उसकी कुल संप्राप्ति से अधिक हो जाएगी और उसे नुकसान होगा। किसी उद्योग में उत्पादन की गुणता, मात्रा या आकार और लागत कई भौतिक और सामाजिक कारणों पर निर्भर करती हैं। इनमें से प्रमुख कारक सस्ते कच्चे माल और शक्ति साधनों की उपलब्धता, कुशल एवं परिश्रमी श्रमिक, बाजार और यातायात की समुचित सुविधाएं हैं। आगे के अनुच्छेदों में उद्योगों के स्थानीकरण के विभिन्न कारकों पर विचार किया गया है।

उद्योगों के अवस्थिति-कारक

निर्माण उद्योगों की अवस्थिति में कई भौतिक एवं सामाजिक-आर्थिक कारक उत्तरदाई होते हैं। उदाहरण के लिए कच्चा माल, शक्ति, श्रम, पूंजी और बाजार आदि उद्योगों के महत्वपूर्ण निर्धारक हैं। इन कारकों को आधुनिक उद्योगों के विकास के आधारभूत अवयव भी कह सकते हैं। इनमें से प्रत्येक का महत्व समय, उद्योग और प्रदेश अनुसार बदलता रहता है। अतः उनका महत्व क्रमानुसार नहीं दिया जा सकता। किसी उद्योग की अवस्थिति एवं वृद्धि में किसी एक ही कारक का हाथ नहीं होता, वरन् कई कारक मिल-जुलकर प्रभाव डालते हैं। उद्योग की अवस्थिति के लिए किसी आदर्श स्थल का ढूंढ़ना कोई आसान काम नहीं है। लेकिन ऐसा स्थान अवश्य ढूंढ़ा जा सकता है जिसके लाभ अधिक हों और हानियां कम।

कच्चा माल

अधिकतर उद्योगों में उत्पादन उसी स्थान पर किया जाता है जहां साधन प्रचुरता से मिलते हैं। अतः अधिकतर उद्योग खानों, वनों, कृषि क्षेत्रों और समुद्रों के निकट अवस्थित किए जाते हैं। जो उद्योग मछली, टिम्बर और खनिज-अयस्कों पर आधारित होते हैं, उनका सामान्यतया स्थानीकरण इन वस्तुओं के मिलने के स्थानों पर या उनके निकट किया जाता है। लेकिन कुछ उद्योग ऐसे हैं जो कच्चे माल के उत्पादन क्षेत्रों से बहुत दूर स्थापित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए यूनाइटेड किंगडम में कपास और जूट के उद्योग स्थापित किए गए, जो मिश्र और दक्षिण एशिया से कच्चा माल आयात करके चलते थे। इसके विपरीत लोहा-इस्पात के उद्योग विश्व के स्थानीय क्षेत्रों में ही स्थापित किए गए। साधारणतया लौह-अयस्क को कोयला क्षेत्रों में लाया जाता है जो किसी देश या प्रदेश के उद्योगों को प्रभावित करते हैं। उद्योगों को कहां स्थापित किया जाय इस बारे में निर्णय

पर पहुंचना बहुत ही महत्वपूर्ण है। अवस्थिति के बारे में निर्णय लेते समय कच्चे माल के भार और आयतन पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है। यह ज्यादा उचित होगा कि लौह-अयस्क का प्रगलन और वृक्ष के तने पर से अनावश्यक पदार्थों को निकालने का काम इन वस्तुओं के उत्पादन स्थल पर ही किया जाए और फिर इस कच्चे माल से अंतिम संसाधन द्वारा तैयार माल बनाने के लिए इसे दूरस्थ स्थानों को भेजा जाए। यदि ऐसा न करके लौह-अयस्क और वृक्षों को अपने असली रूप में दूरस्थित उद्योगों को भेजा जाता है तो इससे यातायात व्यय बहुत बढ़ जाएगा।

लोहा-इस्पात का निर्माण करने के लिए लौह-अयस्क और कोयला दोनों ही, विशाल मात्रा में चाहिए। इसके लिए तीन विकल्प हैं: (1) लौह-अयस्क को कोयला खानों पर ले जाना, (2) कोयला को लौह-अयस्क के क्षेत्र में ढोना अथवा (3) दोनों कोयला और लौह-अयस्क को बीच में स्थित किसी अनुकूल स्थान पर लाना। अधिकतर यह देखा गया है कि लौह-अयस्क में से आंशिक रूप में अनावश्यक पदार्थों और अशुद्धियों को निकालकर, उसे कोयला के क्षेत्रों में ले जाया जाता है। इसमें कुछ अपवाद भी हैं, जैसे फ्रांस के लोरेन औद्योगिक प्रदेश में कोयले की विशाल मात्रा दूर-दूर से ढोकर लाई जाती है। इसी प्रकार कानपुर और दिल्ली के औद्योगिक संकुलों के लिए बहुत दूर स्थित रानीगंज और झरिया की खानों से कोयला ढोया जाता है। वास्तव में जब कोई औद्योगिक संकुल कोयले के क्षेत्र में विकसित हो जाता है और वहां के कोयला भंडार समाप्त हो जाते हैं, तो ऐसी दशा में किसी दूसरे क्षेत्र से कोयले का ढोना ज्यादा उपयुक्त होगा, बजाय इसके कि सारे कारखाने को वहां से हटाकर किसी नए कोयला क्षेत्र पर स्थापित किया जाए। जब दोनों, कोयला और लौह-अयस्क को बीच में स्थित किसी स्थान तक ढोया जाता है, तो उस दशा में भी लौह-अयस्क को कोयले की अपेक्षा अधिक दूरी तय करनी पड़ती है। विश्व के अधिकांश कागज की लुगदी बनाने वाले कारखाने और आरा मिलें वनीय प्रदेशों में स्थित हैं। कनाडा की अधिकांश लुगदी की मिलें और आरा मिलें कोणधारी वनों में स्थित हैं। इसी प्रकार नार्वे, स्वीडन और सोवियत संघ में भी ये मिलें वनीय क्षेत्र में स्थित हैं।

खाद्य पदार्थ, जैसे फल, सब्जियां, मछली और दूध, जो कभी-कभी विशाल मात्रा में होते हैं परंतु जल्दी खराब होने वाले पदार्थ हैं, अत: इनका संसाधन इनके उत्पादन के क्षेत्रों में ही होता है। इसी प्रकार चीनी और मांस उद्योग भी कच्चे माल के उत्पादन क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं।

शक्ति

उद्योगों में वस्तुओं का निर्माण बिना शक्ति के प्रयोग के नहीं किया जा सकता। प्राचीन काल में शक्ति के प्रमुख स्रोत मनुष्य और जानवर होते थे। भाप-इंजन के प्रयोग ने निर्माण वस्तुओं की विशाल मात्रा और उनके विविध प्रकारों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। इसके अतिरिक्त इस शताब्दी के प्रारम्भ से निर्माण उद्योगों में हुई प्रगति और सुधार के परिणामस्वरूप अब उद्योगों को शक्ति-स्रोतों के निकट स्थापित करने की अनिवार्यता कम हो गई है।

अधिकतर उद्योगों, विशेषतया लौह-धातुकर्मी क्रियाओं में कोयला शक्ति के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक है। अत: अधिकांश भारी उद्योगों का संबंध मुख्यत: कोयला उत्पादन के क्षेत्रों से होता है। उदाहरण के लिए दामोदर घाटी का प्रमुख लोहा-इस्पात केंद्र जमशेदपुर है, जो रानीगंज और झरिया की कोयला खानों के बहुत निकट है। यूनाइटेड किंगडम में दक्षिण वेल्स, मिडलैंड, लंकाशयर और न्यूकासिल के औद्योगिक संकुलों की अवस्थिति कोयला-खानों के निकट है। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका का अपलेशियन—विशाल झीलों के औद्योगिक प्रदेश और सोवियत संघ के डोनबास व कुजबास औद्योगिक संकुल प्रधानतया कोयला उत्पादन के क्षेत्रों में स्थित हैं। शक्ति के अन्य स्रोत, जैसे पेट्रोलियम, जल-विद्युत, प्राकृतिक गैस और परमाणु ऊर्जा भी ऐसे कुछ उद्योगों की अवस्थिति को प्रभावित करते हैं जिन्हें कोक की आवश्यकता शक्ति के रूप में नहीं होती।

श्रम

आज के कम्प्यूटर, संसाधन एवं स्वचालित मशीनी युग में भी पर्याप्त मात्रा में अत्यन्त कुशल श्रमिकों की उपलब्धता निर्माण उद्योगों के स्थानीकरण में एक महत्वपूर्ण कारक है। विभिन्न उद्योगों में अलग-अलग कुशलता के श्रमिक चाहिए। उनमें से कुछ उद्योग जैसे, घड़ी निर्माण, हीरों की कटाई, इलेक्ट्रानिकी और वायुयान निर्माण में अत्यन्त कुशल श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे अति कुशल श्रमिकों के लिए बहुत ही अच्छा एवं विशेष प्रकार का प्रशिक्षण चाहिए। इसलिए वे संभवत: विशेष क्षेत्रों में ही मिलते हैं। बहुत से उद्योग, जैसे वस्त्र निर्माण, विद्युत-यंत्र निर्माण एवं रासायनिक उद्योगों को कुछ शाखाओं में अर्ध कुशल श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन अधिकांश श्रमिक ऐसे होते हैं जिनका मुख्य कार्य ऐसा होता है, जिसमें किसी विशेष कुशलता की आवश्यकता नहीं होती।

संसार के कुछ प्रदेशों के लोग कुछ विशेष प्रकार के निर्माण उद्योगों में प्रवीण होते हैं। उदाहरण के लिए स्विटजरलैंड के लोग बहुत ही सुंदर और टिकाऊ घड़ियां बनाते हैं, यूनाइटेड किंगडम में अत्यन्त विशिष्टता प्राप्त वस्त्रों का निर्माण होता है। जापान के लोग प्रकाशकीय एवं विद्युत यंत्र बनाने में बहुत कुशल है और संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूयार्क नगर में बहुत से व्यक्ति पुस्तकों के मुद्रण एवं प्रकाशन में अति कुशल हैं। इसके अतिरिक्त कुछ उद्योगों में जैसे भारत, बंगलादेश और चीन के पटसन, वस्त्र निर्माण और चाय-संसाधन उद्योग हैं—श्रमिकों की कुशलता की अपेक्षा उनका कम से कम मजदूरी पर मिलना अति महत्वपूर्ण कारक है।

बाजार

उद्योगों के स्थानीकरण में बाजार एक महत्वपूर्ण कारक है। किसी बड़े नगर या इसके निकट किसी उद्योग अथवा कम्पनी के स्थापित होने की अधिक संभावना होती है, क्योंकि वह नगर स्वयं उस उद्योग की निर्मित वस्तुओं का बहुत बड़ा बाजार होता है। साथ ही यदि उस नगर से चारों ओर यातायात एवं संचार की रेखाएं विकसित हैं तो देश का शेष भाग भी उन वस्तुओं के लिए एक विशाल बाजार बन जाता है। ऐसे उद्योग जिनमें शीघ्र खराब होने वाली वस्तुएं बनती हैं, जैसे दूध की वस्तुएं अथवा खाद्य पदार्थ आदि का निर्माण, वे बड़ी जनसंख्या वाले नगरों में स्थापित किए जाते हैं जहां उनकी बहुत मांग है। कुछ उद्योग अन्य उद्योगों के लिए विशेष प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करते हैं। मोटरकार निर्माण उद्योग के लिए कार के विभिन्न भागों और पुर्जों का निर्माण इसका एक उदाहरण है। मोटरकार उद्योग के लिए स्पेक्टोमीटर का निर्माण कार के कारखानों से दूर होना उचित नहीं है। जब तैयार माल बहुत भारी और अधिक जगह घेरने वाला होता है तो बाजार की निकटता और भी महत्वपूर्ण कारक बन जाती है। छोटी और हल्की वस्तुओं को दूर स्थित बाजारों में भी आसानी से भेजा जा सकता है। यदि स्विटजरलैंड के लोग यूरोप की अपेक्षा संयुक्त राज्य अमरीका और भारत में अपनी घड़ियां अधिक बेचते हैं तो क्या यह उचित नहीं होगा कि स्विटजरलैंड के कारखाने इन देशों को स्थानांतरित किए जाएं ? इसके प्रतिकूल यदि संयुक्त राज्य अमेरिका यूरोप के बाजारों के लिए मोटरकार का निर्माण करना चाहता है तो यह सर्वोत्तम होगा कि इस उद्योग के कारखाने यूरोप में स्थापित किए जाएं।

जिन बाजारों में विशेष प्रकार के निर्मित माल का अधिक मात्रा में उपभोग होता है, ऐसी वस्तुओं के निर्माण उद्योगों को बाजारों में या उनके निकट स्थापित करना अधिक उचित होगा। परंतु यह जरूरी नहीं है कि किसी नगर की घनी जनसंख्या स्वयं में एक बड़ा बाजार हो। उदाहरण के लिए मानसून-एशिया के बहुत से क्षेत्रों की जनसंख्या घनी है, परंतु वहां के अधिकांश लोग उद्योगों की बनी वस्तुओं को नहीं खरीद सकते। अत: ऐसे क्षेत्रों के लिए निर्माण उद्योगों द्वारा बड़ी सस्ती वस्तुएं बनाई जाती हैं, जो अधिकांश लोगों द्वारा खरीदी जा सकती हैं। इससे यह तथ्य भी आंशिक रूप में स्पष्ट हो जाता है कि अधिकतर विकासशील देशों में निर्माण उद्योगों की कमी क्यों है ?

अन्य कारक

औद्योगिक अवस्थिति के प्रमुख कारकों की व्याख्या ऊपर दी जा चुकी है। ये सभी कारक एक-दूसरे से संबंधित हैं और कोई भी कारक स्वतंत्र रूप से अपना प्रभाव नहीं डालता। किसी क्षेत्र में एक या कई कारखानों के होने के कारण वहां और भी नए कारखाने खुलने लगते हैं। इससे वहां कारखानों के एक गुच्छे जैसा प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक स्थिरता और बिना डर के पूंजी विनियोग भी ऐसे कारक हैं जो उद्योगों के विकास में सहायक हैं। किसी प्रदेश या देश में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण उद्योगपति वहां कारखाना खोलने या स्थापित करने से हिचकिचाते हैं। यदि किसी देश की सरकार वहां के उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर रही है तो कोई भी विदेशी कम्पनी अपना पैसा लगाकर वहां उद्योग स्थापित नहीं करेगी। उद्योगों पर टैक्स का भी प्रभाव पड़ता है। जिन देशों में उद्योगों पर लम्बे समय तक टैक्स माफ किए जाने तथा अन्य कई सुविधाएं दी जाती हैं, वहां नए-नए कारखाने विस्थापित करने की प्रेरणा मिलती है। कुछ क्षेत्रों में वातावरण की अनुकूल दशाएं उद्योगों की अवस्थिति को प्रभावित करती हैं। उदाहरणार्थ कैलीफोर्निया के हालीवुड में चलचित्र उद्योग के विकास का एक महत्वपूर्ण कारक यह है कि वहां बाह्य शूटिंग के लिए वर्ष के अधिकांश दिनों तक मेघ रहित आकाश अर्थात सूर्य का प्रकाश मिलता है और दृश्यभूमि बहुत ही सुंदर है। भारत में चलचित्र उद्योग के बम्बई में स्थानीकरण का भी मुख्य कारण अनुकूल वातावरण का होना है।

विश्व के बाजार

बाजार वह स्थान है जहां वस्तुओं का विनिमय करने के लिए बेचने और खरीदने वाले लोग एकत्रित होते हैं। यह एक सप्ताहिक खुला अस्थाई बाजार या पेंठ हो सकता है अथवा सूरत और बम्बई में कपास बाजार तथा कलकत्ता में पटसन बाजार जैसे अत्यन्त व्यवस्थित, संगठित बाजार हो सकता है। व्यापक रूप में बाजार का अर्थ एक ऐसे विशाल क्षेत्र से हो सकता है जिसमें पूरा विश्व समा सकता है।

उद्योग प्रायः बाजारों के निकट स्थापित किए जाते हैं। खाद्य पदार्थों से संबंधित अधिकांश उद्योग जैसे डबलरोटी, केक, पेस्ट्री, पका-पकाया मांस और सब्जियों आदि के उद्योग बाजारों के निकट स्थापित किए जाते हैं। इससे उनमें बने ताजे उत्पाद शीघ्रता से बेचे जाते हैं। बहुत-सी वस्तुएं लाने ले जाने में टूट जाती हैं, अतः वे भी उनके इस्तेमाल के क्षेत्रों में निर्माण की जाती हैं। इसके अतिरिक्त जिन उद्योगों के तैयार माल भारी और अधिक स्थान घेरने वाले होते हैं, वे भी बाजारों के निकट ही स्थापित किए जाते हैं, जिससे तैयार माल के यातायात का खर्च कम हो जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में यद्यपि प्रत्येक देश कच्चा माल और निर्मित वस्तुएं बेचने तथा खरीदने के लिए भाग लेता रहता है, फिर भी विश्व में ऐसे चार मुख्य अंतराष्ट्रीय बाजार हैं। इनके नाम, पश्चिमी यूरोप, उत्तर अमेरिका, दक्षिण एशिया और सोवियत संघ हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विश्व के इन चार प्रमुख बाजारों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। पश्चिमी यूरोप, उत्तर अमेरिका तथा सोवियत संघ के बाजारों से सामान्यतया मशीनें, इंजीनियरी का सामान, विद्युत उपकरण, ऊनी व सूती वस्त्र तथा गेहूं आदि वस्तुओं का निर्यात विकासशील देशों और घनी जनसंख्या वाले क्षेत्रों को किया जाता है। इसके दूसरी ओर एशिया और अफ्रीका के देश सामान्यतः खनिज अयस्क, वनीय और खेतों की वस्तुओं का निर्यात औद्योगिक और विकसित देशों को करते हैं। दक्षिण-पश्चिम एशिया के प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक देश, खाद्य पदार्थों, मशीनों, विद्युत उपकरणों एवं विलासिता की वस्तुओं के प्रमुख बाजार हैं।

संसार के प्रमुख निर्माण उद्योग

लोहा-इस्पात उद्योग

हमारी आधुनिक सभ्यता का अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार लोहा-इस्पात उद्योग है। आधुनिक मशीनों, उपकरणों एवं औजारों का मूल स्रोत लोहा-इस्पात है। रेल मार्ग, महामार्ग, जल मार्ग एवं वायु मार्ग तथा सड़कों, सुरंगों, कारखानों और पाईपलाइनों जैसी आधुनिक

यातायात और संचार सुविधाओं के बनाने में लोहा-इस्पात का बहुत बड़ा योगदान होता है।

लोहा-इस्पात उद्योग के बहुत लम्बे इतिहास में दो महत्वपूर्ण बातें उभरकर आती हैं। पहला लोहे की प्रगलन, परिष्करण, मोड़ने और उस पर काम करने की तकनीकी का विकास। दूसरा इन विकसित तकनीकों के परिणामस्वरूप लोहा-इस्पात उद्योग की अवस्थिति के संबंध में कारकों का समय-समय पर बदलना। चूंकि लोहा-इस्पात उद्योग अन्य महत्वपूर्ण उद्योगों का आधार है और जब इसके स्थानीकरण के कारक बदल जाते हैं तो उनके परिणामस्वरूप अन्य उद्योगों के विकसित होने या गिरने की संभावना हो जाती है।

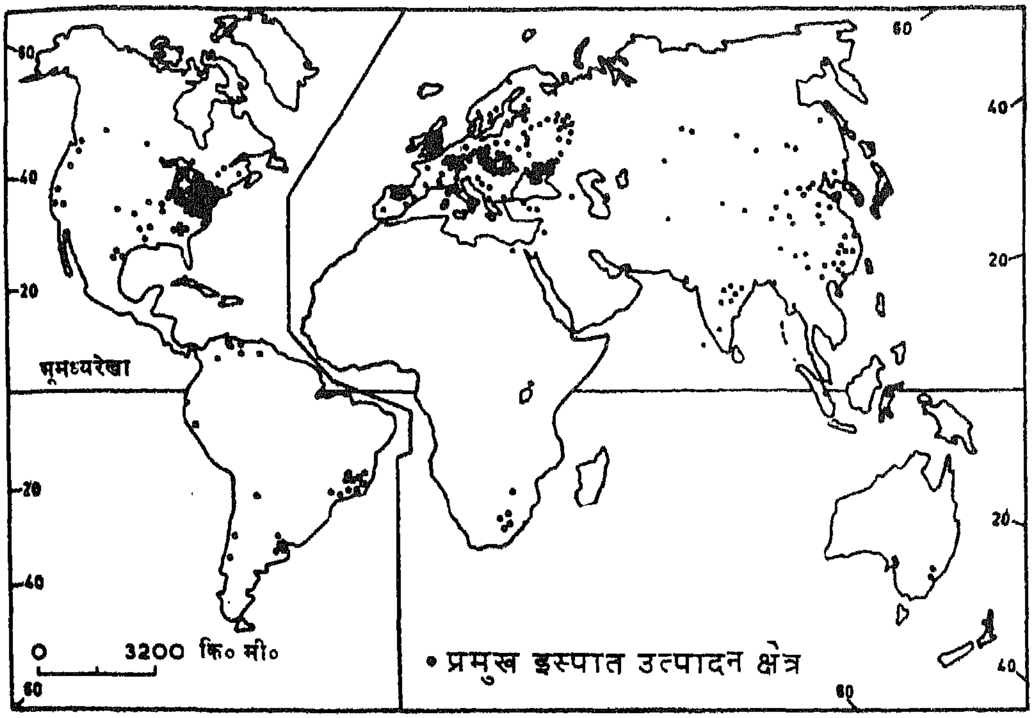
ईसा के जन्म से 400 वर्ष पूर्व लौह-अयस्क से लोहा निकालने का काम लकड़ी को जलाकर किया जाता था। इस काम के लिए बहुत बड़ी मात्रा में लकड़ी की आवश्यकता होती थी। गणना से यह हिसाब लगाया गया है कि लौह-अयस्क से पांच टन लोहा निकालने के लिए इतनी बड़ी मात्रा में लकड़ी का कोयला चाहिए जो 4 हेक्टेयर वन के वृक्षों से प्राप्त होता है। सोलहवीं शताब्दी में झोंका-भट्टी के विकास के परिणामस्वरूप पत्थर के कोयले का लोहे के प्रगलन में प्रयोग होने लगा और इस कारण लोहा-इस्पात उद्योग बड़ी तेजी से बढ़ा। कोयले द्वारा प्रगलन की क्रिया में लोहा अच्छी किस्म का बनने लगा और इसका प्रभाव यह हुआ कि लोहा-इस्पात उद्योग कोयला क्षेत्रों में स्थापित होने लगा। लोहा-इस्पात उद्योग के कोयले के क्षेत्रों में स्थापित होने का परिणाम यह हुआ कि कोयले की ढुलाई जो लोहे की ढुलाई से दुगनी होती थी समाप्त हो गई, और इससे ढुलाई का खर्च कम हो गया। इस तथ्य से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संसार में अधिकतर लोहा-इस्पात उद्योग के केन्द्र कोयला खानों के पास ही क्यों पाये जाते हैं। इसीलिए संसार के बड़े-बड़े कोयला उत्पादक देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम में लोहा-इस्पात उद्योग लौह-अयस्क को आयात करके कोयला क्षेत्रों के निकट स्थापित किए गए हैं। इसके दूसरी ओर स्वीडन, स्पेन, अलजीरिया और क्यूबा जैसे देश अपने उत्तम प्रकार के लौह-अयस्क का निर्यात कर देते हैं क्योंकि इन देशों में कोयले का उत्पादन बहुत कम है। उन्नीसवीं शताब्दी में लोहा-इस्पात उद्योग की तकनीकी में फिर से परिवर्तन आया और इसके कारण इस उद्योग के स्थानीकरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

अब धमन-भट्टियों में लोहा बनाने के लिए कोक का अनुपात पुराने कोयले की मात्रा की तुलना में बहुत घट गया। इसलिए अब कोयला क्षेत्र लोहा-इस्पात उद्योग को अपनी ओर कम खींच पाते हैं। लोहा-इस्पात उद्योग का वितरण स्वरूप इस समय भी संक्रमण काल से गुजर रहा है। आजकल अन्य कारकों के अतिरिक्त, इस्पात के लिए विकसित देशों में बाजार और लौह-अयस्क क्षेत्रों में आंशिक रूप से खिंचाव के कारण विश्व में लोहा-इस्पात उद्योग का वितरण स्वरूप अधिक परिक्षिप्त हो रहा है।

लोहा-इस्पात उद्योग का विश्व में संकेन्द्रण तीन प्रमुख प्रदेशों में मिलता है। ये प्रदेश हैं, उत्तर-पश्चिम यूरोप, उत्तर अमरीका और सोवियत संघ। इन प्रदेशों के अतिरिक्त भारत, चीन, जापान, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, कोलम्बिया और ब्राजील में भी लोहा इस्पात उद्योग के छोटे-छोटे क्षेत्र हैं। किसी देश में भारी उद्योग के न होने के प्रमुख कारण कोयला लौह-अयस्क और यातायात सुविधाओं की कमी है।

यूरोप में, यूनाइटेड किंगडम, जर्मनी, फ्रांस, इटली, नीदरलैंड, बेल्जियम और लुक्जमबर्ग लोहा-इस्पात उत्पादन के प्रमुख देश हैं। ये देश, स्वीडन, अल्जीरिया, स्पेन और फ्रांस के विशाल निक्षेपों से लौह-अयस्क मंगाते हैं और यूनाइटेड किंगडम, पोलेंड तथा जर्मनी से कोयले की विशाल मात्रा प्राप्त करते हैं। इन भारी उद्योगों के कच्चे माल और तैयार माल की ढुलाई अंत: स्थलीय जल यातायात, नहरों, सड़कों और रेलमार्गों के विकास से आसान हो गई है।

लोहा-इस्पात उद्योग का दूसरा महत्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्र उत्तर अमेरिका में है। यहां भारी उद्योगों का संकेन्द्रण पूर्वी तट से कुछ दूर विशाल झीलों के प्रदेश में है। इस्पात उद्योग के इस प्रदेश को मोसाबी श्रेणी के विशाल लौह-अयस्क निक्षेप, पैन्सिलवेनिया के कोयला निक्षेप और विशाल झीलों और नहरों द्वारा सस्ते जल यातायात की सुविधाएं उपलब्ध हैं (चित्र 18)।



चित्र 18 : विश्व में लोहा-इस्पात के प्रमुख क्षेत्र

सोवियत संघ में लोहा-इस्पात उद्योग के दो प्रमुख क्षेत्र हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र यूक्रेन का इस्पात उद्योग-प्रदेश है जो डोनवास बेसिन से कोयला और क्रीबोई रोग तथा कर्च प्रायद्वीप से लौह-अयस्क प्राप्त करता है। कोयला और लौह-अयस्क की सुविधा के अतिरिक्त इस क्षेत्र में संपूर्ण देश का सबसे बड़ा मैंगनीज निक्षेप है। लोहा-इस्पात का दूसरा प्रमुख प्रदेश यूराल के दोनों ढलानों पर है। कुज्बास और कारागांडा लोहा-इस्पात के अन्य दो प्रमुख क्षेत्र हैं (चित्र 18)।

चीन में लोहा-इस्पात उत्पादन के दो पुराने क्षेत्र मंचूरिया और शंघाई हैं। इनर मंगोलिया में पैंटो, पेकिंग के दक्षिण-पूर्व में तैयून और यांगटजी नदी पर वुहान लोहा-इस्पात के नये केन्द्र हैं (चित्र 18)। चीन का लोहा-इस्पात उद्योग मंचूरिया में लौह-अयस्क के भंडारों और शेंसी तथा शांसी के कोयला निक्षेपों पर निर्भर हैं।

जापान अपने लोहा-इस्पात उद्योग के लिए लौह-अयस्क का आयात भारत, फिलीपाइन्स, मलेशिया, आस्ट्रेलिया और ब्राजील से करता है तथा रद्दी लोहा सारे संसार से खरीदता है। यह कोयले का भी आयात चीन तथा कोरिया से करता है। जापान में लोहा-इस्पात का प्रमुख केन्द्र यूवाटा है जिसे जापान का पिट्टसबर्ग कहते हैं। कोबे, ओसाका और टोकियो यहां के अन्य प्रमुख केन्द्र हैं (चित्र 18)।

भारत में लौह-अयस्क, कोयला और चूना पत्थर के विशाल भंडार हैं। ये तीनों एक-दूसरे के बहुत पास मिलते हैं जिससे लोहा-इस्पात उद्योग की अवस्थिति को विशेष लाभ मिला है। यहां कोयले की विशाल पट्टी रानीगंज (पश्चिम बंगाल), झरिया, गिरीडीह, बोकारो, कर्नपुरा (बिहार), तत्ता पानी, सिंगरौली और कोरबा (मध्य प्रदेश) और तालचिर (उड़ीसा) में फैली है। इस

कोयला पट्टी के मयूरभंज, क्योंझर, बोनाई (उड़ीसा) और सिंहभूम (बिहार) क्षेत्रों में लौह-अयस्क के विशाल निक्षेप हैं। इन अनुकूल कारकों के कारण भारत का लोहा-इस्पात उद्योग इस क्षेत्र में आसानसोल, दुर्गापुर, जमशेदपुर, भिलाई और राउरकेला स्थानों पर केन्द्रित है। दक्षिण भारत का पुराना लोहा-इस्पात का केन्द्र कर्नाटक राज्य में भद्रावती में है (चित्र 18)।

रासायनिक उद्योग

रासायनिक उद्योग का विकास लगभग एक शताब्दी पूर्व ही हुआ है। परन्तु आधुनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रभाव दिनों दिन बढ रहा है। अयस्कों के प्रगलन तथा धातुओं के परिष्करण में खेतों के लिए उर्वरक, वस्त्र निर्माण उद्योग के लिए रंग, कागज, कागज की लुगदी, साबुन, कांच, चमड़ा, विस्फोटक, प्लास्टिक, कृत्रिम रबर और कृत्रिम रेशों आदि के बनाने में रसायनों का बड़ी मात्रा में प्रयोग होता है। रासायनिक उद्योग के उत्पादों का अनेक उद्योगों में प्रयोग होने के कारण यह बड़ी तेजी से बढ़ रहा है।

रासायनिक उद्योग का कच्चा माल विविध प्रकार की वस्तुएं होने के कारण, विभिन्न स्रोतों से प्राप्त किया जाता है। इनमें से प्रमुख हैं खनिज निक्षेप, जैसे नमक, पोटाश, नाइट्रेट, गंधक, कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, नाइट्रोजन, आक्सीजन, हाइड्रोजन, वनस्पति तेल, आलू और पेट्रोलियम उद्योग के कई उपोत्पाद।

प्रारम्भ में रासायनिक उद्योग में मुख्यत: भारी रासायनों, विशेषतया धोने का सोडा और गंधक के तेजाब का उत्पादन होता था। उनीसवीं शताब्दी के अंत तक इसमें विभिन्न प्रकार के कार्बनिक संश्लेषणों, विशेषतया रंगों का उत्पादन होने लगा। 1930 से इस उद्योग में कृत्रिम पदार्थों का निर्माण बड़े पैमाने पर होने लगा। इनमें से प्रमुख हैं अमोनिया, एमाइंस, रेशे, रबर, विरोजा और प्लास्टिक, जिनकी आजकल बहुत मांग है। आजकल रासायनिक उद्योग का विकास इतना अधिक हो गया है कि वह अब कई उद्योगों को कच्चा माल प्रदान करता है। रबर और सूती वस्त्र उद्योग में कृत्रिम रबर और कृत्रिम रेशों की बहुत अधिक मांग है। इस प्रकार थोड़े से समय में ही रासायनिक उद्योग ने विश्व में प्रमुख और आधारभूत उद्योगों का स्थान प्राप्त कर लिया है।

कुछ रासायनिक उद्योग कच्चे माल पर निर्भर हैं। अत: उनके कारखाने उन्हीं स्थानों पर स्थापित किए जाते हैं जहां कच्चा माल बहुतायत से मिलता है। उदाहरण के लिए जो रासायनिक उद्योग कोयले पर निर्भर हैं, वे कोयला खानों पर स्थापित किए जाते हैं, जैसे रुर, सार, पैन्सिलवेनिया और दामोदर घाटी के रासायनिक उद्योग। इसी प्रकार जो उद्योग सोडा या क्लोरीन प्रयोग करते हैं वे चट्टानी नमक के निक्षेपों पर अवस्थित हैं। इसके विपरीत कुछ रासायनिक उद्योग भौतिक वातावरण से पूर्णतया स्वतंत्र हैं। उदाहरण के लिए कुछ देशों में रासायनिक उद्योगों का विकास हुआ है यद्यपि वहां कोई भी कच्चा माल नहीं मिलता। बहुत से देशों में फास्फेट के निक्षेप न होते हुए भी वे विशाल मात्रा में सुपर फास्फेट का उत्पादन करते हैं। इसी प्रकार यूरोप में पाइराइट का सबसे बड़ा उत्पादक स्पेन है, परन्तु गंधक के तेजाब, जिसके बनाने में पाइराइट की विशाल मात्रा प्रयोग होती है, के प्रमुख उत्पादक जर्मनी, यूनाइटेड किंगडम और फ्रांस हैं।

रासायनिक उद्योग में अत्यन्त कुशल श्रमिकों की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि इसमें अधिकतर काम मशीनें स्वयं करती हैं। इसमें अति सूक्ष्म कार्य करने में बड़ी सतर्कता और नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है, अत: ये सारे कार्य स्वचालित मशीनों को सौंपे जाते हैं। इसमें श्रमिकों का कार्य कच्ची वस्तुओं तक ही सीमित रहता है। अत: रासायनिक उद्योग में बड़ी संख्या में अकुशल श्रमिक रखे जाते हैं। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में मेरठ नगर के पास मोदी नगर के रासायनिक उद्योगों में स्थानीय गांवों के किसानों और मजदूरों को बड़ी संख्या में काम पर रखा जाता है।

कच्चे माल के क्षेत्रों के अतिरिक्त रासायनिक उद्योग प्राय: उन्हीं देशों में विकसित हुआ है जहां औद्योगिक विकास एक लम्बे समय से हो रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहां अत्यन्त विकसित तकनीक और अनुभवी वैज्ञानिक उपलब्ध हैं। इसके अलावा रासायनिक उद्योग की तकनीकी आवश्यकताएं भौगोलिक कारकों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस उद्योग में नुकसान और लाभ

दोनों ही बड़े पैमाने पर होते हैं। अतः नुकसान के लिए विपुल मात्रा में पूंजी का मिलना भी आवश्यक है। इन्हीं सब कारणों से रासायनिक उद्योग वैज्ञानिकों, सूक्ष्म से सूक्ष्म श्रम विभाजन और बहुत ही शक्तिशाली व्यापारिक संगठनों पर निर्भर है।

रासायनिक उद्योग का प्रारम्भ हाल ही में हुआ है। अतः इसकी कार्यप्रणाली एवं तकनीकी में रोजाना ही कुछ न कुछ परिवर्तन आ रहे हैं। हाल ही में कृत्रिम रेशों का स्थान नाइलोन ने ले लिया है और इसका भी स्थान लेने के लिए अन्य कई प्रकार के कृत्रिम रेशे विकसित हो रहे हैं। प्लास्टिक की कुछ किस्मों की अवधि बहुत ही सीमित है। अतः इसकी नयी-नयी किस्में प्रतिदिन विकसित हो रही हैं और पुरानी समाप्त की जा रही हैं।

रासायनिक उद्योग में कई प्रकार की वस्तुएं बनाई जाती हैं। उन सभी वस्तुओं का वर्गीकरण निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है।

1. **भारी रासायन** : रासायनिक उद्योग जो मुख्यतः खनिज निक्षेपों और औद्योगिक उपोत्पादों पर निर्भर रहते हैं और उनकी अवस्थिति अधिकतर नमक या गंधक के विशाल निक्षेपों पर होती है, उन्हें भारी रसायन कहते हैं। भारी रसायन में गंधक का तेजाब, नमक का तेजाब, नाइट्रिक एसिड, कास्टिक सोडा, साबुन, कांच, कागज और सीमेन्ट का उत्पादन आता है।

2. **पेट्रोरासायन उद्योग** : यह उद्योग मुख्यतः कोयला, प्राकृतिक गैस, पेट्रोलियम आदि से प्राप्त रासायनिक पदार्थों पर निर्भर है। पेट्रोरासायन उद्योग संभवतः भारी रसायन उद्योग से भी अधिक महत्वपूर्ण है। विस्फोटक पदार्थ, उर्वरक, प्लास्टिक, कृत्रिम रेशे और कृत्रिम-रबर इस उद्योग के अंतर्गत आते हैं। इसमें घर में काम आने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुएं जैसे बर्तन, कृत्रिम आभूषण, बक्से, डिब्बे, कंघे, फर्श पर बिछाने के लिनोलियम, वस्त्र, रंग आदि बनाई जाती हैं। पेट्रोरासायन उद्योग संयुक्त राज्य अमरीका, जर्मन संघीय गणराज्य, यूनाइटेड किंगडम, सोवियत संघ, जापान, कनाडा और आस्ट्रेलिया में खूब विकसित है।

3. ***औषधित उद्योग*** : *रासायन उद्योग की इस शाखा* में औषधि एवं दवाइयां बनाई जाती हैं। पहले अधिकांश दवाइयां वनस्पति पदार्थों जैसे जड़ों, छालों, पत्तियों तथा झाड़ियों आदि से बनाई जाती थी, परन्तु अब दवाइयां मुख्यतया रसायनिक यौगिकों से बनाई जाती हैं।

इनके अतिरिक्त रासायनिक उद्योग में बहुत सी अन्य वस्तुएं बनाई जाती हैं। इनमें से प्रमुख हैं अपमार्जक (साफ करने वाला पदार्थ), परिमल (सुगन्ध वाले पदार्थ), प्रसाधन सामग्री, लोशन, शौच-वस्तुएं, विभिन्न प्रकार के सुगन्धित तेल, रंग, वार्निश, टर्पेनटाइन, मच्छर मारने की दवा, सत आदि। इन वस्तुओं के निर्माण उद्योग विश्व के सर्वाधिक औद्योगिक देशों में केन्द्रित हैं।

4. **वस्त्र निर्माण उद्योग** : वस्त्र निर्माण उद्योग के अंतर्गत केवल बुने कपड़े ही नहीं आते वरन यह शब्द सभी प्रकार के प्राकृतिक एवं कृत्रिम रेशों और धागों के लिए भी सामान्य रूप से प्रयोग किया जाता है। वस्त्र निर्माण संसार का सबसे पुराना उद्योग है और इसका विश्व में सबसे अधिक विस्तार है। यद्यपि संसार के बहुत से भागों में सूत कातने, कपड़ा बुनने और सिले सिलाए कपड़े तैयार करने का सारा काम मशीनों से होता है फिर भी विश्व की जनसंख्या का बहुत भाग अब भी सूत कातने और कपड़ा बुनने का काम अपने हाथों से करती हैं। कपास से बिनौले निकालने, सूत कातने और कपड़ा बुनने की मशीनों के आविष्कारों ने वस्त्र निर्माण उद्योग की उत्पादन पद्धति में आमूल परिवर्तन ला दिया है। इस उद्योग की आधुनिक मिलें सर्वप्रथम ब्रिटेन में स्थापित की गईं। बाद में यहां से वस्त्र निर्माण की सभी तकनीकें जैसे कातना, बुनना, रंगना, छपाई करना, चमक और पालिश करना आदि यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, जापान, भारत और विश्व के अन्य देशों में भी फैल गईं। वस्त्र निर्माण में किए गए अनेक अनुसंधानों और खोजों से नाइलोन, रिओन, डेक्रोन एवं टेट्रोन आदि का जन्म हुआ।

वस्त्र निर्माण उद्योग, जलवायु दशाओं और कच्चे माल की उपलब्धता के अनुसार कपास, ऊन, रेशम, लेनिन और पटसन का प्रयोग हजारों वर्षों से कर रहा है, *परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में वस्त्र निर्माण की मशीनों के* बन जाने के बाद यूरोप और उत्तर अमेरिका इस उद्योग

के उत्पादन में अग्रणीय हो गए। ब्रिटेन में कपास के उत्पादन न होने और अपनी आवश्यकता से बहुत कम कच्चा ऊन मिलने पर भी यह देश वस्त्र निर्माण में सबसे आगे हो गया। विश्व के अन्य भागों में भी वस्त्र निर्माण उद्योग के यंत्रीकरण होने के परिणामस्वरूप ब्रिटेन अपना यह स्थान कायम न रख सका।

वस्त्र निर्माण उद्योग की अवस्थिति मुख्यत: शक्ति और श्रमिकों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। कच्चे माल के हल्के होने के कारण इसे आसानी से दूर-दूर तक ढोया जा सकता है अत: इस उद्योग की अवस्थिति के लिए कच्चा माल कोई महत्वपूर्ण कारक नहीं है। ब्रिटेन और जर्मनी के कोयला क्षेत्र, और उत्तरी-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान को बड़ी मात्रा में सस्ती जलविद्युत का मिलना, इस उद्योग की उन स्थानों पर अवस्थिति के प्रमुख कारक हैं। दक्षिणी संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान में सस्ते श्रमिकों का अधिक संख्या में मिलना भी अनुकूल कारक है। इसके दूसरी ओर भारत, पाकिस्तान और चीन में इस उद्योग के विकास के मुख्य अनुकूल कारक—कपास का प्रचुर मात्रा में उत्पादन होना, सस्ते मजदूरों का मिलना और विशाल बाजार का होना है। वस्त्र निर्माण उद्योग में कृत्रिम रेशों के प्रयोग के कारण यह उद्योग पेट्रोरासायन उद्योग और तेल शोधन कारखानों के निकट स्थापित होने लगा है। आजकल विश्व में वस्त्र निर्माण उद्योग के प्रमुख देश संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, यूरोप के अन्य देश, सोवियत संघ, चीन, भारत, जापान, पाकिस्तान, बंगलादेश और ब्राजील हैं।

भारतीय सूती वस्त्र उद्योग का सबसे पुराना केन्द्र बम्बई है। यहां की कोष्ण आर्द्र जलवायु, विदेशों से कोयला-मशीनें और बड़े रेशे की कपास के आयात करने के लिए सर्वश्रेष्ठ पत्तन का होना, पास में महाराष्ट्र और गुजरात के कपास क्षेत्रों से आसानी से कपास लाने की सुविधा, पास के राज्यों में सस्ते और कुशल मजदूरों का अधिक संख्या में मिलना और भारत में विशाल बाजार का उपलब्ध होना आदि ऐसे अनुकूल कारक हैं जिनके कारण बम्बई में यह उद्योग विकसित हुआ। बम्बई के निकट जल-विद्युत के विकास ने इस उद्योग के विकास को और भी मदद दी।

सूती वस्त्र उद्योग का दूसरा प्रमुख केन्द्र अहमदाबाद है। यह केंद्र भारत के प्रमुख कपास उत्पादन प्रदेश के मध्य में स्थित है। यातायात साधनों और विद्युत के विकास के परिणामस्वरूप सूती वस्त्र उद्योग की मिलें भारत के लगभग सभी बड़े राज्यों में विस्थापित हैं और इस समय महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, दिल्ली, और तमिलनाडु सूती वस्त्र उद्योग के प्रमुख राज्य हैं। पंजाब, कर्नाटक, राजस्थान, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, केरल और पांडिचेरी में भी सूती कपड़े की मिलें हैं। ऊनी वस्त्र उद्योग के प्रमुख राज्य कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, आसाम, मध्य प्रदेश, जम्मू और कश्मीर एवं बिहार हैं। रियोन का उत्पादन बम्बई, अहमदाबाद, सूरत, कलकत्ता, ग्वालियर, अमृतसर और मोदीनगर में होता है। जूट वस्त्रों का निर्माण मुख्यत: पश्चिम बंगाल में हुगली नदी के किनारों पर स्थित जूट मिलों में होता है।

निर्माण उद्योगों के प्रकार

श्रमिकों की संख्या, कच्चा माल, तैयार माल की प्रकृति और प्रबन्ध एवं संगठन की जटिलता के आधार पर निर्माण उद्योगों को कुटीर उद्योग, छोटे पैमाने के उद्योग और बड़े पैमाने के उद्योगों में बांटा जाता है।

कुटीर उद्योग

कुटीर उद्योग में वस्तुओं का निर्माण स्थानीय कच्चे माल के प्रयोग द्वारा घरों में हाथों से किया जाता है। इस उद्योग में सारा काम परिवार के सदस्य करते हैं और निर्मित वस्तुओं का उपयोग परिवार के सदस्यों द्वारा किया जाता है या उन्हें स्थानीय बाजारों में बेचा जाता है। इस प्रकार का उद्योग यातायात और पूंजी जैसे कारकों से बिलकुल प्रभावित नहीं होता।

यूरोप और उत्तर अमेरिका के विकसित देशों से वास्तविक कुटीर उद्योग अब बिलकुल विलुप्त हो गए हैं। एशिया में यह अब भी अत्यत महत्वपूर्ण उद्योग है। एशिया के देशों में कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित प्रमुख वस्तुएं खाद्य पदार्थ, कपड़े, दरियां, चटाइयां, मछली, पकड़ने के

जाल, टोप, नावों के पाल, सूत, रेशम, लेम्प, पटसन, लकड़ी, रद्दी-कागज और पत्तियों के बने विभिन्न प्रकार के थैले या सामान रखने की वस्तुएं, चर्मशोधक पदार्थ, जूते-चप्पल, औजार, चीनी और मिट्टी के बर्तन, रस्सी, ईंटें तथा सोना-चांदी, कीमती पत्थर, हाथी दांत और कांसे के आभूषण हैं। कुटीर उद्योग का सबसे अधिक लाभ यह है कि लोग इसमें काम बुआई और फसल की कटाई के बाद बचे फुर्सत के समय में कर सकते हैं। कुटीर उद्योग किसानों को खाली समय में काम करने का अवसर देते हैं।

छोटे पैमाने के उद्योग

कुटीर उद्योग का स्वाभाविक विस्तार ही छोटे पैमाने का उद्योग कहलाता है। कुशल शिल्पकारों के अलग-अलग संगठनों के बनने से छोटे पैमाने के उद्योगों का जन्म हुआ। पहले वे इनमें हाथों से काम करते थे परन्तु अब विद्युत की मदद से मशीनें चला कर वस्तुएं बनाई जाती हैं। छोटे पैमाने के उद्योगों में कम पूंजी और कम मशीनों की आवश्यकता होती है। इस उद्योग में कच्चा माल दूर स्थित प्रदेशों से लाकर प्रयोग किया जाता है और इसके तैयार माल की बिक्री भी दूर-दूर के बाजारों में की जाती है।

यूरोप में पवन और जल की शक्ति के विकास ने छोटे पैमाने के उद्योग के विकास और प्रसार में बड़ी मदद दी और बाद में औद्योगिक क्रान्ति द्वारा हुए विकास कार्यों ने इस उद्योग को आधुनिक निर्माण उद्योग का रूप दिया। एशिया के अधिकांश देशों विशेषतया भारत और जापान में छोटे पैमाने के उद्योग इन देशों के औद्योगिक विकास के अभिन्न अंग हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के साथ छोटे पैमाने के उद्योगों का अत्यधिक विकास और प्रसार होने लगा। जापान में लगभग सभी छोटे पैमाने के उद्योगों में मशीनें प्रयोग की जाती हैं और ये विद्युत की शक्ति से चलाई जाती हैं। जापान में छोटे पैमाने के कुल उद्योगों में से लगभग 56% कारखानों में, तीन या इससे कम श्रमिक काम करते हैं और 20% में 4 से 9 श्रमिक काम करते हैं। इससे उस देश की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में छोटे पैमाने के उद्योगों के महत्वपूर्ण योगदान की जानकारी मिलती है। जापान में छोटे पैमाने के उद्योगों में खाद्य पदार्थ, वस्त्र, लकड़ी की वस्तुएं, खिलौने, चीनी के के बर्तन, धातुओं के उत्पाद, विद्युत उपकरण, प्रकाशकीय यंत्र, रेडियो, ट्रांजिस्टर, कैसट और यथार्थमापी यंत्र बनाए जाते हैं। हिन्देशिया में छोटे पैमाने के उद्योगों में चीनी के बर्तन, लकड़ी की वस्तुएं, फर्नीचर और धातुओं की वस्तुएं बनाई जाती है।

भारत में स्वतंत्रता के बाद छोटे पैमाने के उद्योगो का विकास बड़ी तेजी से हो रहा है। इन उद्योगों में खाद्य पदार्थ, लवण, मसाले, सिगार, बीड़ी, खंडसारी चीनी और गुड़ लट्ठों का आरा मिलों में काटना से लेकर तेलहनों से तेल निकालना, छुरी-कांटों का बनाना, जूते-चप्पल, चमड़े की अन्य वस्तुएं, तांबे और पीतल के बर्तन आदि बनते है। आधुनिक वस्त्र निर्माण उद्योग बहुत तेजी से बढ़ रहा है, लेकिन भारत के दो-तिहाई बुनकर छोटे पैमाने के उद्योगों में लगे हुए हैं। आगे आने वाले समय में छोटे पैमाने के उद्योग विश्व की घनी जनसंख्या के प्रदेशों में अधिकाधिक लोगों को काम दे सकेंगे।

बड़े पैमाने के उद्योग

बड़े पैमाने के उद्योगों में काम विशाल मशीनों के द्वारा अत्यधिक मात्रा में उत्पादन होता है और इस प्रकार के उद्योग का विकास गत 200 वर्षों से हुआ है। विविध प्रकार का कच्चा माल, अत्यधिक मात्रा में विद्युत शक्ति या ईंधन, प्रचुर मात्रा में पूंजी, बहुसंख्यक कुशल श्रमिक, उच्च गुणवत्ता वाली अत्यधिक मात्रा में मानव-वस्तुओं का उत्पादन और अति जटिल प्रबन्ध, बड़े पैमाने के उद्योगों की विशेषताएं हैं। इस प्रकार के उद्योग सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिम यूरोप के देशों में प्रारम्भ किए गए लेकिन दूसरे विश्व युद्ध के बाद ये उद्योग अन्य औद्योगिक प्रदेशों में भी फैल गए। भारत में बड़े पैमाने के उद्योगों के अंतर्गत लोहा-इस्पात, मशीनी औजार, रासायन, विद्युत उपस्कर, वस्त्र निर्माण एवं चीनी उद्योग आते हैं जो निजी व सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में हैं।

उद्योगों का स्वामित्व

औद्योगिक सभ्यता का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें विभिन्न व्यापारिक प्रतिष्ठानों के संगठन और उनकी कार्य प्रणाली को समझना अति आवश्यक है। संगठन एवं प्रबन्ध के आधार पर व्यापारिक प्रतिष्ठानों को तीन वर्गों—एकमात्र स्वामित्व, सहभागिता एवं निगम में वर्गीकृत किया जाता है।

एकमात्र स्वामित्व : सबसे साधारण व्यापारिक प्रतिष्ठान एकमात्र स्वामित्व वाला होता है। एकमात्र स्वामित्व के किसी प्रतिष्ठान को खोलने के लिए किसी कानूनी परिपत्र की आवश्यकता नही पड़ती। वास्तव में यह उसी समय से प्रारम्भ हो जाता है जब एक व्यक्ति व्यापारिक प्रतिष्ठान को स्वयं शुरू करने का निर्णय लेता है। एकमात्र स्वामित्व के उद्योग में सारे लाभ का हकदार और हानि के लिए उत्तरदायी स्वयं उसका मालिक होता है। इस प्रकार एकमात्र स्वामित्व के कारखाने या उद्योग में मालिक के अधिकार एवं उत्तरदायित्व असीम होते हैं।

सहभागिता स्वामित्व : जब दो या अधिक व्यक्ति मिलकर किसी व्यापारिक प्रतिष्ठान को चलाते हैं तो वह सहभागिता स्वामित्व का उद्यम कहलाता है। इसमें प्रत्येक भागीदार द्वारा लगाई पूंजी और लाभ में उसका हिस्सा अलग-अलग हो सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि सहभागियों ने उद्यम प्रारम्भ करते समय, उद्योग के लाभ और हानि में अपना-अपना भाग और उत्तरदायित्व आपस में मिलकर तय कर लिया है।

ऐसे प्रतिष्ठान में सारे लाभांश और हानि सहभागियों के होते हैं। इसके अतिरिक्त कोई भी भागीदार चाहे वह प्रतिष्ठान में कितना भी नया हो या उसका भाग कितना भी कम हो, वह सहभागिता प्रतिष्ठान की सारी देय राशि के लिए बिना किसी सीमा के उत्तरदायी होता है। सहभागिता प्रतिष्ठानों द्वारा बड़े पैमानों पर व्यापार होता है।

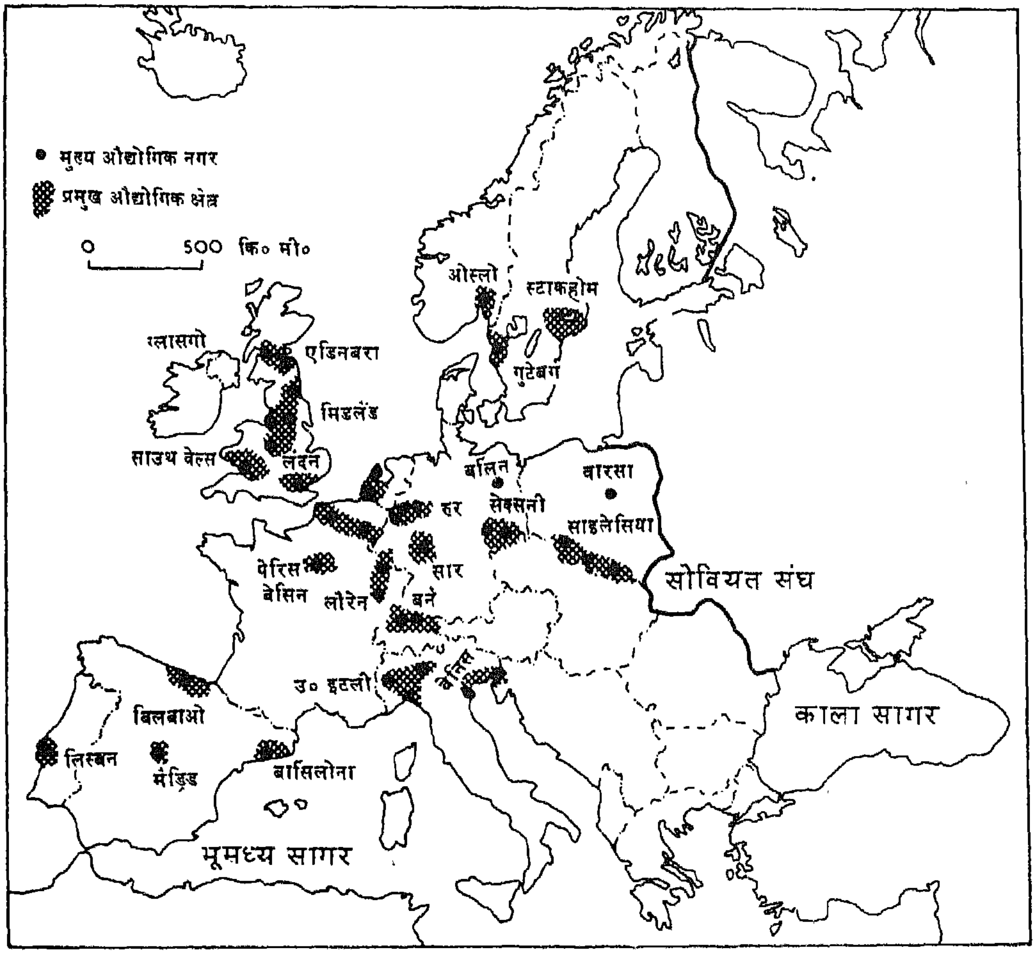
निगम : निगम कुछ लोगों का वह संगठन या संघ है जिसके द्वारा वे मिल-जुलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। निगम में आम जनता के लिए सामान्य शेयरों की कुछ संख्या निश्चित होती हैं। शेयरों की संख्या बहुत अधिक या कम हो सकती है और प्रत्येक शेयर निगम में आंशिक स्वामित्व का प्रतिनिधित्व करता है। निगम के सारे लाभ इसके शेयर-धारी के बीच बांटे जाते हैं। परन्तु शेयर-धारी निगम के ऊपर चढ़ी देनदारी के लिए उत्तरदाई नहीं होता। यदि किसी कारण निगम का दिवाला निकल जाता है तो शेयरधारी अपने शेयर की पूंजी ही खोएगा और इसके अलावा हानि या देनदारी में उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं होती। इसीलिए निगम के शेयरधारियों की सीमित जिम्मेदारी होती है। निगम द्वारा जटिल प्रबन्ध वाले बड़े-बड़े व्यापारिक या औद्योगिक प्रतिष्ठान चलाए जाते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र : जब प्रतिष्ठान की सारी पूंजी और उसकी सम्पत्ति का स्वामित्व सारे समुदाय का होता है, उसे सामाजिक सम्पत्ति या सार्वजनिक उद्यम कहा जाता है। इसके अंतर्गत राज्य अथवा स्थानीय प्रशासन के सारे प्रतिष्ठान जैसे सार्वजनिक या सरकारी भवन, स्कूल, अस्पताल, पुस्तकालय, राष्ट्रीय उद्योग आदि आते हैं। राउरकेला और भिलाई का लोहा-इस्पात उद्योग भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक प्रतिष्ठानों के उदाहरण हैं।

बहुराष्ट्रीय उद्यम : जब कोई उद्यम, कम्पनी, फर्म या उद्योग अन्य देशों के सहयोग से स्थापित किया जाता है तो उसे बहुराष्ट्रीय उद्यम कहते हैं। इस प्रकार के उद्यमों में विदेशों से पूंजी और तकनीकी सहायता मिलती है और कच्चा माल, श्रमिक तथा बाजार की सुविधा उस देश द्वारा दी जाती है जहां वह उद्योग स्थापित किया जाता है। भारत में संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिट्रेन, कनाडा आदि के सहयोग से कई बहुराष्ट्रीय औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित किए गए हैं। भारत भी इसी प्रकार मध्यपूर्व और अफ्रीका के विकासशील देशों में बहुराष्ट्रीय प्रतिष्ठानों के खोलने में सहयोग दे रहा है। उदाहरण के लिए कोका-कोला बहुराष्ट्रीय प्रतिष्ठान हैं। भारत में इसका उत्पादन अब बन्द कर दिया गया है।

औद्योगिक संकुल

जिन क्षेत्रों में उद्योगों के स्थापित करने के कई अनुकूल कारक मिलते हैं, वहां उद्योग गुच्छे के रूप में विकसित होने लगते हैं और हर नया कारखाना उसी क्षेत्र की ओर आकर्षित होता है। किसी क्षेत्र में बहुत से उद्योग क्यों विकसित हो गए, इसका उत्तर दे सकना आसान नहीं है। एक कारण तो यह हो सकता है कि वहां कच्चा माल कम मूल्य पर उपलब्ध हो। परन्तु इसके अलावा उद्योग की अवस्थिति के कई अन्य कारक भी हो सकते हैं जो स्पष्ट दिखाई नहीं देते। इसके लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचारना आवश्यक होता है। हो सकता है जब कारखानों ने एक प्रकार की शक्ति का परित्याग करके दूसरे प्रकार की शक्ति का प्रयोग करना शुरू किया हो तभी से कारखानों का गुच्छे के रूप में विकसित होना शुरू हो गया हो। संभवतः सोवियत संघ की भांति राष्ट्रीय योजना नीति एक निर्णायक कारक रहा हो जिसमें एक स्थान पर उद्योगों द्वारा वे वस्तुएं



चित्र 19 : यूरोप के प्रमुख औद्योगिक प्रदेश

बनाई जाती हों जो अन्य क्षेत्र या देशों से अपेक्षाकृत सस्ती या कम मूल्य पर मिल सकती हैं। सोवियत संघ ने 1930 के बाद अपने उद्योगों को जर्मनी के संभाव्य हमले से बचाने के लिए साइबेरिया और सुदूर पूर्व में स्थापित किया। इससे वे युद्ध के समय भी लगातार उत्पादन करते रहे, यद्यपि यह क्षेत्र बाजार और कच्चे माल के क्षेत्रों से बहुत दूर है।

अतः उद्योगों के गुच्छ-रूप में विकसित होने के कई और जटिल कारक हो सकते हैं। लेकिन विश्व में इस समय कुछ छोटे-छोटे औद्योगिक प्रदेश या संकुल हैं जो संसार का अधिकांश औद्योगिक उत्पादन प्रदान करते हैं। नीचे की पंक्तियों में संसार के कुछ प्रमुख औद्योगिक संकुलों का विवरण दिया जा रहा है।

यूरोप के औद्योगिक संकुल

यूरोप के प्रमुख औद्योगिक संकुल पश्चिम में ब्रिटेन के मिडलैंड से लेकर पूर्व में साइलीसिया तक फैले हैं। मिडलैंड का औद्योगिक संकुल वस्त्र निर्माण, इस्पात, धातु की प्लेटों, मोटरकार, मोटर साइकिल, वायुयान, होजरी, चमड़े के सामान आदि के निर्माण के लिए प्रसिद्ध है। स्काटलैंड का एडिनबरा और ग्लासगो क्षेत्र तथा दक्षिणी वेल्स क्षेत्र में लोहा-इस्पात, कोयले पर आधारित वस्तुएं, जलयान, खाद्य पदार्थ और चर्मशोधन वस्तुओं का निर्माण होता है। लन्दन में, स्थानीय मांग और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार होने के कारण विविध प्रकार की वस्तुएं बनाई जाती हैं। वहां इस्पात, मशीन, वस्त्र, रासायन और कृषि पर आधारित उद्योगों का भारी संकेन्द्रण है (चित्र 19)।

पेरिस में कोयले की कमी है। परन्तु यह यूरोप और फ्रांस का सबसे बड़ा बाजार है। अतः यहां प्रसाधन वस्तुओं के निर्माण हेतु अनेक उद्योग स्थापित किए गए हैं। पेरिस में आभूषण, सुगन्ध, शौच की वस्तुएं और फैशन एवं आमोद-प्रमोद की चीजें, मोटर कार, रासायन, कागज और मुद्रण की वस्तुएं बनाई जाती हैं।

फ्रांस, बेल्जियम, जर्मनी, दक्षिणी पोलैंड, रूर, सैकसोनी और साइलीसिया के कोयला क्षेत्रों में यूरोप का दूसरा महत्वपूर्ण संकुल है (चित्र 19)। इस क्षेत्र में कोयले के अतिरिक्त कई खनिज मिलते हैं। यहां यातायात की अच्छी सुविधा है और बहुत बड़ा बाजार है जहां लोगों की खरीदने की क्षमता काफी ऊंची है। रूर संकुल में इस्पात, रेल की पटरियां, इंजन, मोटरकार, वाहन, मशीनें, वस्त्र और रासायन बनाए जाते हैं। सेकसोनी संकुल में छपाई, मुद्रण एवं प्रकाशन, चीनी के बर्तन और वस्त्र आदि प्रमुख औद्योगिक उत्पाद हैं। साइलीसिया में मशीनें और विभिन्न प्रकार के रासायन बनाए जाते हैं।

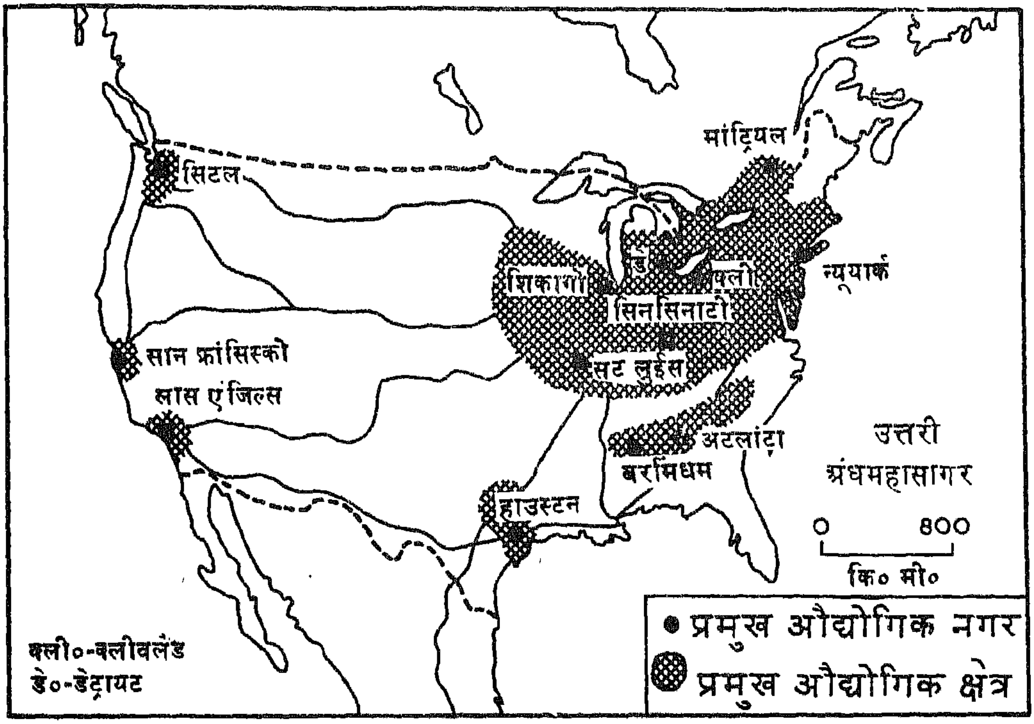
यूरोप के अन्य छोटे-छोटे औद्योगिक संकुल स्वीडन में स्टोकहोम के गिर्द हैं जो कागज, लकड़ी के उत्पाद, वस्त्र, जलयान और सूक्ष्म यंत्रों के लिए प्रसिद्ध है। ऐसे ही ये उत्तर-पूर्व स्पेन, लिओन (फ्रांस) और उत्तरी इटली में भी हैं।

उत्तर अमेरिका के औद्योगिक संकुल

उत्तर अमेरिका के औद्योगिक संकुल, जिनमें विविध प्रकार की वस्तुओं का निर्माण होता है उनका मुकाबला करने वाला विश्व में कोई नहीं है। विविध प्रकार की विशाल प्राकृतिक संपदा और अति विकसित यातायात के साधनों के कारण उत्तर अमेरिका के संकुल ने बड़ी द्रुतगति से सफलतापूर्वक विकास किया। अपार पूंजी, विशाल उत्पादन, विशेषीकरण और नानाधिकता इस विशाल औद्योगिक प्रदेश की विशेषताएं हैं।

अमेरिका के अधिकांश निर्माण उद्योग देश के उत्तरी-पूर्वी भाग में केंद्रित हैं और यह औद्योगिक प्रदेश मांट्रियल से सेंट लुइस और पूर्व में न्यूइंगलैंड से लेकर पश्चिम में मिनियासपोलिस तक फैला है (चित्र 20)। न्यूइंगलैंड संकुल में कठोर सामग्री, रसोई की वस्तुएं, वस्त्र आदि का निर्माण होता है। न्यूयार्क में मुद्रण एवं प्रकाशन, हल्की मशीनों, मशीनी औजार, वस्त्र निर्माण, धातु की वस्तुएं, विभिन्न प्रकार के पेट्रोलियम उत्पाद और खाद्य पदार्थों के संसाधन उद्योग प्रमुख हैं। पैन्सिलवेनिया औद्योगिक संकुल में इस्पात की मिलें, रासायनिक उद्योग, वस्त्र निर्माण के कारखानें और हलकी मशीनों के बनाने वाले उद्योग केंद्रित हैं।

इरी झील के दूसरी ओर सेंट लारेंस नदी के किनारे मांट्रियल-ओटावा औद्योगिक संकुल फैला है। इस क्षेत्र को



चित्र 20 : उत्तर अमेरिका के प्रमुख औद्योगिक प्रदेश

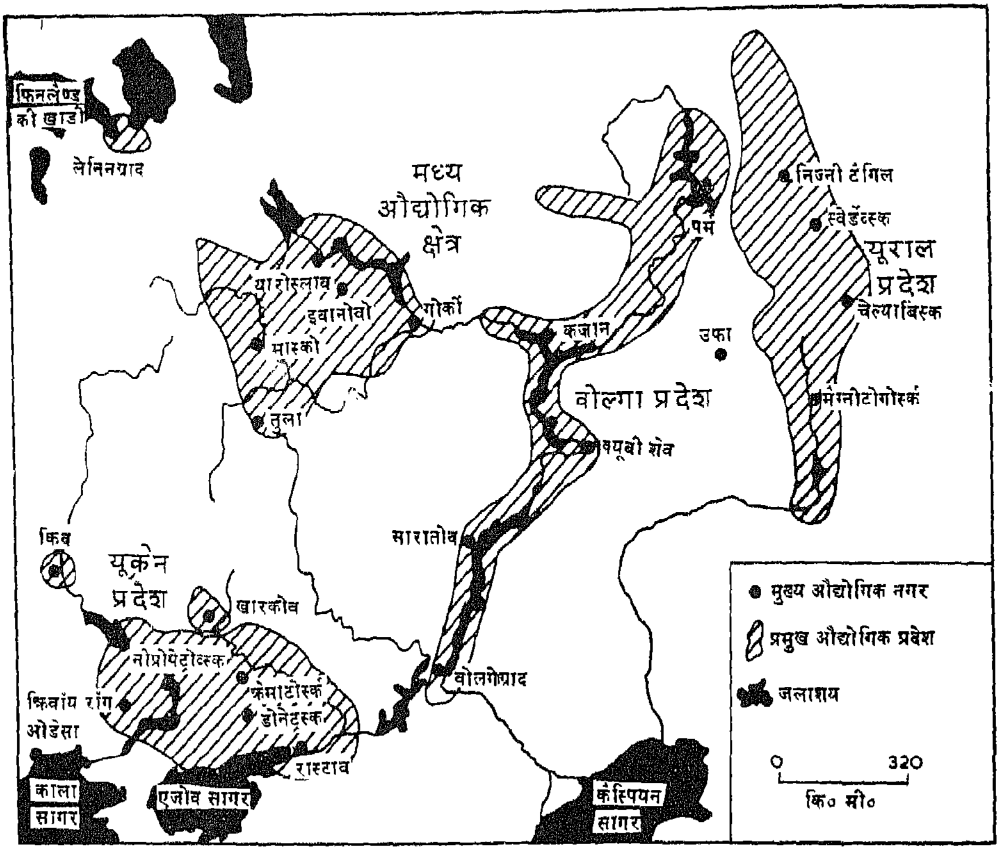
सस्ती जल-विद्युत अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध है, अतः इस संकुल में अलुमीनियम, चीनी शोधन, वस्त्र एवं विद्युत उपकरणों के निर्माण का विशेषीकरण हुआ है।

पिट्टसबर्ग, क्लीवलैंड, शिकागो और डेट्राइट के औद्योगिक संकुलों में लोहा-इस्पात, बुल्डोजर, हार्वेस्टर, सैनिक ट्रकें, टैंक, रडार, तोपें, कम्प्यूटर, रेफ्रीजिरेटर रिकार्ड प्लेयर, खिलौने, कार्नफ्लैक्स एवं अन्य खाद्य पदार्थों का निर्माण किया जाता है। दक्षिण में बर्मिघंम, अटलांटा, डलास एवं ह्यूस्टन के प्रमुख औद्योगिक संकुल हैं, जिनमें इस्पात का सामान, पेट्रो रासायन, वस्त्र और मांस की डिब्बा बंदी आदि वस्तुएं बनाई जाती हैं। पश्चिमी संयुक्त राज्य में कैलीफोर्निया राज्य के सैन फ्रांसिस्को, सीटल और लासएंजिल्स के औद्योगिक संकुलों में मदिरा, बीयर, खाद्य पदार्थों, फलों की डिब्बा-बंदी, उर्वरक और चलचित्र निर्माण के उद्योग हैं।

सोवियत संघ के औद्योगिक संकुल

सोवियत संघ के औद्योगिक संकुल संपूर्ण देश में फैले हुए हैं। यहां के प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र मास्को, यूक्रेन बोल्गा और यूराल हैं। ये सभी क्षेत्र यूरोपीय रूस में स्थित हैं (चित्र 21)।

मास्को औद्योगिक प्रदेश सोवियत संघ का सबसे पुराना क्षेत्र है। इसे प्रायः मध्य प्रदेश भी कहा जाता है। मास्को प्रदेश में प्राकृतिक संपदा अधिक नहीं है परंतु यह अच्छी-अच्छी सड़कों, रेलों और अंतः स्थलीय जलमार्गों द्वारा पास में स्थित माल के उत्पादन क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। इस संकुल के प्रमुख उद्योग सूती, ऊनी, फ्लैक्स और कृत्रिम रेशों के कपड़ों का निर्माण, धातुकर्म, पेट्रोरासायन, मशीन, कागज, कागज की लुगदी, छपाई, फर्नीचर, और खाद्य पदार्थों का निर्माण हैं। इस प्रदेश के प्रमुख



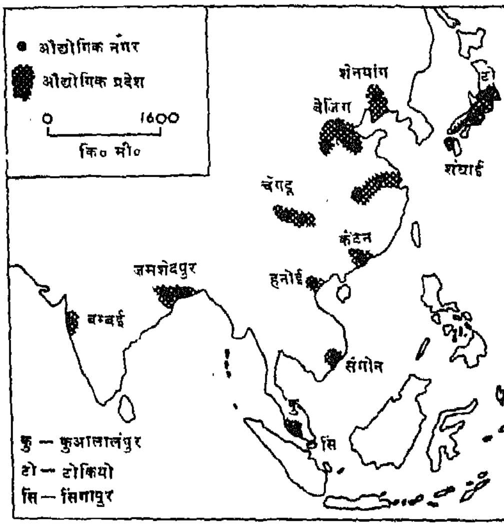
चित्र 21 : सोवियत संघ के प्रमुख औद्योगिक प्रदेश

औद्योगिक नगर मास्को, गोर्की, आइवेनोवो, यारोस्लाव, नोगिंस्क, कोवरोव, कोलोमना और तुला हैं (चित्र 21)।

यूक्रेन प्रदेश के डोनबास क्षेत्र में कोयले के विशाल निक्षेप हैं। यहां क्रीवोइ रोग में लौह-अयस्क और क्रीमिया के प्रायद्वीप में मैंगनीज प्रचुर मात्रा में मिलता है। इन अनुकूल कारकों के परिणामस्वरूप यूक्रेन का डोनबास क्षेत्र सोवियत संघ का अग्रणीय औद्योगिक जिला बन गया है। इस क्षेत्र के मुख्य-मुख्य उद्योग लोहा और इस्पात, धातुकर्म, भारी और कृषि मशीनें विद्युत उपकरण, रासायन, चीनी, वायुयान, सूक्ष्मदर्शी यंत्र और शल्य चकित्सा के यंत्रों के निर्माण से संबंधित हैं। सोवियत संघ के अन्य प्रमुख संकुल वोल्गा और यूराल की दो लम्बी-लम्बी पट्टियां हैं। दूसरे महायुद्ध में जर्मनी की फौजों ने मास्कों एवं यूक्रेन औद्योगिक क्षेत्रों का काफी विनाश किया। इस कारण युद्ध के बाद वोल्गा और यूराल जैसे अधिक सुरक्षित औद्योगिक क्षेत्रों का विकास किया गया। यूराल क्षेत्र में लोहा, तांबा, निकिल और क्रोमाइट जैसे धातु-अयस्को के विशाल निक्षेप हैं और यहां कोयला कारागंडा और कुजबास क्षेत्रों से आसानी से लाया जाया जाता है। वोल्गा और यूराल क्षेत्र के प्रमुख उद्योग लोहा-इस्पात, धातु की वस्तुएं, भारी मशीनें, रासायन, कृषि के यंत्र, वस्त्र और पेट्रोरासायन

से संबंधित हैं।

जापान में प्रमुख उद्योग उत्तरी-पूर्वी शिकोकू, क्यूशू और दक्षिणी-पूर्वी हांउशू के टोकियो, नागोया, ओसाका, हीरोशिमा, निताकूशु और नागासाकी नगरों में केंद्रित हैं। इन उद्योगों में धातु की वस्तुएं, पेट्रो रासायन, जलयान, मशीनें, वायुयान, मोटरकार, सूती, ऊनी, रेशमी और कृत्रिम रेशों के वस्त्र, खिलौने, घड़ियां और प्रसाधन



चित्र 22 : मानसून-एशिया के प्रमुख औद्योगिक प्रदेश

की वस्तुएं बनाई जाती हैं।

आस्ट्रेलिया के प्रमुख उद्योग सिडनी, मेलबोर्न, ब्रिसबेन, एडीलेड, कैनब्रा और पर्थ में हैं। ये डेरी के उत्पाद, ऊन, मांस की डिब्बा-बंदी, रंग और खाद्य पदार्थों के निर्माण में विशेषतया प्रसिद्ध हैं। दक्षिण अफ्रीका के कुछ क्षेत्रों में काफी औद्योगिक विकास हो रहा है। ट्रांसवाल, केपटाउन और डरबन दक्षिण अफ्रीका के प्रमुख औद्योगिक केंद्र हैं। दक्षिण अमेरिका के रियोडि जेनेरो-साओ पोलो औद्योगिक संकुल में भारी उद्योगों की विशेषता है। अर्जेन्टिना, यूरेगुए और चिली में भी औद्योगिक संकुल विकसित हो रहे हैं।

भारत की प्रमुख औद्योगिक पट्टी दक्षिण बिहार और पश्चिम बंगाल में स्थित है। इस क्षेत्र में कोयला, लौह-अयस्क, मैंगनीज, चूना पत्थर और अन्य खनिजों के विशाल निक्षेप हैं। इस क्षेत्र के प्रमुख औद्योगिक केंद्र जमशेदपुर और दुर्गापुर हैं जहां लोहा-इस्पात, रेल इंजन मशीनें, आदि बनाई जाती हैं।

जमशेदपुर के लोहा-इस्पात उद्योग के अतिरिक्त भारत में सूती वस्त्र उद्योग का संकेंद्रण बम्बई, अहमदाबाद और मद्रास में है। कलकत्ता में विभिन्न प्रकार के उद्योगों में पटसन, वस्त्र, मोटरकार, खाद्य पदार्थ, सूती-वस्त्र, रासायन और छपाई के उद्योग प्रमुख हैं। मद्रास, हैदराबाद, कानपुर और मेरठ में बड़ी द्रुत गति से औद्योगिक संकुलों का विकास हो रहा है।

अभ्यास

समीक्षात्मक प्रश्न

1. निर्माण उद्योगों से आप क्या समझते हैं ? यह आखेट, मत्स्य ग्रहण, खनन, लकड़ी काटना, पशुचारण और कृषि से किस प्रकार भिन्न है ?
2. उपयुक्त उदाहरण देकर उद्योगों की अवस्थिति के प्रमुख कारकों की व्याख्या करिए।

3. उपयुक्त उदाहरण देकर समझाइए कि किसी क्षेत्र में एक प्रकार के उद्योगों का संकेंद्रण क्यों होता है ?
4. विश्व के प्रमुख लोहा-इस्पात उद्योगों की अवस्थिति तटीय है, यह कथन कहां तक सत्य है।
5. पटसन का उद्योग मुख्यत: पश्चिम बंगाल और बंगला देश में ही क्यों केंद्रित है ?
6. निम्नलिखित में अंतर स्पष्ट करिए :
   (i) औद्योगिक निवेश और उत्पादन
   (ii) प्राकृतिक और कृत्रिम रेशा
   (iii) रासायन और पेट्रो रासायन
   (iv) एक मात्र और सहभागी स्वामित्व के उद्यम
   (v) व्यक्तिगत और सार्वजनिक क्षेत्र
   (vi) राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय उद्योग
   (vi) भारी उद्योग और कृषि-उद्योग
7. विश्व के कुछ प्रमुख औद्योगिक संकुल नीचे दिए जा रहे हैं।
   कच्चा माल, शक्ति साधनों और बाजार के संदर्भ में इन क्षेत्रों के औद्योगिक विकास की व्याख्या कीजिए :
   (i) मिडलैंड का औद्योगिक संकुल
   (ii) बृहत लंदन का औद्योगिक संकुल
   (iii) मास्को का औद्योगिक प्रदेश
   (iv) टोकियो औद्योगिक क्षेत्र
   (v) संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्तरी-पूर्वी औद्योगिक संकुल
   (vi) बिहार-बंगाल का औद्योगिक संकुल
8. निम्नलिखित उद्योग की अवस्थिति और विकास के लिए कौन-कौन से कारक उत्तरदाई हैं ?
   (i) लोहा-इस्पात उद्योग
   (ii) भारत का सूती वस्त्र उद्योग
   (iii) संयुक्त राज्य का रसायन उद्योग
   (iv) जापान का हल्का मशीनी उद्योग
   (v) सोवियत संघ का भारी उद्योग

ज्ञात कीजिए

(i) अपने पास-पड़ोस में स्थित किसी औद्योगिक संकुल का भ्रमण कीजिए और वहां संकुल के विकास के लिए उत्तरदाई कारकों को मालूम कीजिए।

(ii) औद्योगिक प्रतिष्ठानों में काम करने वाले श्रमिकों की किसी कलोनी का भ्रमण कीजिए और वहां के लोगों की जीवनचर्या एवं उनकी समस्याएँ ज्ञात कीजिए।

(iii) किसी रासायनिक उद्योग की फैक्ट्री का भ्रमण कीजिए और मालूम कीजिए कि वहां मशीनों और श्रमिकों का उद्योग में क्या-क्या अलग-अलग योगदान है।

मानचित्र कार्य

संसार के रूपरेखा मानचित्र में निम्नलिखित दर्शाइए :

(i) यूरोप के औद्योगिक संकुल

(ii) संयुक्त राज्य अमेरिका के औद्योगिक संकुल
(iii) सोवियत संघ के औद्योगिक संकुल
(iv) चीन और जापान के औद्योगिक संकुल
(v) भारत के औद्योगिक संकुल

अतिरिक्त अध्ययन

1. डेविस, डी० एच०, **दि अर्थ एंड मेन, ए ह्यूमन ज्योग्राफी,** दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1954
2. डि विल्जि, एच०, **मैन शेप्स दि अर्थ—ए टोपिकल ज्योग्राफी,** हिम्लटन, कैलोफोर्निया, 1974
3. जोन, ई०, **ह्यूमन ज्योग्राफी,** चाट्टो और विडंस, लंदन, 1972
4. लिओंग, जी० सी० और मोरगन, जी० सी०, **ह्यूमन एंड इकोनामिक ज्योग्राफी,** क्वालालम्पुर, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1973
5. परविलन, ए० वी०, **ह्यूमन ज्योग्राफी,** लोगमैन ग्रुप लिमिटिड, लंदन, 1971
6. सेमुएलसन, पी० ए०, **इकोनामिक्स—एन इन्ट्रोडक्ट्री एनालेसिस,** लंदन, 1964

अध्याय 8

तृतीयक व्यवसाय

तृतीयक उद्योगों के अंतर्गत सभी प्रकार की सेवाएं जैसे यातायात और संचार, वित्तीय अर्थात बैंकों द्वारा प्रदान की गई सेवाएं, मनोरंजन एवं सरकार द्वारा दी गई सेवाएं आती हैं। यातायात संकुल में पगडण्डी, कच्ची सड़क, पक्की सड़क राष्ट्रीय महामार्ग, रेलमार्ग, जलमार्ग, वायुमार्ग और पाइप लाइनें आती हैं। इसके अतिरिक्त टेलीफोन और टेलीग्राम एवं डाक सेवाएं, रेडियो और टेलीविजन संचार के अत्यन्त प्रभावी साधन हैं। पत्र पत्रिकाएं भी संचार के अंतर्गत आती हैं। वास्तव में तृतीयक उद्योगों द्वारा किसी वस्तु का उत्पादन नहीं होता परन्तु उनका सुव्यवस्थित एवं प्रभावी होना, प्राथमिक तथा द्वितीयक अथवा गौण व्यवसायों के विकास में मनुष्य के लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।

कृषि और उद्योगों की वृद्धि एवं उनके विकास में यातायात तथा संचार अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसंरचना है। इनके ही द्वारा ज्ञात होता है कि मानव ने विभिन्न वातावरण की दशाओं में किस स्तर तक विकास किया है। वास्तव में यातायाल और संचार साधनों के विकास का स्तर किसी देश की सभ्यता और संस्कृति का आंशिक रूप में मापदण्ड माना जाता है। किसी भी क्षेत्र की आर्थिक क्रियाओं और यातायात एवं संचार साधनों की प्रगति साथ-साथ चलती है। वस्तुओं के विशिष्ट उत्पादन और उनके विनिमय की जटिल क्रिया यातायात साधनों द्वारा ही संभव हो पाती है। सरकारी प्रतिष्ठानों, निजी व्यवसायिक उद्यमों और विभिन्न प्रकार के कारखानों में काम करने वाले असंख्य लोग अपने कर्तव्यों का पालन ठीक ढंग से तभी कर पाते हैं जब उन्हें, अच्छे से अच्छे यातायात के प्रभावी साधनों की सेवाएं उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार यातायात और संचार साधनों के प्रसार, विकास एवं समाकलन का हमारे दैनिक जीवन से गहरा संबंध है।

महामार्ग

प्रागैतिहासिक युग से मानव अपने विभिन्न कार्यों के लिए पगडण्डियों एवं कच्ची सड़कों का प्रयोग कर रहा है। प्रारम्भ में इन मार्गों का निर्माण महाद्वीपों के वितरण एवं उनके उच्चावच के अनुसार किया गया। भूमि का उच्चावच स्वयं मानव को कुछ ऐसे प्राकृतिक मार्ग प्रदान करता है जिनका इस्तेमाल मनुष्य आने-जाने और व्यापार के लिए अनादिकाल से करता आ रहा है। दर्रा, कोल,

नदी, घाटियां एवं मैदान प्रकृति द्वारा प्रदान किए कुछ ऐसे भौतिक लक्षण हैं जिनका उपयोग यातायात के लिए मानव सदियों से कर रहा है। जायरे और अमेजन नदियों की घाटियों में मनुष्य अब भी इन प्राकृतिक साधनों पर यातायात के लिए पूर्णतया निर्भर है। संस्कृति एवं सभ्यता का विकास होने के साथ मानव ने इन प्राकृतिक यातायात मार्गों को विकसित किया और उनकी अच्छी तरह से देखभाल की जिससे यातायात और संचार द्रुत गति से होने लगा। सड़क, वास्तव में मनुष्य के अथक परिश्रम का एक ऐसा परिणाम है जो उसके सभ्यता के विकास के स्तर का एक महत्वपूर्ण द्योतक है। मनुष्य द्वारा सड़कों के प्रसार एवं विकास का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि उनके द्वारा कृषि उत्पादों की बिक्री के लिए स्थायी बाजार उपलब्ध होने लगे और वस्तुओं की कीमतें बड़े-बड़े क्षेत्रों के अंतरालों पर भी एक सी हो गईं। परन्तु भारत में कम सड़कों वाले क्षेत्रों में आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में भी भारी अंतर पाया जाता है। सड़कों के विकास का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान यह हुआ कि उन्होंने औद्योगिक विकास को संभव बनाया जबकि पहले यातायात की कमी इसके लिये बाधा रही।

सामान ढोने तथा यात्रियों के आने-जाने के लिए सड़कें यातायात का महत्वपूर्ण साधन हैं। छोटी दूरी के लिए सड़कें अत्यन्त सस्ता मार्ग प्रदान करती हैं क्योंकि इनके द्वारा सामान को घर के द्वार तक पहुंचाया जा सकता है। सड़कों का दूसरा महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इसमें रेलमार्गों और जलमार्गों की भांति सामान के बार-बार उतारने और चढ़ाने की आवश्यकता नहीं होती।

सामान्यत: सड़कों का वितरण स्वरूप बहुत कुछ रेल मार्गों जैसा ही है। परन्तु रेलमार्गों की तुलना में सड़कों का जाल लगभग अधिकतर क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक घना है। इसके अतिरिक्त सड़क मार्गों का विस्तार रेलमार्गों की अपेक्षा अधिक है। सड़कें ऐसे-ऐसे बीहड़ क्षेत्रों में भी बनाई जा सकती हैं, जहां रेलमार्गों और जलमार्गों का बनाना असंभव होता है। विश्व में सड़कों का अत्यन्त विकसित जाल संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी कनाडा, पश्चिमी यूरोप, जापान, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, भारत, दक्षिण अफ्रीका और अर्जनटीना में है। यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से काफी विकसित हैं। इनमें उद्योगों का खूब विकास हुआ है। तकनीकी जानकारी में ये खूब आगे हैंऔर इनकी जनसंख्या अपेक्षाकृत घनी है। बहुत से विकासशील देशों में नई-नई सड़कें बनाई जा रही हैं और वर्तमान सड़कों को विकसित किया जा रहा है। एशिया और यूरोप में बहुत सी ऐसी सड़कें हैं, जो कई देशों में से होकर जाती हैं। इन सड़कों को अंतर्राष्ट्रीय महामार्ग कहा जाता है। अमरीका में पैन-अमेरिकन नामक मोटर-सड़क 24,000 किलोमीटर लम्बी है और यह एलास्का को दक्षिणी चिली से मिलाती है। पुरानी दुनियां में यदि विभिन्न देशों के बीच राजनैतिक संबंध सुधर जायें तो यूरोप को साइबेरिया, चीन, सिंगापुर और भारत से मिलाने वाली सड़क का निर्माण संभव हो सकता है।

भारत में आधे से अधिक पक्की सड़कें दक्षिण-भारत में हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इन सड़कों को बनाने में प्रायद्वीपीय पठार से पर्याप्त मात्रा में पत्थर मिलता है। भारत के प्रमुख महामार्ग बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली और बहुत से अन्य प्रमुख नगरों को मिलाते हैं। भारत के राष्ट्रीय महामार्ग; देश को पश्चिम में पाकिस्तान, उत्तर में तिब्बत तथा चीन और पूर्व में बंगलादेश और बर्मा को जोड़ते हैं। भारत में सड़कों का जाल अब भी घना नहीं है और देश के विभिन्न सांस्कृतिक एवं सभ्यता वाले स्थलों को मिलाने के लिए सड़कों का द्रुत गति से विकास करना अति आवश्यक है।

रेलमार्ग

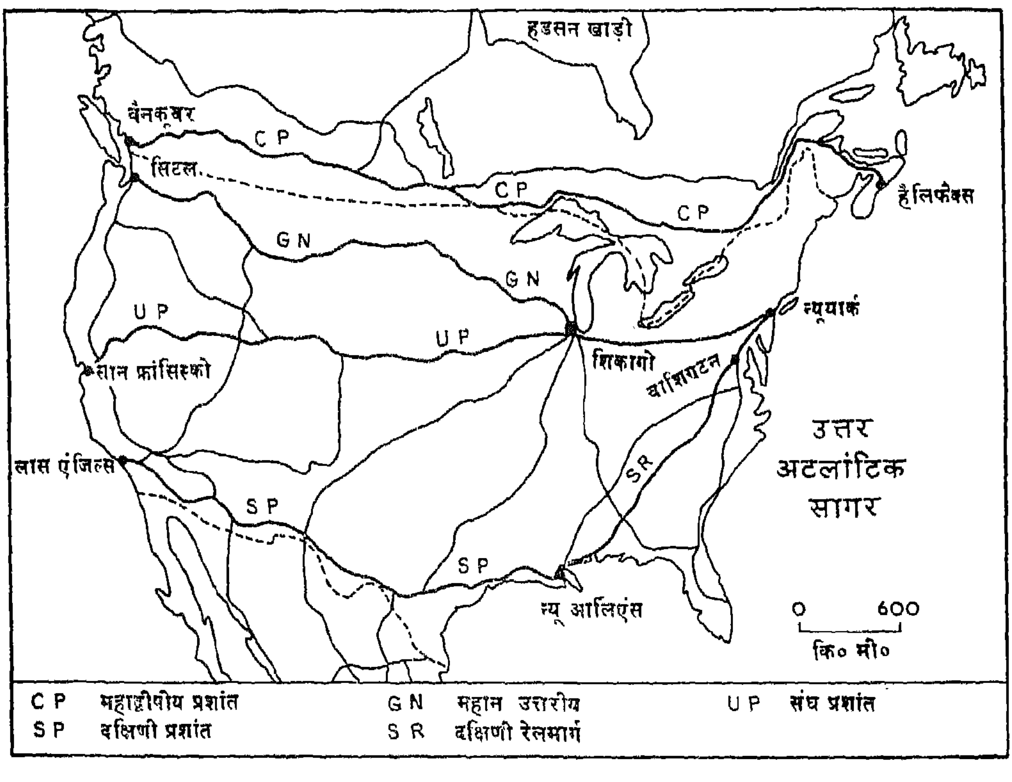
मानव सभ्यता के विकास में रेलमार्गों का प्रार्दुभाव एक महत्वपूर्ण चरण है। रेलमार्गों के विकास के परिणामस्वरूप अब मनुष्य ने भूगोल द्वारा प्रदान किए हुए अवरोधों को पार कर लिया है और उसने दूरी और समय पर विजय प्राप्त कर ली है। विश्व में सब से पहला रेलमार्ग उत्तरी-पूर्वी इंगलैंड में कोयले की खानों से न्यूकासिल तक कोयला ढोने के लिए बनाया गया। 1835 के बाद छोटी-छोटी दूरियों के बीच यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका में रेलमार्ग बनाए गए। सड़कों और नहरों के प्रयोग से उत्पन्न कई समस्याओं का निराकरण रेलमार्गों के बन जाने से हो गया। इसके अतिरिक्त बिजली से

चलनेवाली आधुनिक रेलों की गति इतनी तेज होती है कि उनमें सामान को ढोने और मनुष्य के आने-जाने में अधिक समय नहीं लगता। बिजली के प्रयोग ने रेलों की कार्य कुशलता को ही नहीं बढ़ाया वरन उनमें अब यात्रा करना अधिक आरामदायक हो गया। पहले जल्दी खराब होने वाली वस्तुओं को सड़क मार्गों और नहरों द्वारा बाजारों में बेचने के लिए भेजा जाता था परन्तु अब यह स्थान द्रुत गति से चलने वाली रेलों ने ले लिया है। लम्बी-लम्बी दूरियों को जोड़ने में रेलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन्होंने देश में एकता लाने में भी योगदान दिया है। इसके अतिरिक्त रेल मार्गों के विकास के परिणामस्वरूप देश के औद्योगिक विकास में बहुत अधिक सहायता मिली है, साथ ही देश में राजनैतिक स्थिरता लाने में रेलों का बहुत बड़ा हाथ है।

विश्व में रेलमार्गों के महत्वपूर्ण प्रतिरूप मानचित्र 23 और 24 में दिए गए हैं। रेलमार्गों के वितरण प्रतिरूपों के अध्ययन से विश्व में रेलमार्गों के तीन विशिष्ट जालों का बोध होता है: (1) गहन जाल, (2) अंतर्महाद्वीपीय जाल और (3) अंतःमहाद्वीपीय जाल।

गहन जाल : उत्तरी गोलार्द्ध में रेलमार्गों के घने जाल के दो महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। एक है यूरोप, विशेषतया पश्चिमी यूरोप में और दूसरा पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका में। इन क्षेत्रों में रेल मार्गों के जाल की गहनता औद्योगिक विकास के साथ बढ़ती जा रही है। सोवियत संघ में पश्चिमी सीमाओं को दूरस्थ पूर्वी सीमाओं से जोड़ने के लिए द्रुत गति से रेल मार्गों का विकास साईबेरिया में रहा है।

अंतर्महाद्वीपीय जाल : अंतर्महाद्वीपीय रेलमार्ग दूसरे



चित्र 23 : उत्तर अमेरिका के अंतर्महाद्वीपीय रेलमार्ग

प्रकार का रेल-जाल प्रदान करते हैं। यह रेलमार्ग भिन्न-भिन्न आर्थिक क्रियाओं को अपनाने वाले दूर स्थित स्थलों को जोड़ते हैं और एक महाद्वीप के दो विपरीत तटों पर स्थित स्थानों को मिलाकर देश की एकता को मजबूत करते हैं। ट्रान्स-साबेरियन रेलमार्ग और ट्रान्स-कनेडियन रेलमार्ग अंतर्महाद्वीपीय रेलमार्गों के अत्यन्त प्रसिद्ध उदाहरण हैं (चित्र 23)।

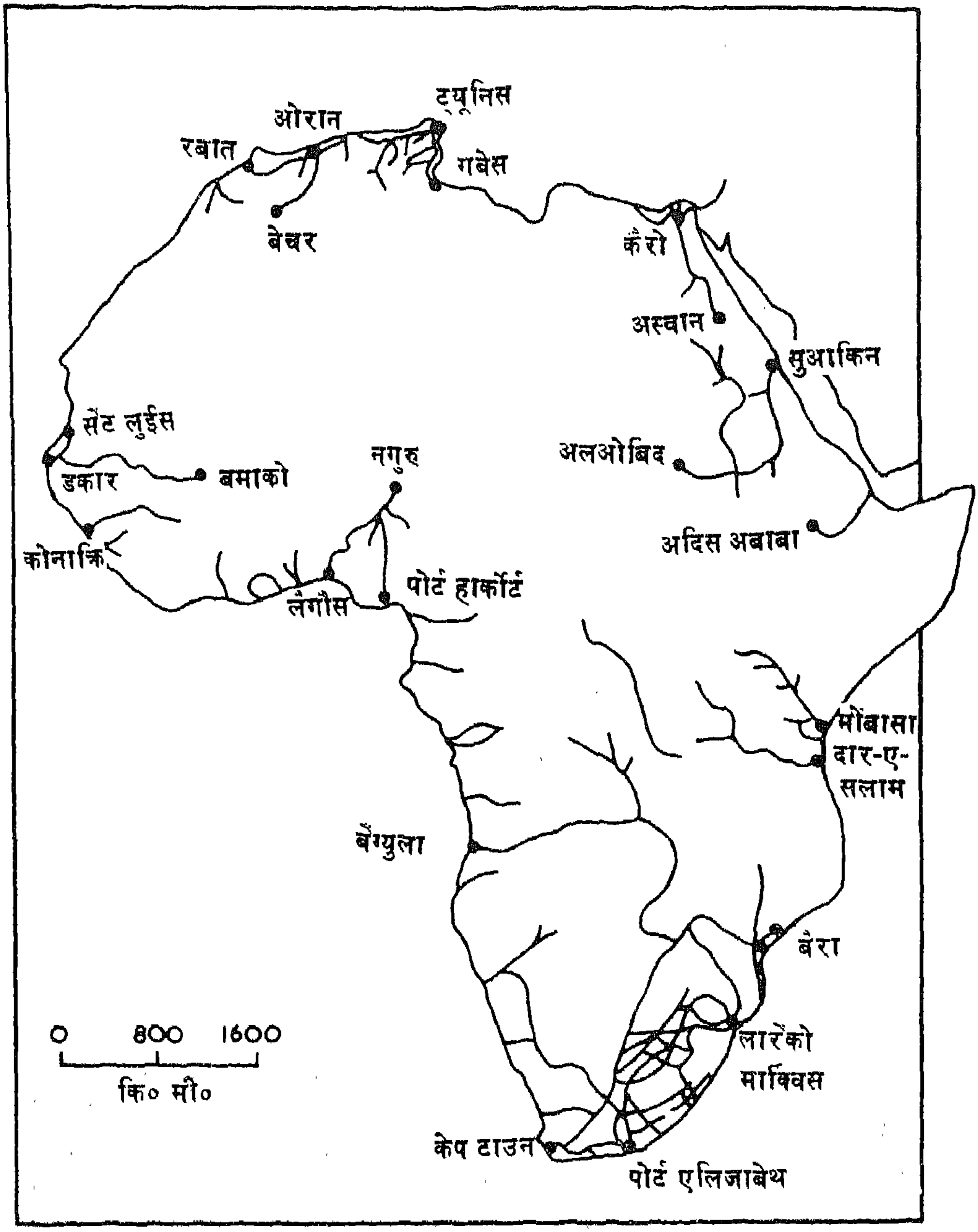
अंतःमहाद्वीपीय जाल : अन्तः महाद्वीपीय रेल-मार्ग महाद्वीपों के आंतरिक भाग से प्रारम्भ होते हैं और तटों की ओर जाते हैं। इस प्रकार के रेलमार्गों के जाल विरल जनसंख्या वाले प्रदेशों में मिलते हैं। विश्व के ऐसे भाग जहां अन्तःमहाद्वीपीय रेल मार्गों के जाल देखने को मिलते हैं वे भाग उष्ण कटिबंधीय आर्द्र वन, गर्म मरुस्थल एवं अत्यन्त शीत प्रदेशों में हैं। अफ्रीका महाद्वीप में इस प्रकार के जाल कई क्षेत्रों में देखने को मिलते हैं (चित्र 24)। यहां कई रेलवे लाईनें महाद्वीप के आंतरिक भागों से प्रारम्भ होकर बिना किसी अन्य रेल मार्ग से मिले सीधे तटों तक जाती हैं। इससे महाद्वीप की निम्न आर्थिक स्थिति का बोध होता है। महाद्वीप के आंतरिक भागों के कच्चे माल को रेल द्वारा सीधे तटों पर पहुंचाया जाता है और वहां से यह विश्व के विकसित औद्योगिक प्रदेशों को जलयानों द्वारा भेज दिये जाते हैं। रेल का इस प्रकार का जाल केवल दक्षिण अफ्रीका राज्य में नहीं मिलता क्योंकि यह देश औद्योगिक विकास में आगे है।

आस्ट्रेलिया महाद्वीप में रेल मार्गों का विकास अभी तक प्रारम्भिक अवस्था में है। यहां पूर्वी आस्ट्रेलिया में केवल एक रेलमार्ग है जो उत्तर से दक्षिण तक जाता है। इसी प्रकार दक्षिणी आस्ट्रेलिया में एक रेल मार्ग पूर्वी तट को पश्चिमी तट से मिलाता है। दक्षिण अमेरिका में अर्जेन-टीना ही एक ऐसा देश है, जहां देश के विशेषतः मध्य-भाग में रेल मार्ग का ऐसा गुच्छा है जो देश के आंतरिक भागों से प्रारम्भ होकर तटों पर स्थित बन्दरगाहों, विशेष-तया ब्यूनसआयर्स पर आकर मिलता है।

भारत में सन् 1854 में बम्बई और थाना के बीच सर्वप्रथम रेल मार्ग का निर्माण हुआ। इसी समय से देश में रेलमार्गों का बड़ी तेजी से विकास हो रहा है। भारत में रेल मार्गों की कुल लम्बाई 61,000 किलोमीटर है। रेलमार्ग भारत का सबसे महत्वपूर्ण यातायात का साधन है क्योंकि यह देश में ढोये गए कुल माल का लगभग 80% स्वयं ढोता है, और लगभग 70% यात्री केवल रेलों से ही सफर करते हैं। भारतीय रेलें भारत सरकार का सबसे महत्वपूर्ण प्रतिष्ठान हैं। अब भारतीय रेलों में बड़ी तेजी से विद्युतीयकरण हो रहा है। इससे उनकी कार्यकुशलता दिनों दिन बढ़ रही है और साथ ही साथ सामान ढोने और यात्रियों को लाने ले जाने में उनकी बढ़ती हुई मांग को अधिकाधिक पूरा किया जा रहा है। इन सभी विकास कार्यों के बावजूद भी भारतीय रेलों में विश्व के अन्य देशों की रेलों की तुलना में सबसे अधिक भीड़ होती है।

समुद्री एवं अन्तःस्थलीय जलमार्ग

मनुष्य प्राचीन काल से ही सामान को ढोने और यात्रियों को लाने ले जाने के लिए नदियों, झीलों, समुद्रों और नहरों को यातायात के रूप में प्रयोग कर रहा है। अब भी संसार के कुछ विशेष क्षेत्रों में, जैसे विषुवतीय जनों में, नदियां ही यातायात का एक मात्र साधन हैं। विश्व की कुछ विशिष्ट सभ्यताओं में आजकल जलमार्ग एक अत्यन्त लाभप्रद यातायात का साधन है क्योंकि इसके द्वारा भारी-भारी वस्तुएं कम भाड़े पर आसानी से ढोयी जा सकती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक अंतर्राष्ट्रीय यातायात का सबसे महत्वपूर्ण साधन समुद्री यातायात था और आंतरिक यातायात में भी नदियां और नहरें यातायात का महत्वपूर्ण साधन थीं। उदाहरणार्थ लन्दन, पेरिस, कलकत्ता और इलाहाबाद जैसे बड़े-बड़े बाजारों वाले नगरों का विकास जल यातायात के कारण ही हुआ। आज के आधुनिक युग में सड़कें और रेलें यातायात के सबसे प्रमुख साधन बन गई हैं लेकिन इस पर भी अन्तःस्थलीय जलमार्ग कृषीय और औद्योगिक प्रदेशों में बहुत अधिक आर्थिक महत्व बनाए हुए हैं। वे भारी तथा अधिक स्थान घेरने वाली वस्तुओं के ढोने का सबसे सस्ता साधन हैं। इसके अतिरिक्त सड़कों और रेल मार्गों की भांति जल मार्गों के रख रखाव पर कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता और न ही जल यातायात में विशेष मार्ग बनाने की आवश्यकता पड़ती है।



चित्र 24 : अफ्रीका महाद्वीप के रेलमार्ग

किसी क्षेत्र में आंतरिक जल यातायात का महत्व उसमें बहने वाली नदियों की संख्या से कहीं अधिक मुख्य नदियों की भौतिक दशाओं, उनमें पूरे वर्ष जल की उपलब्धता एवं नदियों के मुहानों की सामान्य स्थिति पर निर्भर करता है। इसी तथ्य के कारण उष्ण कटिबंधीय में बहने वाली बहुत सी नदियों जैसे, नाइजर, डार्लिंग, गोदावरी, कृष्णा आदि के बहुत बड़े भाग में केवल वर्षा ऋतु में ही यातायात हो पाता है। नदी में सुव्यवस्थित यातायात के लिए यह भी आवश्यक है कि उसका मार्ग जल प्रपातों, सोपानीपातों, क्षिप्रकाओं एवं महाखड्डों से होकर न जाता हो। इन्हीं असुविधाओं के कारण, कांगो, नील, जैम्बेजी आदि बारहमासी नदियों के पूरे मार्ग में यातायात संभव नहीं हो पाता। जो नदियां स्थल पर बह कर समुद्र में मिल जाती है और ज्वार वदमुख का निर्माण करती है, ऐसी नदियां से सबसे बड़ा लाभ यह है कि ज्वार के समय उनमें पानी की मात्रा बढ़ जाती है और बड़े-बड़े जहाज आसानी से नदी में दूर तक आ जा सकते हैं। उत्तरी पश्चिमी यूरोप की अधिकांश नदियों को ज्वार के पानी का यह लाभ यातायात के लिए मिलता रहता है।

संसार की प्रमुख नाव्य नदियां विषुवतीय, मानसूनी उत्तरी-पश्चिमी यूरोप और टुंड्रा जलवायु के क्षेत्र में सीमित हैं। विषुवतीय एवं मानसूनी प्रदेशों में मानव ने नदियों को प्राकृतिक अवस्था में प्रयोग करके यातायात का लाभ उठाया है। उसने यातायात के लिए नदियों को और अधिक विकसित करने का कुछ भी प्रयास नहीं किया। उष्ण कटिबंधीय और मानसूनी प्रदेशों की नदियों से मनुष्य ने लाभ उठाने के लिए प्रयत्न किए हैं। इन क्षेत्रों के विकासशील देशों में नदियों के कठिन प्रापातीय मार्गों पर रेल यातायात द्वारा नाव्य भागों को मिला दिया गया है। उदाहरणतयः, कांगो और नील नदियों के ऐसे मार्गों को रेलों द्वारा मिला दिया गया है।

उत्तरी गोलार्द्ध के शीतल शीतोष्ण क्षेत्रों में मनुष्य ने प्राचीन समय से ही अपने विशेष प्रयासों द्वारा नदियों को यातायात के लिए अधिकतम उपयोगी बनाया है। यूरोप की बहुत सी नाव्य नदियों को नहरों द्वारा एक दूसरे से मिलाकर महाद्वीप के एक बहुत बड़े क्षेत्र में आंतरिक जल यातायात का गहन जाल सा बना दिया गया है। इन जल मार्गो द्वारा सोलहवीं से अठाहरवीं सदी तक बहुत सी वस्तुएं जैसे, अनाज और खनिज अयस्क ढोये जाते थे और यात्री भी आते-जाते थे। परंतु इन जलमार्गो द्वारा अब यात्री तथा शीघ्र खराब होने वाली वस्तुएं इधर-उधर नहीं लाई जातीं।

इस समय फ्रांस, जर्मनी बैलजियम, नीदरलैंड और सोवियत संघ में नदियों और नहरों के विस्तृत जल मार्ग हैं। ये सामान के ढोने में रेलों और सड़कों से मुकाबला कर रहे हैं। उत्तर अमेरिका में सेंट लारेंस नदी और विशाल झीलें आंतरिक जल यातायात का प्रमुख साधन हैं। मिसीसिपी और इसकी सहायक नदियों में भी आंतरिक जल यातायात होता है।

विश्व की अन्य नाव्य नदियां अमेजन, यांगटिजिक्यांग, नील, सिंधु, ब्रह्मपुत्र और गंगा है, इनके कुछ भागों में ही यातायात हो पाता है। भारत में लगभग 100 वर्ष पूर्व सारा सामान नदियों द्वार ढोया जाता था और गंगा में कलकत्ता से हरिद्वार तक नावें चलती थीं। लेकिन अब वे बहुत थोड़ा ही ढोती हैं। सड़कों और रेलमार्गों का प्रचलन बढ़ जाने से और नदियों विशेषकर गंगा के जल का अधिक भाग सिंचाई के लिए प्रयुक्त होने से, नदी मार्गो का यातायात के लिए प्रयोग घट गया है।

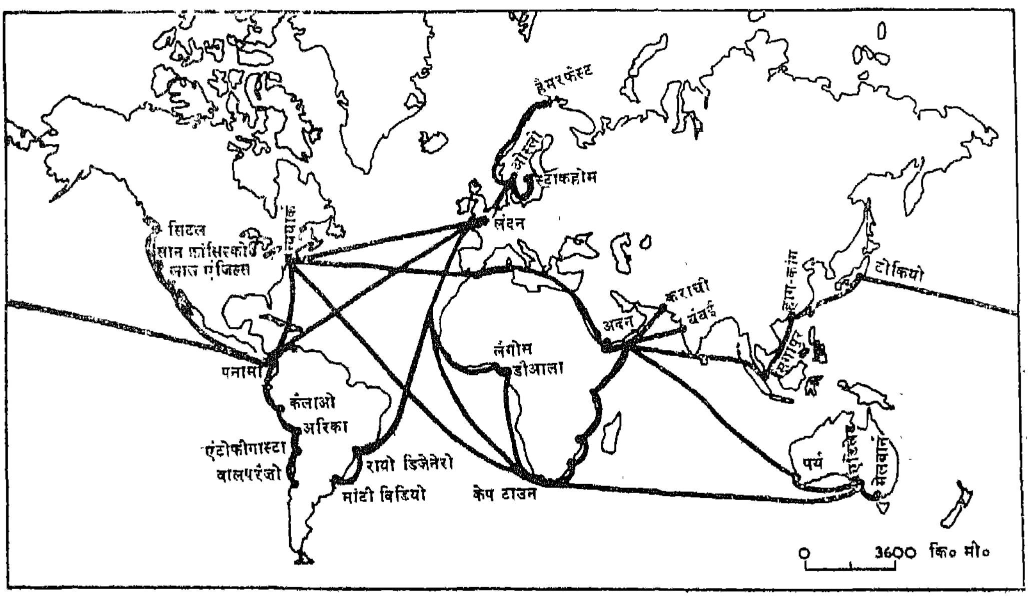
महासागर जो पहले विश्व के विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों को अलग करने का काम करते थे, वे अब उन्हें मिलाने वाली महत्वपूर्ण कड़ी समझे जाते हैं। समुद्री यातायात परिवहन का सबसे सस्ता साधन है। महासागर प्रकृति द्वारा प्रदान किए गए ऐसे उपहार हैं जिनको यातायात के रूप में प्रयोग करने पर कोई खर्च नहीं करना पड़ता और न ही सड़कों, रेलों या नहरों की भांति उनका रख-रखाव करना पड़ता है। प्राचीन काल में जब मनुष्य ने पालदार जहाजों का निर्माण किया तो समुद्री यातायात का महत्व बढ़ने लगा। मिश्र, यूनान और रोम के लोगों ने इन जहाजों द्वारा सामान को विभिन्न देशों में भेजकर व्यापार को खूब बढ़ाया। अरबों और भारतीयों ने भी इन जहाजों द्वारा दक्षिणी तथा दक्षिण-पूर्वी विभिन्न देशों से व्यापार किया। अब नये प्रकार के जहाज प्रयोग में

आ रहे हैं जिनके इंजन कोयला, पेट्रोलियम या परमाणु ईंधन से प्राप्त शक्ति द्वारा चलते हैं। इन आधुनिक जलयानों ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को ही नहीं बढ़ाया वरन विभिन्न देशों की सभ्यता और संस्कृति को एक दूसरे के निकट लाने में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप अब इतने बड़े-बड़े जहाज बनाए जाते हैं जिनसे अत्याधिक यात्रा में सामान का ढोना और अधिसंख्य लोगों द्वारा यात्रा करना संभव हो सका है। आज का एक आधुनिक विशाल जलयान एक अच्छा खासा तैरता हुआ शहर के समान दिखाई पड़ता है। जलयानों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे यातायात के अन्य साधनों की तुलना में कही अधिक मात्रा में सामान ढोते हैं और लम्बी-लम्बी दूरियों तक सामान ढोने का इनका भाड़ा सबसे कम है। जलयानों में ठंडे गोदामों के बन जाने से मांस, फल, मछली, सब्जी और दूध के सामान के व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई है। बड़े-बड़े टैंकर वाले जहाज पेट्रोलियम की विशाल मात्रा ढोते हैं। आधुनिक यात्री-जहाज और माल वाहक जहाज शक्तिशाली इंजनों द्वारा चलाए जाते है, और उनमें रडार बे-तार के तार और अन्य कई संचार संबंधी उपकरण लगे होते हैं। इनसे वे तूफान के समय भी अबाध गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते चले जाते हैं और रेलों की भांति निश्चित समय पर पत्तनों पर पहुंचते और छूटते हैं।

1. **उत्तरी अटलांटिक मार्ग :** उत्तरी अटलांटिक महासागर के दोनों किनारों पर घनी जनसंख्या के और विविध प्रकार के उद्योगों में विकसित प्रदेश स्थित हैं। इस मार्ग का अंत यूरोप में राटर्डम, एंटवर्थ, लंदन, ग्लासगो, लिवरपूल, हेमवर्ग, स्टोकहोम और ओसलो पत्तनों पर होता है। इन पत्तनों से उत्तर अटलांटिक के दूसरी ओर के देशों, विशेषतया संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा को विशाल मात्रा में औद्योगिक उत्पाद जैसे वस्त्र, रासायन, मशीनें, इस्पात, उर्वरक, शराब आदि निर्यात किए जाते हैं।

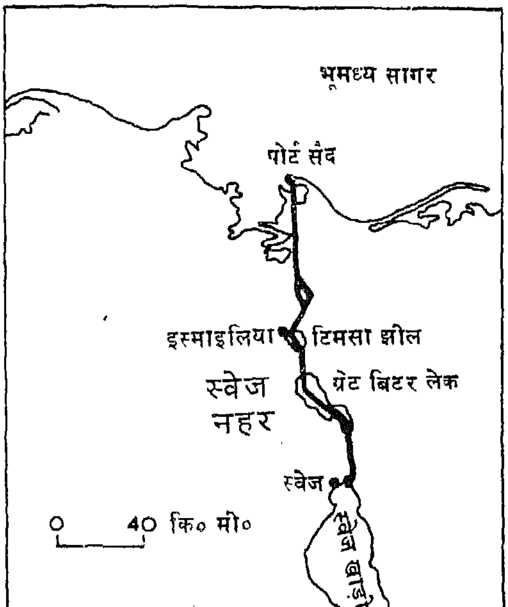
उत्तर अमेरिका के पूर्वी तट पर प्रमुख नगर न्यूयार्क, बोस्टन, फिलाडेल्फिया, बाल्टीमोर, मांट्रियल, क्यूबेक और टोरंटो हैं। इन नगरों से यूरोपीय देशों को खाद्य पदार्थ, कच्चा माल, गेहूं, पशुओं के भोजन पदार्थ, कपास,



चित्र 25 : संसार के प्रमुख महासागरीय व्यापार मार्ग

तम्बाकू, कागज, लुगदी, टिम्बर, निकिल और तांबा निर्यात किया जाता है। इस मार्ग का विदेशी व्यापार अन्य समस्त विश्व के व्यापार से भी अधिक है।

2. **आशा अंतरीय मार्ग** : यह समुद्री मार्ग यूरोपीय देशों को दक्षिण एशिया और दूर पूर्व एशिया के देशों से मिलाता है। इस मार्ग द्वारा दक्षिण-पूर्व एशिया से यूरोपीय देशों को कच्चा माल, जैसे रबर, पटसन, चीनी, चाय और कहवा भेजा जाता है। 1961 में अरब-इजरायल के युद्ध के बाद स्वेज नहर बंद कर दी गई थी। उस समय आशा अंतरीय मार्ग का महत्व बहुत बढ़ गया था।

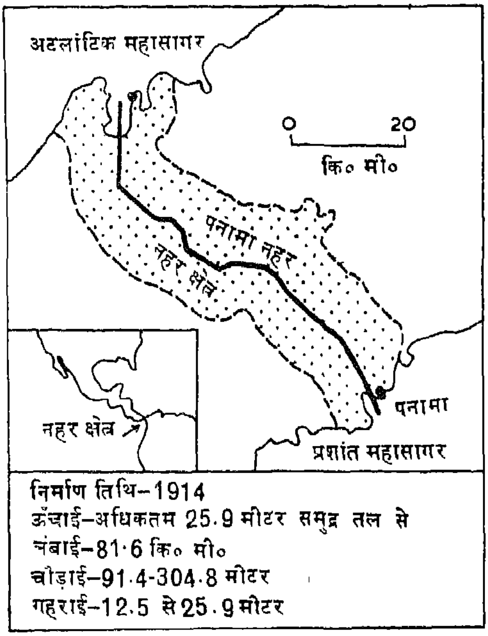


निर्माण तिथि–1869,
लंबाई–162.5 कि० मी०
गहराई– 10 मीटर
चौड़ाई–60-65.5 मीटर
भार सीमा– 20000 टन

चित्र 26 : स्वेज नहर

3. **स्वेज नहर मार्ग** : स्वेज नहर 1869 में खोली गई (चित्र 26)। यह यातायात और नौ संचालन में मानव की सफलता का एक महत्वपूर्ण प्रमाण है। यह मार्ग यूरोप के देशों को अफ्रीका के पूर्वी देशों, दक्षिण-पूर्व एशिया और सुदूर पूर्व के देशों से मिलाता है। भूमध्य सागर और स्वेज नहर से होकर जाने वाला यह मार्ग यूरोप और एशिया के देशों के बीच छोटा मार्ग है। पहले इस नहर को ब्रिटेन की जीवन रेखा माना जाता था, क्योंकि मध्यपूर्व से पेट्रोलियम उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों से कच्चा माल और दक्षिण-पूर्वी एशिया से खाद्य पदार्थ इसी नहर द्वारा भेजा जाता था। ब्रिटेन, स्वेज नहर मार्ग द्वारा औद्योगिक उत्पाद बम्बई, कराची, कोलम्बो, सिंगापुर, हांगकांग और आस्ट्रेलिया के प्रांतों को भेजता था। यूरोप के अन्य देश भी इस मार्ग का प्रयोग करके अफ्रो-एशियाई देशों के बाजारों को अपना माल भेजते थे। 1967 में अरब-इजरायल युद्ध के बाद यह नहर परिवहन के लिए पूर्णतया बंद कर दी गई और विश्व के एक महत्वपूर्ण व्यापार मार्ग का अचानक अंत हुआ। मिश्र को इस नहर के बंद हो जाने से बहुत नुकसान हुआ, क्योंकि यह नहर उसकी आय का प्रमुख साधन थी। ब्रिटेन, जर्मन संघीय गणराज्य, फ्रांस और जापान के व्यापार पर भी नहर के बंद होने का गहरा प्रभाव पड़ा। नहर के बंद हो जाने पर जलयानों को आशा अंतरीय वाले लम्बे मार्ग से जाना पड़ा। स्वेज नहर के बंद हो जाने से लीबिया और अल्जीरिया के तेल क्षेत्रों का महत्व बढ़ गया क्योंकि वे यूरोप के अधिक निकट हैं। 1974 में नहर के फिर से खुल जाने पर परिस्थिति आसान हुई। इस प्रकार स्वेज नहर यूरोप के विकसित देशों और एशिया के विकासशील देशों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

4. **पनामा नहर मार्ग** : पनामा नहर उत्तर और दक्षिण अमेरिका के बीच स्थित है और यह विश्व के दो बड़े महासागरों, प्रशांत व अटलांटिक को मिलाती है। यह संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा बनाई गई है, उसी की सम्पत्ति है और मुख्यतः उसी के द्वारा प्रयोग की जाती है। पनामा नहर का निर्माण कार्य 1914 में पूरा हुआ और इसके बन जाने के साथ केप हार्न होकर जाने के खतरनाक मार्ग का अंत हुआ। इसे प्रायः 'प्रशांत महा-

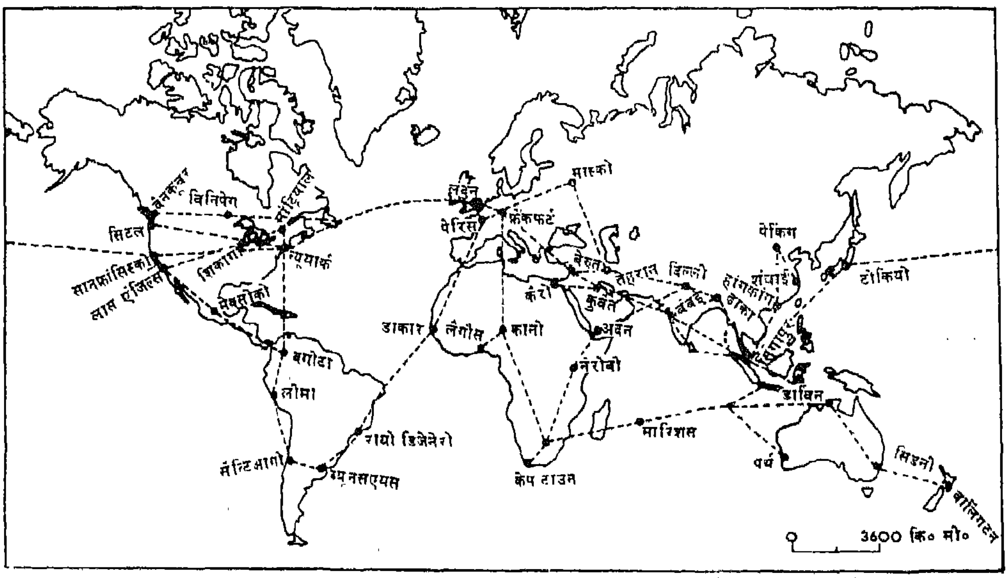


चित्र 27 : पनामा नहर

सागर का द्वार' कहा जाता है, क्योंकि इसके बन जाने से अटलांटिक और प्रशांत महासागरों के तटीय देशों के बीच कच्चे माल और निर्मित वस्तुओं के व्यापार में बहुत वृद्धि हुई है। आकलैंड से न्यूयार्क, केप हार्न मार्ग होकर न जाकर पनामा होकर जाने से, 4,000 किलोमीटर की बचत हुई है (चित्र 27)।

वायु मार्ग

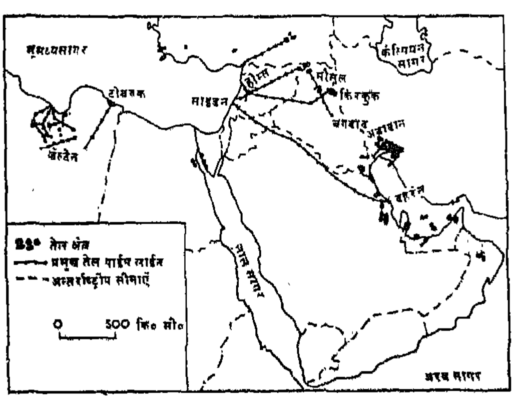
वायुयानों के प्रयोग द्वारा मानव ने वायुमंडल की ऊंचाइयों पर विजय प्राप्त कर ली है। गत 50 वर्षों की अवधि में वायु यातायात में द्रुतगति से प्रगति हुई है और इसका हमारे लिए महत्व लगातार बढ़ रहा है। लेकिन विश्व के विभिन्न भागों में वायु यातायात का विकास असमान हुआ है। वायु मार्ग भौतिक अवरोधों जैसे पर्वत, मरुस्थल एवं महासागरों जैसे अवरोधों से मुक्त होते हैं। परिवहन का अत्यन्त महंगा साधन होने के नाते वायुयान द्वारा बहुत कम सामान ढोया जाता है। शीघ्र खराब होने वाली वस्तुओं, दवाइयां, कीमती सामान और प्राकृतिक दुर्घटना में फंसे लोगों के लिए खाद्य पदार्थों के ढोने में इसका प्रयोग किया जाता है। इन वस्तुओं को अपने



चित्र 28 : विश्व के प्रमुख वायु मार्ग

गंतव्य स्थान पर जल्दी से जल्दी पहुंचाने की आवश्यकता होती है। युद्ध, भूकंप, बाढ़ आदि में फंसे लोगों को दवाई और भोजन पहुंचाने या उनकी रक्षा के लिए लोगों को तुरंत वहां पहुंचाने में वायुयान परिवहन का सबसे उत्तम साधन है। जेट वायुयान के प्रयोग के परिणामस्वरूप यात्रा में अब बहुत कम समय लगता है। संसार के लगभग सभी बड़े-बड़े नगर वायु मार्गों से जुड़े हुए हैं और विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के लोग वायुयानों में साथ-साथ बैठकर यात्रा करते हैं, जिससे लोगों में अंतर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास होता है।

वायु यातायात के आगमन से सुरक्षा संबंधी कई प्रकार की समस्याओं ने जन्म लिया है। विश्व के विभिन्न भागों की अलग-अलग बीमारियां और मच्छर व कीड़े-मकौड़े जो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में आसानी से नहीं पहुंच पाते थे, अब अनजाने ही वायुयानों में यात्रा करने वाले लोगों द्वारा विश्व के एक भाग से दूसरे भाग में आसानी से पहुंच रहे हैं। लेकिन इन सब समस्याओं के होते हुए भी वायुयानों ने समय और दूरी पर जो विजय प्राप्त की है वह मानव के लिए अति उपयोगी है। इसके अतिरिक्त वायु यातायात में बढ़ते हुए ट्रैफिक के परिणामस्वरूप अब अधिकाधिक लोगों को इस महत्वपूर्ण तृतीयक व्यवसाय में काम के अवसर मिल रहे हैं। चित्र 28 में विश्व के प्रमुख वायु मार्ग दर्शाए गए हैं।



चित्र 29 : मध्य पूर्व के तेल क्षेत्र और प्रमुख पाइप लाइनें

पाइप लाइनें

पाइप लाइनें सामान के परिवहन के लिए अति नवीन साधन है। इनके द्वारा मुख्यत: पेट्रोलियम, गैसोलिन, ईंधन-तेल, प्राकृतिक गैस और जल का परिवहन विश्व के एक भाग से दूसरे भाग में किया जाता है। विश्व के अधिकांश पेट्रोलियम उत्पादन क्षेत्रों में पाइप लाइनें कच्चे तेल (क्रूड आयल) को तेल-क्षेत्रों से तटों पर स्थित बन्दरगाहों पर पहुंचाती हैं, और वहां इसे साफ करके या कच्चे रूप में विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्व की सबसे अधिक पाइप लाइनें हैं। यहां पाइप लाइनों की लम्बाई रेल लाइनों की लम्बाई के लगभग है। मध्य पूर्व के तेल क्षेत्रों में कई लम्बी-लम्बी पाइप लाइनें हैं जो तेल को भूमध्य सागर पर स्थित पत्तनों तक पहुंचाती हैं (चित्र 29)। मध्य पूर्व में पाइप लाइनें मरुस्थलों को पार करती हुई इराक को त्रिपोली बन्दरगाह से मिलाती हैं। इसी प्रकार ट्रांस अरेबियन पाइप लाइन रास तनोरा (अरब) को सैदन से मिलाती हैं। भारत में भी तेल के परिवहन के लिए पाइप लाइनें बनाई गई हैं। यहां असम के तेल क्षेत्रों से तेल की विशाल मात्रा को पाइप लाइनों द्वारा बरौनी (बिहार) और नूनमाती (असम) परिष्करण शालाओं तक भेजा जाता है।

सिकुड़ता विश्व

यातायात और संचार के प्रत्येक नवीन विकास के कारण विश्व के दूर स्थित भूभाग एक दूसरे के निकट आ रहे हैं, एकाकीपन कम हो रहा है और एक दूसरे पर निर्भरता अधिकाधिक हो रही है। बहुत लम्बे समय तक यातायात एक मात्र स्थल पर होता था जो प्रायः कठिन, कष्ट साध्य एवं अति धीमा था। कुछ समय बाद मनुष्य ने महासागरों पर यात्रा करने की विधियों को खोज निकाला, जिससे वह दूर-दूर स्थित देशों के साथ व्यापार करने लगा और लोगों के सम्पर्क में आने से विचारों का आदान-प्रदान होने लगा। जो क्षेत्र पहले बिलकुल अनभिज्ञ थे उनकी नई-नई जानकारी इन साधनों की मदद से मिली। सड़क और रेल के विकास ने स्थल यातायात में क्रांतिकारी परिवर्तन किए जिससे दूर स्थित और अन-

जाने क्षेत्रों तक आसानी से आना-जाना संभव हो सका। जल यातायात में स्टीम इंजन और तेल इंजन के प्रयोग ने विभिन्न क्षेत्रों के बीच यात्री और सामान को अधिक मात्रा में लाने और ले जाने में मदद दी। इसी प्रकार वायुयान के आविष्कार ने दूरी पर विजय प्रदान की जिससे अब हजारों मील दूर स्थित स्थान बिल्कुल पड़ोस के मालूम देते हैं और ऐसा लगता है कि विश्व अब सिकुड़ रहा है।

आधुनिक यातायात का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने एक क्षेत्र को जो किसी वस्तु के उत्पादन में विशिष्टता रखता है, अपनी वस्तुओं को दूसरे विशिष्टता प्राप्त क्षेत्रों की वस्तुओं से अधिकाधिक विनिमय की संभावनाएं प्रदान की हैं। इस प्रकार के भौगोलिक श्रम विभाजन ने फसलों, खनिजों, वनीय उत्पाद और निर्मित वस्तुओं के विशाल पैमाने पर उत्पादन और उनके कम से कम मूल्य पर बिक्री करने में बहुत मदद दी है। यदि यातायात और संचार के आधुनिक साधन न होते तो वस्तुओं के विशिष्टीकरण, उनके बड़े पैमाने पर उत्पादन और उनके विभिन्न क्षेत्रों के बीच विनिमय की क्रिया संभव न हो पाती। आज के युग में कोई भी क्षेत्र सब प्रकार से आत्मनिर्भर नहीं हो सकता, क्योंकि भौगोलिक दशाएं हर क्षेत्र की अलग-अलग हैं। अतः विशिष्टीकरण स्वाभाविक है और परिवहन के साधन विशिष्ट वस्तुओं की शीघ्रता शीघ्र अदला-बदली में मदद देते हैं। यातायात और संचार के साधन विविध प्रकार की शहरी एवं ग्रामीण दृश्य भूमि को मिलाकर सम्पूर्ण राष्ट्र को एक इकाई में ही नहीं पिरोते वरन् वे समस्त विश्व को मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं विशाल बाजार प्रदान करते हैं।

व्यापार

यातायात और संचार की भांति व्यापार भी मानव के तृतीयक व्यवसायों में से एक है। कृषि एवं निर्माण उद्योग व्यवसाय के बाद सबसे ज्यादा संख्या में लोग व्यापार में ही लगे हुए हैं। यह व्यवसाय आखेट, मत्स्य ग्रहण, लकड़ी काटना, खनन, यातायात और संचार के व्यवसायों की अपेक्षा सबसे अधिक संख्या में लोगों की जीविका का साधन है। किसी देश का आर्थिक स्तर बहुत कुछ उसके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर निर्भर करता है।

व्यापार का सामान्य अर्थ है वस्तुओं का विनिमय अर्थात वस्तुओं का आदान-प्रदान जो कभी भी किसी क्षेत्र में, किसी स्तर पर हो सकता है। व्यापार को प्राचीनतम रूप को वस्तु विनिमय कहा जाता है, जिनमें मुद्रा के प्रयोग किए बिना केवल वस्तुओं का आदान-प्रदान होता है। वस्तु विनिमय अब भी विश्व की कुछ आदिम जातियों के बीच प्रचलित है और यह इनकी पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था का द्योतक है। भारत के कुछ आंतरिक भागों में अब भी सब्जियों और फलों का अनाज के साथ वस्तु विनिमय होता है। वस्तु विनिमय के सबसे बड़े तीन दोष हैं, (1) यह दो व्यक्तियों के बीच अपनी-अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए समझौते पर आधारित होता है। (2) वस्तु विनिमय के पूर्व हर वस्तु की दूसरी वस्तु के साथ विनिमय की जाने की दर निश्चित की जाती है। (3) इसमें बहुत बड़ी मात्रा की वस्तु का छोटी मात्रा की वस्तु से विनिमय होना कठिन हो जाता है। इन कठिनाईयों के कारण व्यापार अधिकतर मुद्रा के प्रयोग द्वारा किया जाता है।

हमारे दैनिक जीवन में व्यापार का संबंध मुख्यतः फुटकर व्यापार से होता है जिसमें दुकानदार धन के बदले में वस्तुओं को लोगों में बेचता है। बड़े पैमाने पर किए व्यापार को थोक व्यापार कहते हैं जो देश में भीतर किया जाता है और इसमें व्यक्ति खेतों कारखानों या आयात किए गए माल को अत्याधिक मात्रा में खरीदकर दुकानदारों को फुटकर बिक्री के लिए बेच देता है। विभिन्न देशों के बीच हो रहे व्यापार को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का स्तर देश के भीतर विभिन्न प्रकार के प्रदेशों, उनके भौगोलिक आकार, उनमें रहने वाले लोगों की खरीदने की क्षमता और जनसंख्या की अधिकता पर निर्भर करता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

विभिन्न राष्ट्रों के बीच वस्तुओं, सेवाओं, कच्चा या निर्मित माल, पूंजी और सोना का विनिमय अथवा

आदान-प्रदान अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कहलाता है। आज की अत्यंत जटिल एवं विशिष्ट आर्थिक क्रियाओं के बीच कोई भी देश पूर्णतया आत्म निर्भर होने का दावा नहीं कर सकता। अतः प्रत्येक देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न राष्ट्रों के बीच व्यापार होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त कुछ देश अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन करते हैं। अतः इसे फेंकने के बजाय अन्य जरूरतमंद देशों को अतिरिक्त उत्पादन बेचना अधिक लाभप्रद होगा। औद्योगीकरण के बढ़ते हुए कदमों के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का बढ़ना निहायत जरूरी है। सभी औद्योगिक देशों को अपने उद्योगों के लिए विशाल मात्रा में कच्चा माल चाहिए। परन्तु बहुत से औद्योगिक देश जैसे यूनाइटेड किंगडम और जापान में कच्चे माल की बहुत कमी है। इन देशों को मुख्यतः कृषि देशों से प्रचुर मात्रा में कच्चा माल आयात करना पड़ता है और बदले में कृषि देश अपने खेतों, चरागाहों, वनों, खानों पर काम करने और अपनी आवश्यकता के लिए वस्तुओं का निर्माण करने के लिए विविध प्रकार की मशीनें औद्योगिक देशों से खरीदते हैं।

इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख आधार विश्व के एक भाग में वस्तुओं का अतिरिक्त उत्पादन होना और दूसरे भाग में उनकी कमी है। इसलिए व्यापार उन्हीं देशों के बीच विकसित होता है जो प्रायः भिन्न प्रकार का उत्पादन करते है। शीतोष्ण प्रदेशों के लोगों को उष्ण प्रदेशों की उन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है जो उनके यहां पैदा नहीं हो सकती और उष्ण प्रदेशों के लोगों को शीतोष्ण जलवायु में पैदा होने वाली वस्तुओं को मंगाना पड़ता है। अतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्राकृतिक साधन, जनसंख्या, आर्थिक विकास का स्तर, विदेशी निवेश, यातायात औरसरकारी नीतियां प्रभावित करती हैं।

विश्व के विभिन्न भागों की सभ्यता और संस्कृति भी व्यापार पर अपना प्रभाव डालती है। लोगों की विविध इच्छाएं और उनकी तुष्टि के विविध ढंग बहुत कुछ उनकी संस्कृति पर निर्भर करते हैं। अविकसित एवं विकासशील देशों के अधिकतर लोग अपनी मौलिक आवश्यकताओं की तुष्टि न्यूनतम सामग्री से कर लेते हैं। परन्तु विकसित देशों के लोगों को इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बहुत अधिक सामग्री चाहिए। जो देश मुख्यतः प्राथमिक उत्पादन करते हैं उन्हें गौण उत्पादन की वस्तुओं की आवश्यकता होती है। अतः विकास शील देश मुख्यतः औद्योगिक उत्पादों का आयात करते हैं और विकसित देश कच्चे माल का। भारत विकासशील देश है। यहां प्राथमिक उत्पादन, गौण उत्पादन की अपेक्षा अधिक है। यहां उद्योगों का तेजी से विकास हो रहा है। इसके विपरीत यूनाइटेड किंगडम एक विकसित देश है। यहां औद्योगिक उत्पादन प्राथमिक की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। अतः भारत ब्रिटेन से मशीनें और अन्य आवश्यक निर्मित वस्तुएं आयात करता है और ब्रिटेन भारत से कच्चा माल अर्थात प्राथमिक उत्पादन की वस्तुएं खरीदता है। व्यापार की यह स्थिति बहुत ही अस्थाई है, क्योंकि दोनों देशों की संस्कृति का अंतर कम हो रहा है और जैसे ही भारत ब्रिटेन के समान औद्योगिक देश हो जाएगा वह ब्रिटेन से निर्मित वस्तुओं के आयात करने के बजाय उससे औद्योगिक उत्पादों से स्पर्धा करने लगेगा। उदाहरणार्थ जापान तीन दशाब्दियों पूर्व कारखानों के उपकरणों का आयात करता था लेकिन अब इसके कारखानों की बनी वस्तुओं से अंतर्राष्ट्रीय बाजार भरे पड़े हैं, यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप के अति विकसित देशों के बाजारों में भी जापान के कारखानों की बनी वस्तुएं इतने कम मूल्यों पर बिक रहीं हैं कि वे स्वयं उन कीमतों पर वस्तुओं का निर्माण अपने यहां नहीं कर सकते।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार दो प्रकार का होता है, **द्विदेशीय** व्यापार और **बहुदेशीय** व्यापार। द्विदेशीय व्यापार में वस्तुओं का विनिमय मुख्यतः दो देशों के बीच होता है। इसमें एक देश कच्चा माल भेजता है। बहुदेशीय व्यापार में वस्तुओं का विनिमय कई देशों के बीच होता है और वस्तुओं का सीधा लेन-देन नहीं होता। बहुदेशीय व्यापार तब ही विकसित हो पाता है जब हर देश एक दूसरे से व्यापार करने के लिए पूर्णतया स्वतंत्र हो। भारत का बहुदेशीय व्यापार अतिविकसित है और इसका व्यापार संतुलन शनैः शनैः देश के पक्ष में हो रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत ने कृषि और औद्योगिक क्षेत्र में बहुत प्रगति की है।

विदेशी मुद्रा-विनिमय

विदेशी मुद्रा-विनिमय वह व्यवस्था या तरीका है जिसके द्वारा दो अलग-अलग राष्ट्रीय मुद्राओं में व्यापार करने वाले देशों के बीच भुगतान, धन के वास्तविक रूप में दिए बगैर कर दिया जाता है। प्रत्येक देश की मुद्रा-संबंधी व्यवस्था अलग-अलग होती है और यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में कई उलझनें पैदा करता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सरल बनाने के लिए एक देश की मुद्रा का दूसरे देश की मुद्रा से विनिमय किया जाता है। यदि कोई वस्तु किसी देश में खरीदी गई है तो दुकानदार को उस वस्तु का मूल्य दुकानदार के देश की मुद्रा में दिया जाएगा। यदि एक भारतीय यूनाइटेड किंगडम से सीधे एक कार खरीदना चाहता है, तो उसे कार का मूल्य ब्रिटिश मुद्रा अर्थात पौंड स्टरलिंग में अदा करना होगा और भारतीय मुद्रा अर्थात रुपये में नहीं। अलग-अलग मुद्राओं में काम करने वाले विभिन्न देशों के बीच आयात और निर्यात व्यापार में **विदेशी मुद्रा-विनिमय दर** अर्थात विदेशी मुद्रा की इकाई के मूल्य के बराबर अपनी मुद्रा देना, एक महत्वपूर्ण कारक है। उदाहरण के लिए भारतीय रुपए और ब्रिटिश पौंड स्टरलिंग के बीच इस समय मुद्रा-विनिमय दर 1 पौंड-16·00 रु० के समतुल्य है। मुद्राओं की खरीद-शक्ति के घटने बढ़ने के अनुसार मुद्रा-विनिमय दर भी बदलती रहती है।

व्यापार संतुलन

किसी देश के एक निश्चित अवधि में किए आयात और निर्यात मूल्यों एवं उनके साथ की सेवाओं का **अंतर व्यापार** संतुलन कहलाता है। इसका सीधा संबंध देश द्वारा निर्यात की गई वस्तुओं से हुई आमदनी और आयात की गई वस्तुओं के मूल्य की देनदारी से है। जब निर्यात मूल्य आयात मूल्य से अधिक होता है तो कहा जाता है कि व्यापार संतुलन देश के पक्ष में है और जब आयात मूल्य निर्यात मूल्य से अधिक होता है तो व्यापार संतुलन देश के विपक्ष में समझा जाता है। विपक्ष व्यापार संतुलन को हमेशा आर्थिक कठिनाइयों का द्योतक नहीं मानना चाहिए क्योंकि कभी-कभी आयात मूल्य विदेशों में पूंजी निवेश, बैंक सुविधा और अन्य सेवाओं के कारण निर्यात मूल्य से अधिक हो जाता है।

विश्व के प्रमुख पत्तन

समुद्र तट पर स्थित पोताश्रय का वह व्यापार करने वाला भाग, जहां जहाजों पर सामान लादने उतारने और उसे सुरक्षित रखने तथा यात्रियों के चढ़ने व उतरने और उनके विश्रामालयों आदि की सुविधाएं हों, **पत्तन** कहलाता है। पत्तनों के आसपास प्रायः बड़ी-बड़ी बस्तियां विकसित हो जाती हैं। पोर्ट और डॉक पर काम करने के लिए नगर में अनेक सुविधाएं विकसित की जाती हैं एवं आंतरिक यातायात तथा संचार काफी विकसित हो जाता है। अतः पत्तन मूलतया स्थल और समुद्र के संगम पर एक द्वार है जिसके द्वारा आयात वस्तुएं देश में आती हैं और निर्यात वस्तएं देश से बाहर जाती हैं।

व्यापार के मुख्य द्वार होने के नाते पत्तन दिन पर दिन बढ़ते रहते हैं। संसार के लगभग सभी पत्तनों की जनसंख्या घनी है। किसी पत्तन पर व्यापार की वृद्धि—अत्यन्त समृद्ध और व्यापक उत्पादन, उपजाऊ पश्चभूमि, पश्चभूमि में विकसित अच्छे यातायात के साधन, विश्व के प्रमुख व्यापार मार्गों के निकट उसकी स्थिति, पत्तन पर उतारने और चढ़ाने की अनुकूल सुविधाएं आदि कारकों पर निर्भर करती हैं। किसी पत्तन की समृद्धि मूलतया घनी जनसंख्या वाले उपजाऊ एवं औद्योगिक पश्चभूमि पर आधारित होती है। पश्चभूमि का अर्थ है वह प्रदेश जिसके लिए पत्तन व्यापारिक द्वार का काम करता है। उदाहरण के लिए कलकत्ता—पश्चिम बंगाल, असम, उड़ीसा, बिहार आदि राज्यों के लिए व्यापारिक द्वार का कार्य करता है। अतः ये राज्य कलकत्ता पत्तन की पश्चभूमि के अंतर्गत आते हैं। एक पत्तन तभी अंतर्राष्ट्रीय पत्तन के रूप में विकसित होता है जब उसकी पश्चभूमि में साधनों की विपुलता, घनी जनसंख्या, आर्थिक उत्पादों की प्रचुरता और अत्यन्त विकसित यातायात और संचार साधन उपलब्ध हों। विश्व के कुछ प्रमुख पत्तन जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्वपूर्ण द्वार हैं के नाम हैं: लन्दन, न्यूयार्क, रोटर्डम, सिंगापुर, हांगकांग, बम्बई, कलकत्ता और सिडनी।

अभ्यास

समीक्षात्मक प्रश्न

1. किसी देश के आर्थिक विकास के लिए वहां सुविकसित यातायात और संचार साधनों का होना अत्यन्त आवश्यक है, इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. औद्योगिक संकुलों के विकास में महामार्ग, रेलमार्ग, और अंत:स्थलीय जलमार्गों का क्या योगदान होता है ? अपने उत्तर को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
3. अफ्रीका में सड़कों और रेलमार्गों के निर्माण में क्या-क्या बाधाएं हैं ?
4. ट्रांस साइबेरियन रेलमार्ग और कनेडियन पैसिफिक रेलमार्ग ने अपने-अपने देश में राष्ट्रीय एकता को किस प्रकार बढ़ावा दिया ?
5. स्वेज नहर और पनामा नहर ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने में किस प्रकार योगदान दिया स्पष्ट कीजिए।
6. बहुत से विकासशील देशों में यातायात का प्रतिरूप मूलतया प्राथमिक उत्पादों के निर्यात को प्रतिविम्बित करता है, इस कथन की पुष्टि कीजिए।
7. यातायात और संचार साधनों के आधुनिक विकास ने संसार को छोटा कर दिया है, इसे स्पष्ट कीजिए।
8. संसार के प्रमुख औद्योगिक संकुलों का वर्णन कीजिए। मनुष्य ने इनके विकास में क्या कुछ किया है ?
9. निम्नलिखित में अंतर बताइए :
   (i) अंत:स्थलीय जलमार्ग एवं महामार्ग
   (ii) वस्तु विनिमय एवं मुद्रा पर आधारित व्यापार
   (iii) राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार
   (vi) पोस्ताश्रम एवं पत्तन
   (v) पक्ष एवं विपक्ष व्यापार संतुलन
   (vi) विदेशी मुद्रा-विनिमय एवं मुद्रा-विनिमय दर

ज्ञात कीजिए

(i) अपने क्षेत्र के प्रमुख तृतीयक व्यवसायों की सूची बनाइए।
(ii) अपने निकटवर्ती किसी ग्राम में जाकर मालूम कीजिए कि वहां क्या वस्तु विनिमय द्वारा व्यापार होता है ?
(iii) विभिन्न देशों की मुद्राएं मालूम कीजिए और कम से कम दस प्रमुख देशों की मुद्राओं और रुपये की विनिमय दर मालूम कीजिए।

मानचित्र कार्य

(i) संसार के रूपरेखा मानचित्र पर किन्ही दो देशों में रेल का घना जाल दिखाइए।
(ii) भारत के रूपरेखा मानचित्र पर ट्रांस साइबेरियन रेलमार्ग और कनेडियन पैसिफिक रेलमार्ग भरिए और प्रमुख स्टेशनों को भी दिखाइए।

(iii) संसार के रूपरेखा मानचित्र पर प्रमुख समुद्री मार्ग दिखाइए।

(iv) संसार के रूपरेखा मानचित्र पर प्रमुख वायुमार्ग दिखाइए।

अतिरिक्त अध्ययन

1. डेविस, डी० एच०, **दि अर्थ एंड मैन—ए ह्यूमन ज्योग्राफी**, दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क
2. गुप्ता, ए० डी०, **इकोनामिक एंड कामर्शियल ज्योग्राफी**, कलकत्ता, 1975
3. हर्म, जे० दि०, बिलाइज, **मैन शेपस दि अर्थ—ए टोपीकल ज्योग्राफी**, हिम्लटन कम्पनी, कैलीफोर्निया, 1975
4. जोन्स, सी० एफ०, **इकोनोमिक ज्योग्राफी**, दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1965
5. लिओंग, जी० एंड मोरगन, जी० सी०, **ह्यूमन एंड इकोनामिक ज्योग्राफी**, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1973
7. परपिलिअने, ए० वी०, **ह्यूमन ज्योग्राफी**, नागमैन लि० लन्दन, 1971

अध्याय 9

जनसंख्या और बस्तियां

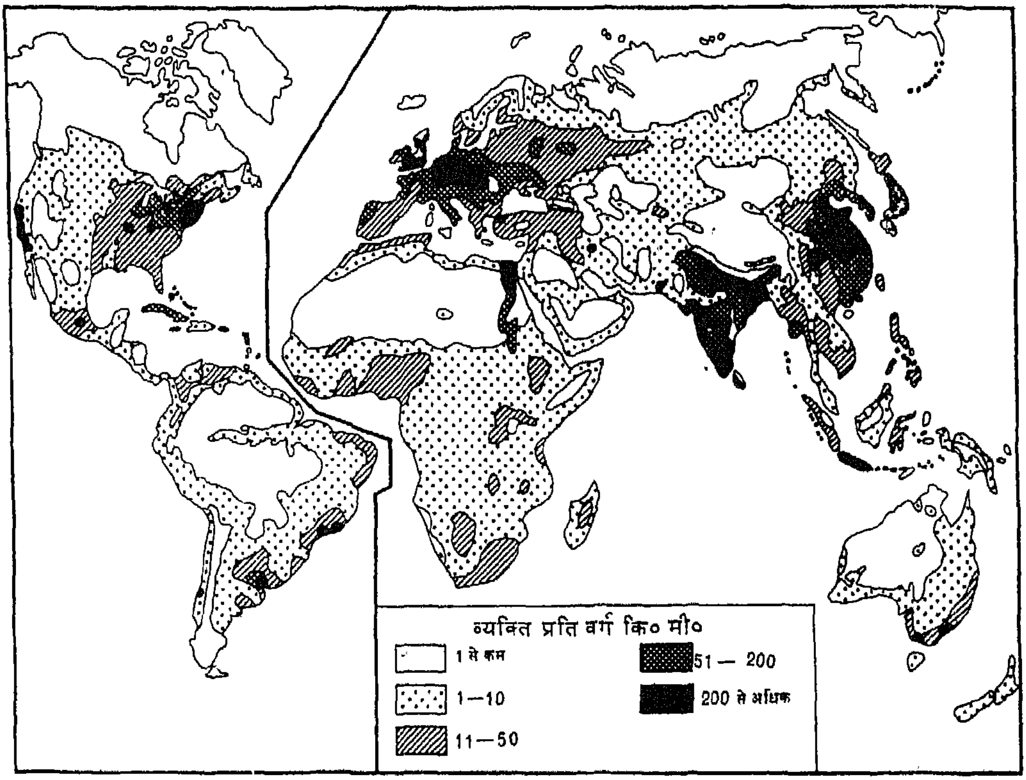
मानव भूगोल का संबंध मनुष्य और उसके द्वारा प्राकृतिक संपदा के उपयोग से है। जनसंख्या अध्ययन के प्रमुख अंग जनसंख्या का वितरण, घनत्व, प्रादेशिक विविधता, वृद्धि दर एवं जनसांख्यकीय संरचना जैसे वयस् संघटन, स्त्री-पुरुष अनुपात आदि हैं।

जनसंख्या-वितरण एवं घनत्व

पृथ्वी की सतह पर जनसंख्या के वितरण की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका असमान एवं अव्यवस्थित ढंग का वितरण है और साथ ही उसका संकेन्द्रण मुख्यत: विषुवत वृत्त के उत्तर में है। चित्र 30 में जनसंख्या का विश्व वितरण दिखाया गया है। इससे आप जान सकते हैं कि संसार के कुछ प्रदेश अति घने आबाद हैं और कुछ क्षेत्रों की जनसंख्या विरल है एवं कुछ भाग तो लगभग मानव विहीन हैं। विरल जनसंख्या के प्रदेशों में जनसंख्या घनत्व 1 से 2 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। ऐसे प्रदेश पृथ्वी की सतह का लगभग तीन-चौथाई भाग घेरे हुए हैं। घनी जनसंख्या के प्रदेशों में जनसंख्या घनत्व 100 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी अधिक है। उच्च घनत्व के क्षेत्र छोटे और बिखरे हैं, जबकि कम घनत्व के क्षेत्र बड़े और संलग्न हैं।

विरल जनसंख्या के प्रदेश

विश्व में विरल जनसंख्या के प्रमुख प्रदेश विस्तृत मरुस्थल, ध्रुवीय शीत प्रदेश, ऊंचे-ऊंचे पर्वतीय भाग और सघन वनों के विशाल क्षेत्र हैं। जनसंख्या वितरण में सबसे बड़े मानव विहीन क्षेत्र मरुस्थल हैं, जहां पानी की अत्यन्त कमी के कारण वनस्पति नहीं उगती और इसलिए वहां मनुष्य और पशुओं के लिए भोजन की नितान्त कमी है। उत्तर तथा दक्षिण, दोनों गोलार्द्धों में सन्मार्गी पवनों के कटिबंध में, विस्तृत मरुस्थल पाए जाते हैं। परन्तु इनमें उत्तरी गोलार्द्ध के मरुस्थलों का क्षेत्रफल बहुत अधिक है। मरुस्थलों में थोड़ी-सी जनसंख्या इधर उधर छिटके छोटे-छोटे मरुद्यानों में पाई जाती है जहां कुछ पानी मिलता है। वहां भी जनसंख्या का कम या अधिक होना मूलतया इस बात पर निर्भर करता है कि वहां सिंचाई के लिए पानी की कितनी मात्रा उपलब्ध है। मध्य अक्षांशों में गोबी जैसे मरुस्थलों में शीत और सूखा के कारण मानव जीवन बहुत कठिन है। मरुस्थलीय भागों



चित्र 30 : जनसंख्या के घनत्व का विश्व वितरण

में जहां कहीं खनिज पदार्थों के विशाल निक्षेप मिलते हैं, वहां छोटी-छोटी बस्तियां विकसित हो जाती हैं और खनिज पदार्थों के समाप्त होने के साथ ये बस्तियां भी उजड़ जाती हैं। इन बस्तियों के लिए भोजन और पानी बहुत अधिक खर्च पर दूर-दूर से लाया जाता है।

मानव जीवन के लिए दूसरा कठिन क्षेत्र ध्रुवों के आसपास हैं जहां जलवायु दशाएं अत्यन्त शीत हैं। इन प्रदेशों और ऊंचे-ऊंचे पर्वतीय भागों में अति निम्न तापमान के कारण वर्ष के अधिक महीनों में बर्फ जमी रहती है और बर्फानी तूफान आते हैं। यहां वर्धन काल इतना छोटा होता है कि उसमें कोई भी फसल पैदा नहीं की जा सकती। यद्यपि यहां आसपास के समुद्रों में मछलियां पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं लेकिन समुद्र के बर्फ की चादर से ढके होने के कारण उन्हें पकड़ना कठिन कार्य है। इसी प्रकार वन्य प्राणी भी प्रतिकूल जलवायु के कारण यहां बहुत कम हैं। इसलिए उनका शिकार करना भी सीमित है। इन्हीं सब कारणों से यहां जनसंख्या बहुत ही कम है।

इन प्रदेशों में कुछ वैज्ञानिक, खनिक एवं अन्य विशेषज्ञ अवश्य रहते हैं, परन्तु वे अपने भोजन, वस्त्र, आवास एवं अन्य आवश्यकताओं की सभी वस्तुएं बाहर से लाते हैं। लौह-अयस्क के कारण ही स्वीडन में गेलिवश स्थान पर बस्तियां विकसित हुई। सोने के प्राप्त होने के कारण कनाडा के यूकान-घाटी में डासन नगर और एलास्का में फेयर बैंक और फोर्ट-यूकान नगरों का जन्म हुआ। सोवियत संघ के साइबेरिया क्षेत्र में सोना, तेल, कोयला,

नमक और दुर्लभ धातुएं मिलने के कारण आर्कटिक तट के निकट कई नगरों का विकास हुआ है। इस प्रकार के नगर बड़ी संख्या में इन क्षेत्रों में विकसित नहीं किए जा सकते। अत: टुंड्रा प्रदेश में जनसंख्या हमेशा ही विरल रहेगी।

ऊंचे-ऊंचे पर्वतीय भागों में भी विरल जनसंख्या पाई जाती है। ऊंचाई बढ़ने के साथ एक ओर तो जलवायु ठंडी होती जाती है और दूसरी ओर भूमि का ढलान तीव्र होने से मृदा की परत पतली और भूमि कृषि के लिए अनुपयुक्त हो जाती है। फलत: जनसंख्या विरल होती जाती है। 4000 मीटर के ऊपर वायुमंडल में दाब की कमी के कारण सांस लेना कठिन होता है। पठारी भागों में जहां भूमि अपेक्षाकृत चौरस और मिट्टी उपजाऊ है स्थाई बस्तियां पाई जाती हैं। नदियों की घाटियां सबसे अधिक आबाद हैं।

विषुवतीय प्रदेशों, विशेषतया अमेजन बेसिन, जायरे नदी की द्रोणी और दक्षिणी पूर्व द्वीप समूहों के घने वनों में वर्ष भर तापमान और आर्द्रता ऊंची होने के कारण जलवायु मनुष्य के लिए अनुकूल नहीं है। यद्यपि यहां के वनों में वन्य प्राणियों की बहुतायत है, परन्तु वनों के अत्यधिक घने होने के कारण उनमें से होकर गुजरना और जानवरों का शिकार करना कठिन है। इन्हीं कारणों से ये भाग विश्व की अति विरल जनसंख्या वाले प्रदेश हैं।

घनी जनसंख्या के प्रदेश

मानचित्र 30 के अध्ययन से ज्ञात होगा कि विश्व के कुछ प्रदेशों की जनसंख्या घनी है। मानसून एशिया में भारत, चीन और बंगला देश, जापान, यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका के उत्तरी-पूर्वी भाग तथा कनाडा के आसपास के भागों की जनसंख्या बहुत घनी है। घनी जनसंख्या के ये सब प्रदेश उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित हैं। मानसूनी प्रदेश में पानी की प्रचुरता है और विविध प्रकार के जीवन की वृद्धि के लिए बहुत ही अनुकूल वातावरण है। यहां वर्ष में धान की दो या तीन फसलें पैदा की जाती हैं। इन्हीं कारणों से इस प्रदेश में लोगों का सबसे विशाल जमघट है। भारत, चीन, मिश्र और जावा जैसे घनी जनसंख्या के क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था मूलतया कृषि पर आधारित है। इन क्षेत्रों में कहीं-कहीं जनसंख्या का घनत्व 400 से 800 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। यह केवल इसी कारण संभव हो सका है कि यहां की जलवायु, उच्चावच, मिट्टी और जलापूर्ति विविध प्रकार की अनाज और रोपण फसलों की पैदावार के लिए बहुत ही अनुकूल है।

यूरोप में घनी जनसंख्या के प्रदेश मुख्यत: उद्योगों पर निर्भर हैं। इन प्रदेशों की विशाल जनसंख्या के लिए अधिकतर भोजन विश्व के विभिन्न भागों से आयात किया जाता है और इस प्रकार यहां के लोग मुख्यत: उद्योग, व्यापार और वाणिज्य पर निर्भर हैं। औद्योगिक क्रान्ति और उसके साथ विशाल पैमाने पर निर्माण उद्योगों के विकास ने अधिकांश श्रमजीवी जनसंख्या को कारखानों के आसपास लाकर एकत्रित कर दिया, जिसके कारण अनेक बड़े-बड़े औद्योगिक नगरों का जन्म हुआ। यूरोप के इन छोटे-बड़े औद्योगिक नगरों में ही महाद्वीप की अधिकांश जनसंख्या रहती है। उत्तर अमेरिका में जनसंख्या का संकेन्द्रण अपेक्षाकृत छोटा एवं नवीन है, जो यूरोप की भांति ही वातावरण के साथ साम्य कर रहा है। वास्तव में यह यूरोप का ही एक प्रसार है।

भू-भारत मूलतया कृषि अर्थव्यवस्था का देश है। अत: यहां की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण है। यहां फसलों की पैदावार अधिकतर मानसूनी वर्षा पर निर्भर है और लगभग सभी खाद्य पदार्थ मिट्टी से प्राप्त होते हैं। भारत में उच्च जनसंख्या घनत्व के क्षेत्र भारी वर्षा के प्रदेशों में हैं, जहां वर्ष में दो या तीन अनाज फसलें पैदा की जाती हैं। तालिका-3 में वार्षिक वर्षा और जनसंख्या घनत्व का संबंध दिखाया गया है।

भारत की औसत जनसंख्या-घनत्व 182 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। परन्तु यह इस औसत से कुछ क्षेत्रों में बहुत अधिक है और कुछ में बहुत कम। गंगा के मैदानों में सब से घनी आबादी है। यहां देश की 60% से भी अधिक जनसंख्या रहती है। यहां 200 व्यक्ति प्रति वर्ग कि० मी० से भी अधिक लोगों का आवास है और यहां वर्ष में तीन-तीन फसलें तक उगाई जाती हैं। जहां वर्ष में दो फसलें उगाई जाती हैं, वहां 100 से 200 व्यक्ति

तालिका 3

औसत वार्षिक वर्षा और जनसंख्या-घनत्व

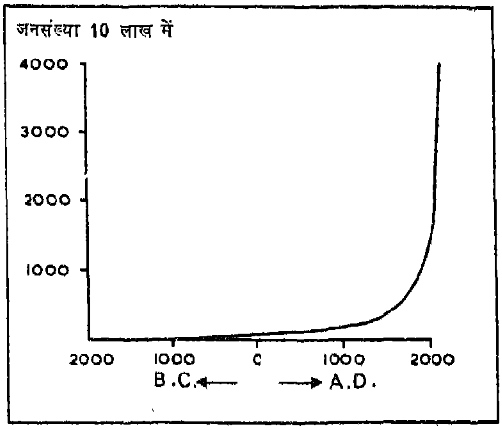
प्रदेश	औसत वार्षिक वर्षा (सेन्टीमीटर)	जनसंख्या का घनत्व (प्रति वर्ग किलोमीटर)
गंगा का मैदान	195	220
पूर्वी घाट	117	196
दक्खन पठार	72	60
पश्चिमी शुष्क प्रदेश	27	26

प्रति वर्ग कि० मी० में रहते हैं। काली मिट्टी के कपास के क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व 40 और 100 के बीच है और थार मरुस्थल तथा पर्वतीय भागों में 40 व्यक्ति प्रति वर्ग कि० मी० से भी कम रहते हैं। दिल्ली में और इसके आस-पास जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी अधिक है।

जनसंख्या वृद्धि

मानव समाज के प्रारंम्भिक इतिहास में विश्व की जनसंख्या की जानकारी केवल अंदाज से ही की जा सकती है। मनुष्य ने लगभग 6000 वर्ष ईसा पूर्व शिकार करना और वस्तु संग्रहण का कार्य छोड़कर स्थानबद्ध कृषि को अपनाना प्रारम्भ किया। उस समय विश्व की जनसंख्या लगभग 10 लाख और 50 लाख के बीच थी। कृषि की वृद्धि के साथ नदी-घाटी सभ्यताओं का विकास हुआ जिसने जनसंख्या वृद्धि में बड़ा योगदान दिया और ऐसा अनुमान है कि ईसा युग के प्रारम्भ तक विश्व की जनसंख्या बढ़कर 25 करोड़ तक पहुंच गई थी।

इस समय संसार की कुल जनसंख्या 350 करोड़ से ऊपर है। सन् 1850 में विश्व की कुल जनसंख्या लगभग 110 करोड़ थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि गत 125 वर्षों में विश्व की जनसंख्या में जितनी वृद्धि हुई है, उतनी मानव के पिछले संपूर्ण ऐतिहासिक युग में नहीं हुई। वर्तमान समय में जनसंख्या जिस गति से बढ़ रही है उसके अनुसार ऐसा अनुमान है कि इस शताब्दी के अंत तक विश्व की जनसंख्या लगभग दुगनी हो जाएगी (चित्र 31)।



चित्र 31 : विश्व में जनसंख्या की वृद्धि

तालिका-4 में विश्व की जनसंख्या-वृद्धि सन् 1650 से दी गई है। इससे ज्ञात हो रहा है कि विश्व की जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है। इस तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि सन् 1900 के बाद जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत तेजी से बढ़ी है। 1900 और 1970 के बीच लगभग 70 वर्षों में विश्व की जनसंख्या दुगनी से भी अधिक हो गई है।

तालिका 4

विश्व में जनसंख्या की वृद्धि

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)
1650	46.5	1900	155.0
1750	66.0	1950	237.0
1800	83.0	1960	297.2
1850	109.8	1970	356.0

भारत में जनसंख्या वृद्धि

भारत में जनगणना के लिए सर्वप्रथम प्रयास 1872 में किया गया। उस वर्ष भारत की जनसंख्या (बर्मा को छोड़कर) लगभग 20.3 करोड़ थी। 1881 में यह जनसंख्या बढ़कर 23.6 करोड़ हो गई, अर्थात दस वर्ष की अवधि में 3.3 करोड़ की वृद्धि हुई। 1921 में भारत की जनसंख्या बढ़कर 30.6 करोड़ हो गई। सन् 1921 के बाद से भारत की जनसंख्या जिस द्रुत गति से बढ़ रही है, वह यूरोप तथा विश्व के अन्य देशों से भी अधिक है। 1921 और 1941 के बीच भारत की जनसंख्या 30.6 करोड़ से बढ़कर 38.9 करोड़ हो गई, अर्थात 20 वर्षों की अवधि में 27%की वृद्धि हुई या जनसंख्या की वृद्धि दर 1·2 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। गत 70 वर्ष की अवधि में भारत की जनसंख्या वृद्धि की सबसे बड़ी विशेषता इसका अनिश्चित दर से बढ़ना है। सात दशाब्दियों में से प्रथम दो दशाब्दियों में जनसंख्या की वृद्धि दर लगभग 1.5% थी परन्तु 1921 के बाद यह बड़ी तेजी से बढ़ रही है—1921 से 1931 की अवधि में 11%और 1931 से 1941 की अवधि में 15% से कुछ कम थी। जनसंख्या की द्रुत गति से वृद्धि का मुख्य कारण मृत्यु दर में कमी है।

विश्व की भविष्य में जनसंख्या वृद्धि कितनी होगी, इस बारे में जनसंख्यकों के अलग-अलग मत हैं। परन्तु सभी इस बात पर सहमत हैं कि विश्व की जनसंख्या में बहुत अधिक वृद्धि होगी। यह अनुमान लगाया गया है कि सन् 1980 के अंत तक विश्व की जनसंख्या 400 करोड़ तक हो जाएगी और सन् 2000 तक यह 600 करोड़ और 700 करोड़ के बीच होगी।

जनसंख्या से संबंधित कुछ शब्दों की परिभाषा

जन्म दर : जनसंख्या के प्रति हजार व्यक्तियों पर किसी देश या क्षेत्र में जन्में जीवित बच्चों की संख्या।

मृत्यु दर : मध्य वर्ष की जनसंख्या के प्रति हजार व्यक्तियों पर मरने वालों की संख्या।

शिशु मृत्यु दर : एक वर्ष से कम आयु के बच्चों की प्रति हजार व्यक्तियों पर मरने वालों की संख्या।

जीवन प्रत्याशा : औसत आयु जिस तक एक देश के अधिकांश लोगों के जीवित रहने की आशा की जाती है। यह आयु विभिन्न देशों में अलग-अलग है, जैसे भारत में 50 वर्ष है और यू० के० में 72 वर्ष। इस अन्तर का मुख्य कारण यह है कि भारत में बच्चों की मृत्यु दर बहुत अधिक है, जिससे औसत जीवन प्रत्याशा गिर जाती है।

प्राकृतिक वृद्धि दर : किसी देश की मध्य वर्ष की जनसंख्या के प्रति हजार में जन्म दर और मृत्यु दर का अंतर। इसमें आप्रवासन द्वारा बढ़ी जनसंख्या सम्मिलित नहीं की जाती।

तालिका 5

कुछ देशों के जनसंख्या संबंधी आंकड़े

देश	कुल जनसंख्या हजार में (1973)	औसत जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग कि० मी० में	जन्म दर प्रति हजार में	मृत्यु दर प्रति हजार में	औसत वार्षिक वृद्धि दर प्रतिशत
आस्ट्रेलिया	13,132	2	20	9	1.9
बेल्जियम	9,757	320	15	13	0 9
ब्राजील	101,433	12	42	11	3.0
कनाडा	22,125	2	18	7	1.9
जर्मन संघीय गणराज्य	61,967	249	20	12	1.0
भारत	574,216	175	42	23	2.4
जापान	108,346	291	19	7	1.0
नीदरलैंड	13,438	329	19	8	1.3
यू० के०	55,933	229	17	12	0.6
यू० एस० ए०	210,404	22	17	10	1.3
यू० एस० एस० आर०	249,747	11	17	8	1.2

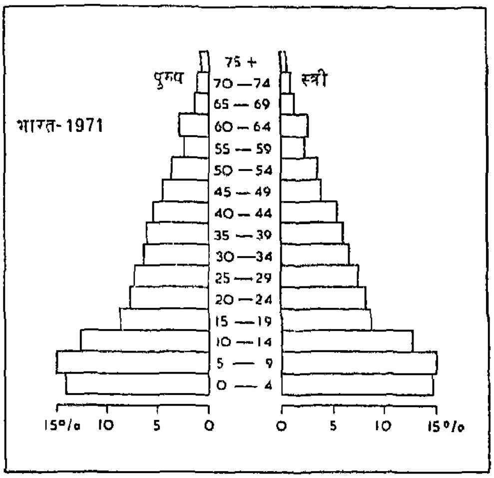
स्रोत : यूनाईटिड नेशनज़ स्टेटिस्टेकल ईयर-बुक 1974

जनसांख्यकीय संरचना

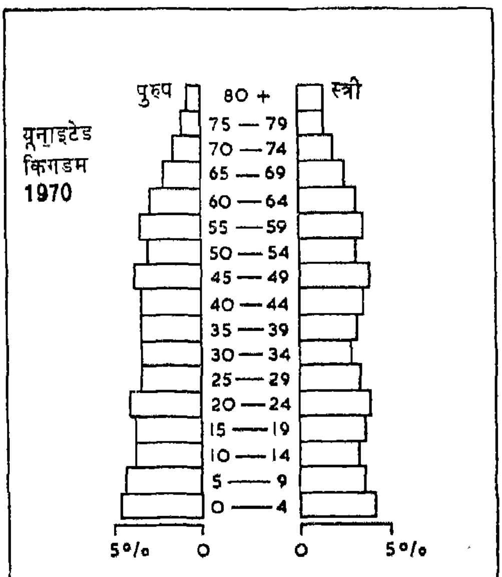
जनसंख्या के अंतर्गत पुरुष, स्त्री, बच्चे, श्रमजीवी लोग, अन्य लोगों पर निर्भर करने वाले वृद्ध लोग सम्मिलित हैं। विभिन्न समाज या समुदायों में इन अलग-अलग वर्गों के व्यक्तियों का अनुपात भिन्न है और इस विभिन्नता का प्रभाव समुदाय के सभी सदस्यों पर पड़ता है।

स्त्री-पुरुष में सामान्य अनुपात का लोगों के जीवन की गुणवत्ता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए इंगलैंड और वैल्स में लड़कियों की अपेक्षा अधिक संख्या में लड़के जन्म लेते हैं, परन्तु यह अनुपात जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ती जाती है बदलता जाता है। वृद्ध अवस्था में यहां औरतों की संख्या पुरुषों से अधिक होती है। स्त्री-पुरुष के अनुपात को आयु और लिंग पिरैमिड से दिखाया जाता है। आयु-स्त्री-पुरुष पिरैमिड में किसी क्षेत्र की जनसंख्या का बारम्बारता बंटन दिखाया जाता है। इसमें 5-5 वर्षों के अंतराल पर से 40 वर्ष की आयु वर्ग के स्त्री-पुरुषों की जनसंख्या को अलग-अलग दण्डों से दिखाते हैं। पिरैमिड के आधार पर सबसे कम आयु वर्ग की जनसंख्या (बच्चों) और शीर्ष पर सबसे अधिक आयु वर्ग की जनसंख्या (वृद्धों की) दिखाई जाती है। पिरैमिड में दण्डों को क्षैतिज रूप में बनाया जाता है और उनकी लम्बाई भी प्रत्येक आयु वर्ग की वास्तविक संख्या अथवा प्रतिशत संख्या के अनुपात में होती है। पिरैमिड के मध्य से प्रत्येक आयु वर्ग में दोनों ओर दो दण्ड बनाए जाते हैं, जिनमें एक दण्ड उस आयु वर्ग के स्त्रियों की संख्या को प्रदर्शित करता है, और दूसरी ओर का दण्ड पुरुषों की संख्या को दिखाता है। इस साधारण चित्र से हमें ज्ञात होता है, कि प्रत्येक आयु वर्ग में जनसंख्या एवं स्त्री तथा पुरुषों का क्या अनुपात है। इसके अतिरिक्त पिरैमिड की आकृति से हमें समाज या समुदाय की विशेषता के बारे में संकेत मिलता है। चित्र 32

और 33 में भारत तथा यूनाइटेड किंगडम के आयु एवं स्त्री पुरुष अनुपात के पिरैमिड दिखाए गए हैं।



चित्र 32 : आयु एवं स्त्री-पुरुष अनुपात के पिरैमिड—भारत 1971



चित्र 33 : आयु एवं स्त्री पुरुष अनुपात पिरैमिड—यू० के०

चित्र 32 में भारत का आयु-लिंग पिरैमिड दिखाया गया है। पिरैमिड की आकृति को देखकर कह सकते हैं कि इसका आधार बहुत चौड़ा है और इसका शीर्ष बड़ी तेजी से पतला होता जाता है। इस प्रकार की आकृति का पिरैमिड अधिकतर कृषि अर्थव्यवस्था वाले देशों का होता है, जिनमें बच्चों की जनसंख्या बहुत बड़ी होती है, और वृद्ध लोगों में तथा बच्चों में मृत्यु दर अपेक्षाकृत अधिक होती है जिससे पिरैमिड का शीर्ष पतला हो जाता है।

चित्र 33 में यूनाइटेड किंगडम (यू० के०) का आयु-लिंग पिरैमिड दिखाया गया है। इस पिरैमिड की आकृति भारत के पिरैमिड की आकृति से बहुत भिन्न है। यू० के० जैसा पिरैमिड अधिकतर विकसित औद्योगिक देशों का होता है। इस पिरैमिड की आकृति आप को बैरल के समान दिखाई देगी, अर्थात आधार की ओर यह छोटा और बीच में मोटा हो जाता है और शीर्ष की ओर धीरे-धीरे फिर पतला होने लगता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यहां बच्चों की संख्या और वृद्धों की संख्या बीच के आयु वर्ग वाले लोगों की संख्या की तुलना में कम है। इस प्रकार का पिरैमिड विकसित समाज या समुदाय का होता है। चित्र से देख कर ज्ञात होगा कि विकसित समाज में श्रम जीवियों की जनसंख्या का अनुपात बच्चों और वृद्ध लोगों की जनसंख्या से अधिक होता है।

विकसित देशों तथा विकासशील देशों की जनसंख्याकीय संरचना में भी बहुत बड़ा अन्तर मिलता है और यह अन्तर समाज, भूमि एवं साधन के साथ उनके संबंधों को भी प्रभावित करता है। विकसित देशों में प्रौढ़ों की जनसंख्या अधिक पाई जाती है, जबकि कृषीय और विकासशील देशों में बच्चों की जनसंख्या का बाहुल्य होता है। विकसित देशों में बच्चों में मृत्यु दर बहुत नीची होती है। इसके विपरीत विकासशील देशों में मृत्यु दर बच्चों की आयु वर्ग में अधिक पाई जाती है। इस प्रकार जनसंख्या की संरचना विभिन्न आयुवर्ग में अलग-अलग होती है और यह लोगों के जीवन को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करती है। प्रत्येक आयुवर्ग की समाज से से अलग-अलग अपेक्षाएं हैं, और वह समाज को

अलग-अलग ढंग से योगदान देता है। उदाहरण के लिए बच्चों की जनसंख्या पूर्णतया आश्रित होती है। वे इस आयु वर्ग में हैं, जो समाज के आर्थिक विकास में योगदान नहीं दे सकते। इसके विपरीत इनकी शिक्षा, स्वास्थ्य भोजन आदि के लिए समाज को बहुत अधिक धन खर्च करना होता है। दूसरी ओर प्रौढ़ जनसंख्या अर्थात श्रम-जीवी वर्ग समाज के आर्थिक विकास में पूरा-पूरा योगदान देते हैं। उन पर बच्चों की अपेक्षा समाजको कम खर्च करना पड़ता है।

जनसांख्यकीय संरचना के अलग-अलग होने का प्रभाव सम्पूर्ण जनसंख्या एवं उसके बीच अन्तर्क्रियाओं पर पड़ता है और यह अन्ततः जन्म दर और मृत्यु दर से मुख्यतः संबंधित है। विभिन्न आयु वर्ग का यह संबंध विभिन्न देशों की जनसंख्या में अलग-अलग पाया जाता है, अतः हमें कई प्रकार की जनसांख्यकीय संरचनाएं मिलती हैं। परन्तु इन सभी संरचनाओं में श्रमजीवी जनसंख्या का आधारभूत संबंध मृत्यु दर एवं जन्म दर अर्थात अतिजीवितादर से होता है। नीचे तालिका में दो भिन्न समाजों, भारत तथा न्यूजीलैंड की अतिजीवितादर दिखाई गई हैं।

तालिका 6 को अध्ययन करने से आपको ज्ञात होगा कि एक लाख जन्में बच्चों में से 15 वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते भारत में केवल 54, 112 ही जीवित रहते हैं, जबकि न्यूजीलैंड में यह संख्या 94,069 है। इस प्रकार न्यूजीलैंड में भारत की अपेक्षा प्रभावी श्रमजीवी शक्ति कहीं अधिक है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि भारत में जीवन की बर्बादी बहुत अधिक है और इस बर्बादी का परिवार और समुदाय के साधनों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भारत को प्रति एक लाख जन्में बच्चों में से सामान्यतः 45,000 बच्चों को उनकी कुछ दिनों की आयु से लेकर 15 वर्ष की आयु तक सुरक्षा करनी है और दूसरी ओर यह विशाल जनसंख्या देश के आर्थिक विकास में कोई योगदान नहीं देगी। दूसरे शब्दों में भारत को न्यूजीलैंड के बराबर श्रमजीवी शक्ति का निर्माण करने के लिए लगभग दुगुनी संख्या के बच्चों की परिवरिश करनी होगी। यह भारत के लिए अत्यन्त व्ययसाध्य कार्य है। फिर भी भारत को यह महान कार्य करना ही होगा, क्योंकि देश

तालिका 6

भारत तथा न्यूजीलैंड की अतिजीविता दरों की तुलना

आयु	अतिजीविता प्रति एक लाख व्यक्तियों पर	
	भारत	न्यूजीलैंड
5	60,161	95,212
10	54,567	94,576
15	54,112	94,069
20	51,203	93,217
30	43,931	91,089
40	34,563	88,365
50	24,348	83,328
60	14,933	73,472
70	7,036	54,184
काम करने की औसत अवधि	अवधि 30 वर्ष	40 वर्ष

के आर्थिक विकास और कृषि कार्यों के लिए स्वस्थ्य एवं सशक्त श्रमजीवी लोगों की लगातार आपूर्ति चाहिए।

किसी समाज की जनसांख्यकीय संरचना वयस् संगठन, जन्म एवं मृत्यु दरों के अतिरिक्त अप्रवासी जनसंख्या को भी प्रभावित करती है। आप्रवासी लोग अपने मूल देश की जनसंख्या और जिस देश में वे आकर बस रहे हैं, वहां की जनसंख्या—दोनों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए सन् 1850 और 1900 के बीच आयरलैंड से संयुक्त राज्य अमेरिका में बसने के लिए इतनी अधिक संख्या में लोग चले गए कि आयरलैंड की जनसंख्या 80 लाख से घटकर 40 लाख रह गई और वहां की जन्मदर बहुत ही कम हो गई।

जनसंख्या में लिंग संरचना का अपना महत्व है। यह जनसंख्या की वृद्धि अर्थात अगली जनन दर को प्रभावित करती है। जनन-अनुपात एक ऐसा माप है जिससे यह ज्ञात होता है कि स्त्रियों की वर्तमान पीढ़ी का स्थान गर्भ-धारण कर सकने वाली लड़कियों द्वारा किस दर से लिया जा रहा है। जनन दर के आंकलन द्वारा भविष्य में जनसंख्या के रुख का पूर्वानुमान लगाया जाता है। स्त्री तथा पुरुष की जनसंख्याओं का अनुपात सामान्यत: एक-सा होता है। परन्तु कभी-कभी युद्ध के कारण स्त्री-पुरुष अनुपात में संतुलन बिगड़ जाता है, क्योंकि युद्ध में अधिकतर पुरुष मारे जाते हैं। इसके अतिरिक्त अधिकांश देशों में उच्च आयु वर्ग में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक होती है क्योंकि स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा प्राय: अधिक समय तक जीवित रहती हैं।

नगरीय एवं ग्रामीण जनसंख्या

किसी देश की जनसंख्या को मुख्यत: दो श्रेणियों अर्थात नगरीय और ग्रामीण जनसंख्या में बांटा जाता है। अभी हाल तक विश्व के अधिकांश देशों की जनसंख्या में ग्रामीण जनसंख्या का बाहुल्य था। लगभग सारी ग्रामीण जनसंख्या गांवों में रहती थी और उसके 90% लोग कृषि कार्यों से अपनी जीविका चलाते थे। उस समय के छोटे-छोटे नगरों का ग्रामों पर कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता था। इसके बाद लगभग एक शताब्दी से भी अधिक समय से प्राय: सभी देशों में जनसंख्या का रुख नगरीकरण की ओर हो रहा है। नगरीकरण में वृद्धि का मूलकारण वाणिज्य, व्यापार एवं निर्माण उद्योगों का अधिकाधिक विकास है। नगरों की जनसंख्या के द्रुत गति से बढ़ने का यह परिणाम निकला कि अब बहुत अधिक संख्या में लोगों को नगर के अपेक्षाकृत बहुत सीमित क्षेत्र में इकट्ठा होकर रहना पड़ता है। यह जनसाधारण के लिए एक नया सामाजिक अनुभव है। कृषि अर्थव्यवस्था से युक्त अधिसंख्य विकासशील देशों की जनसंख्या मुख्यत: ग्रामीण है और इसके विपरीत विकसित देशों एवं औद्योगिक देशों में अधिकतर लोग नगरों और शहरी, बस्तियों में रहते हैं।

नगरीय एवं ग्रामीण जनसंख्या का अलग-अलग जीवन होता है और उनकी समस्याएं एक-दूसरे से बहुत भिन्न होती हैं। उदाहरण के लिए एक शहर जैसे बढ़ता है उसकी यातायात, जलापूर्ति, मल-मूत्र के निकास और कूड़ा-कचरा को समाप्त करने संबंधी समस्याएं भी बढ़ती जाती हैं। कारखानों की चिमनियों से निकला धुआं और उनका रासायनिक स्रोत वायु और जल को प्रदूषित करता है। नगरीय जीवन से उत्पन्न अनेक तनावों के कारण अनेकों मानसिक व्याधियां पैदा हो जाती हैं जो ग्रामीण जीवन में विरले ही देखने को मिलती हैं। नगरीय क्षेत्र का प्रसार एक अन्य समस्या है जो क्षेत्र की आत्म निर्भरता को कम कर देता है।

इसके दूसरी ओर नगरों में दूकानों, बड़े-बड़े स्थायी बाजारों, आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन करने तथा अच्छी-अच्छी सामाजिक सेवाओं की सुविधाएं उपलब्ध होती हैं जो ग्रामों में उतनी अच्छी नहीं होतीं। नगरों में ग्रामों की अपेक्षा काम मिलने के अधिक अच्छे अवसर मिलते हैं और यहां पैसा पैदा करना अधिक आसान है। इन्हीं सुविधाओं के कारण लोग बड़ी संख्या में ग्रामों से नगरों में रहने के लिए लगातार आ रहे हैं और इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में खेती करने का काम छोड़ दिया गया है। ग्रामों में जितने ही कम लोग रहेंगे वह उतना ही आर्थिक दृष्टि से पिछड़ेगा, लोगों को उतनी ही कम सेवाएं मिलेंगी और नगर तथा ग्राम के बीच की विषमता उतनी ही बढ़ती जाएगी। जिन क्षेत्रों में ग्रामीण जनह्रास के साथ कृषि के यांत्रीकरण एवं उसके युक्ति-

संगत ढंग से विकास द्वारा आमदनी के स्रोत बढ़ाए गए है वहां अच्छे परिणाम निकले हैं। लेकिन अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या के घटने पर लोगों का जीवन-स्तर गिरा है।

भारत एक अत्यन्त पुराना कृषि प्रधान देश है, अतः यहां ग्रामीण जनसंख्या का बाहुल्य है। भारत की लगभग 80% जनसंख्या गांवों में रहती है। प्रत्येक गांव कुछ कच्चे मकानों का एक समूह है। गांव में और उसके आस-पास सफाई पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। जिन कुओं से प्रायः पीने का पानी निकाला जाता है, वे अधिकतर उथले, कच्चे, खुले और गाव के तालाब के निकट स्थित होते हैं। इससे उनका पानी दूषित हो जाता है और ऐसा जल पीने से पेट तथा शरीर के अन्य भागों में कई बीमारियां पैदा हो जाती हैं। अतः भारतीय ग्रामों की आर्थिक दशा अधिकतर पिछड़ी हुई है।

भारत की कुल जनसंख्या के केवल 20% ही नगरों में रहते हैं। भारत में नगरीकरण के विकास की गति इतनी धीमी होने का मुख्य कारण यह है कि भूतकाल में भारत का औद्योगिक विकास बहुत पिछड़ा हुआ था। भारत के अधिकांश नगर प्रशासन, व्यापार तथा वाणिज्य, उद्योग और शिक्षा के केन्द्र हैं। प्राचीन काल में अधिकतर नगरों का विकास उनकी सैनिक महत्व की स्थिति होने या उनके द्वारा प्रशासनिक व्यापारिक या धार्मिक कार्य करने के परिणामस्वरूप हुआ था। निर्माण उद्योगों के विकास के साथ नए-नए नगर जन्म ले रहे हैं और वर्तमान नगरों की सीमाएं बड़ी तेजी से बढ़ रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक सुविधाओं की कमी, काम मिलने की कम सम्भावनाएं और शिक्षा संबंधी सुविधाओं की बहुत बड़ी कमी के कारण गांवों से लोग बड़ी संख्या में शहरों में रहने आ रहे हैं। अतः स्वतंत्रता के बाद भारत के भी नगर बड़ी तेजी से बढ़ रहे हैं और भारत की जनसंख्या में नगरीय एवं ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात द्रुत गति से बदल रहा है।

जनसंख्या की व्यवसायिक संरचना

जनसंख्या की संरचना को व्यवसायों के अनुसार भी अध्ययन किया जाता है। मनुष्य अपनी जीविका किसी सेवा, उद्योग अथवा धंधों में काम करके ही चलाता है। विभिन्न प्रकार की ये सेवाएं, उद्योग तथा धंधा ही मानव के लिए विविध व्यवसाय हैं। प्रत्येक व्यवसाय में एक विशिष्ट प्रकार की मानवीय क्रिया की जाती है। अति आवश्यक, आरामदेय एवं प्रसाधन वस्तुओं के उत्पादन में मनुष्य बड़े पैमाने पर मिट्टी, खनिज तथा प्रकृति के अन्य साधनों का प्रयोग करता है। अतः प्रत्येक प्राकृतिक साधन के उपयोग में मानवीय अनुक्रिया अलग-अलग होती है।

जिन व्यवसायों द्वारा मनुष्य अपना जीवन-यापन करता है, उनको दस श्रेणियों में बांटा गया है। आखेट, वस्तु-संग्रह, मत्स्य ग्रहण, खनन, लकड़ी काटना, पशु-चारण, सस्य उत्पादन, निर्माण उद्योग, यातायात, व्यापार और प्रशासन, व्यवसाय के मुख्य प्रकार हैं। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका, नीदरलैंड और बेल्जियम जैसे विकसित देशों में लोगों के प्रमुख व्यवसाय व्यापार और वाणिज्य तथा उद्योग हैं। इसके विपरीत कृषीय समुदायों और विकासशील देशों, जैसे अफ्रीका के देश, भारत, चीन, पाकिस्तान, बंगला देश, बर्मा, थाईलैंड, आदि देशों में अधिसंख्य लोगों की जीविका के मुख्य साधन फसलें पैदा करना, मछली पकड़ना, शिकार करना, पशु चराना और वनों में लड़की काटना हैं।

भारत परम्परागत एक कृषि प्रधान देश है और यहां की 80% जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एकमात्र कृषि पर निर्भर है। आज कल भारत में लोगों को अन्य व्यवसायों, जैसे निर्माण, खनन, भवन निर्माण, यातायात एवं शिक्षा आदि में काम दिलाने के लिए अधिकाधिक अवसर प्रदान किए जा रहे हैं। अतः यह आशा की जाती है कि निकट भविष्य में भारत की जनसंख्या की व्यवसायिक संरचना में बहुत बड़ा परिवर्तन सामने आए और जिसके परिणामस्वरूप लोगों का अनुपात प्राथमिक व्यवसायों की अपेक्षा द्वितीयक एवं तृतीयक व्यवसायों में अधिक होगा।

विभिन्न समुदायों की आयु-लिंग, व्यवसायिक, नगर-ग्रामीण एवं साक्षरता संबंधी संरचनाएं किसी देश की जनसंख्या के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। वे लोगों की संख्या से कहीं अधिक एक समुदाय, वर्ग या समाज की विशेषताओं को समझने में मदद देती हैं। जन-

संख्या के आंकड़े से बढ़कर हर समाज की विशिष्ट जनसंख्यकीय संरचना, उसके रहन-सहन का ढंग, उसकी अपशिष्टता एवं अदक्षता की समस्याएं और उसके ऊपर बच्चों और वृद्धों अर्थात आश्रित जनसंख्या का बोझ आदि बातें बहुत विचारणीय होती हैं। भूगोल में रुचि रखने वाले हर व्यक्ति को इन सभी कारकों का सूक्ष्म से सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए क्योंकि किसी समाज में जीवन की गुणता इन्हीं कारकों पर आधारित होती है।

अनुकूलतम जनसंख्या

किसी देश की जनसंख्या के आकार उसके वितरण एवं उसकी विविध संरचना को देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों और उसके लोगों द्वारा उत्पादन के लिए अपनाई गई विभिन्न तकनीकों के संदर्भ में अध्ययन करना चाहिए। किसी क्षेत्र में प्राकृतिक साधनों के उपयोग की सीमा और उनके प्रयोग करने की विधियां उस क्षेत्र के अत्यधिक आबाद अथवा अल्प आबाद होने का एक मापदंड है। जब एक देश में वहां की जनसंख्या और वहां के उपलब्ध साधनों के बीच एक प्रकार का संतुलन स्थापित हो जाता है तो लोगों की उस संख्या को उस देश की **अनुकूलतम जनसंख्या** कहते हैं।

अनुकूलतम दशाएं तभी बनी रह सकती हैं जब जनसंख्या की वृद्धि के अनुसार नए-नए साधन जुटाए जाएं। भूमि पर काम करने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि एक विशेष सीमा तक उत्पादन को बढ़ाने में सहायक है। इस अनुकूलतम जनसंख्या के पहुंच जाने के बाद यदि जनसंख्या में वृद्धि होती है, तो यह उत्पादन में वृद्धि, घटती हुई दर से करेगी और अंततः प्रति व्यक्ति उत्पादन गिर जाएगा। एक ही साधन आधार पर निर्भर करने वाले लोगों की संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ने लगेगी त्यों-त्यों व्यक्ति स्वयं गरीब होता जाएगा।

इसके दूसरी ओर एक प्रदेश के समस्त साधनों को पूरी तरह विकसित करने के लिए वहां यदि पर्याप्त जनसंख्या नहीं है, तो भी लोगों का जीवन स्तर नीचा होगा। आस्ट्रेलिया की औसत जनसंख्या घनत्व 2 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। अतः इस नाते और साथ ही देश की विशाल संपदा को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि आस्ट्रेलिया अल्प आबाद है। परन्तु यूरोपीय लोगों के बसने के पूर्व आस्ट्रेलिया सम्भवतः अल्प आबाद नहीं था, क्योंकि उस समय की आदिवासी जनसंख्या को आज के समान यहां के साधनों का ज्ञान नहीं था। इसी प्रकार आज की तकनीकी के संदर्भ में मध्य एशिया अल्प आबाद है। यहां विशाल खनिज संपदा है, जो औद्योगिक विकास में मदद दे सकती है। इसीलिए सोवियत संघ की सरकार इस विरल जनसंख्या वाले प्रदेश में लोगों को आकर बसने का प्रोत्साहन दे रही है। परन्तु प्राचीन काल में मध्य एशिया में चरवाहे रहते थे जो यहां की खनिज संपदा और आज की आधुनिक तकनीकी को बिल्कुल नहीं जानते थे। जिन साधनों का उन्हें ज्ञान था उनका उन्होंने खूब शोषण किया और एक समय ऐसा आया कि उनके ज्ञात साधन समाप्त होने लगे। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने आस-पास के अधिक संपन्न क्षेत्रों जैसे भारत, चीन और यूरोप पर कई बार हमले किए और वहां के लोगों को खूब लूटा। इन प्रदेशों में, साधनों की अधिकता के कारण बहुत से हमलावर बस गए। अतः कोई देश अल्प आबाद है अथवा अत्यधिक आबाद, इसका विश्लेषण उस देश के आर्थिक विकास की अवस्था के अनुसार करना चाहिए।

जनसंख्या की तीव्र वृद्धि का विकास कार्यों पर प्रभाव

विकसित एवं विकासशील देशों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण अनेक सामाजिक-आर्थिक समस्याएं पैदा हो गई हैं। जिन देशों में जनसंख्या वृद्धि बहुत ऊंची है वहां जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग (इसमें मुख्यतः 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चे होते हैं) अपेक्षाकृत बहुत छोटी श्रमजीवी जनसंख्या पर पूर्णतया आश्रित होता है। इसके साथ ही बच्चों की इस विशाल जनसंख्या को शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, मनोरंजन आदि सामाजिक सुविधाएं प्रदान करने के लिए राज्य पर बहुत भारी बोझ पड़ता है। बहुत से अल्प विकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि के कारण लोगों को रोजगार मिलना बहुत कठिन हो जाता है। अत्यधिक आबाद ग्रामीण क्षेत्रों से लोग नगरों की ओर भागते हैं और वहां काम मिलना

प्रायः और भी कठिन होता है। नगरों की जनसंख्या अत्यधिक हो जाने से वहां रहन-सहन की दशाएं और भी खराब हो जाती हैं।

अत्यधिक आबाद देशों में लोगों का जीवन-स्तर नीचा होता है। घरों की समस्या विकट हो जाती है और उनमें गंदगी और अतिसंकुलता बढ़ जाती है। स्वास्थ्य एवं सफाई तथा पोषण का स्तर निम्न होता है जिसके कारण, अनेक स्वास्थ्य समस्याएं एवं बीमारियां फैलने लगती हैं। ऐसे देशों में कृषि-विकास की नई-नई तकनीकों को अपनाना कठिन होता है, क्योंकि अधिकतर किसान परम्परागत तरीकों से खेती करना पसन्द करते हैं। वे नए-नए विचारों को आसानी से स्वीकार नहीं करते। इसके अतिरिक्त अत्यधिक आबाद देशों में निर्माण उद्योगों का विकास करना कठिन होता है, क्योंकि यहां स्थानीय पूंजी, कुशल श्रमिक और आधुनिक तकनीक की कमी तथा गरीब होने के कारण लोगों में औद्योगिक उत्पादों को खरीदने की क्षमता कम होती है। इस प्रकार जनसंख्या की तीव्र वृद्धि किसी देश के कृषि एवं औद्योगिक विकास पर बुरा प्रभाव डालने के साथ वहां के लोगों का जीवन स्तर गिराती है। यदि अल्प आबाद देशों की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होती है, तो यह शुरू में वहां के आर्थिक विकास में सहायक हो सकती है, परन्तु कुछ समय बाद जनसंख्या विस्फोट होने पर यहां भी गरीबी और निम्न जीवन-स्तर फैलने लगता है।

बस्तियाँ और उनके प्रकार

मानव भूगोल में बस्तियों का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि किसी प्रदेश का वर्तमान स्वरूप मानव और वातावरण के विविध संबंधों को प्रदर्शित करता है। बस्तियों का जन्म एवं उनका विकास एक लम्बी अवधि में हुआ है और बस्तियों की स्थिति, प्रतिरूप तथा विन्यास के अध्ययन द्वारा हम मालूम कर सकते हैं कि मनुष्य ने प्रारंभ से अब तक आसपास की भूमि का उपयोग कैसे-कैसे किया। इसके अतिरिक्त बस्तियां मनुष्य के समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों को भी प्रतिरूपित करती है। प्रत्येक नगर अथवा गांव में मन्दिर, मस्जिद गुरुद्वारा, गिरजाघर, समुदायघर आदि कुछ इमारतें, सार्वजनिक उपयोग के लिए सुरक्षित रखे जाते हैं। इन इमारतों के प्रकार और उनकी संख्या—बस्तियों को विशिष्टता प्रदान करते हैं।

बस्तियों को प्रायः नगरीय और ग्रामीण श्रेणियों के अंतर्गत बांटा जाता है। नगरीय और ग्रामीण बस्तियों में आधारभूत अंतर यह है कि नगरीय बस्तियों में अधिकांश लोगों का व्यवसाय निर्माण-उद्योग, व्यापार, वाणिज्य एवं प्रशासन होता है। इसके दूसरी ओर ग्रामीण बस्तियां अर्थात गावों मे अधिसंख्य लोगों की जीविका का मुख्य साधन कृषि है। कुछ गांवों मे कुछ अन्य व्यवसाय, जैसे मछली पकड़ना, लकड़ी काटना, खान खोदना या पशु चराना भी पाए जाते है, परन्तु ऐसे ग्रामों में वाणिज्य, दुकानों के स्थल या बाजार और उद्योगों की कमी पाई जाती है।

नगरीय बस्तियां

नगरीय बस्तियों को उनकी जनसंख्या-आकार और उनके कार्यों के अनुसार पारिभाषित किया जाता है। नगरीय बस्ती में कृषि, मत्स्य ग्रहण, लकड़ी काटना, पशुचारण आदि जैसे ग्रामीण बस्तियों के व्यवसाय नहीं अपनाए जाते। यहां लोगों की मुख्य आर्थिक क्रियाएं निर्माण उद्योग, व्यापार और प्रशासन तथा सेवाएं होती हैं। इस प्रकार नगरीय बस्ती एक ऐसा वास-स्थल है जिसके अधिकांश निवासी अपना सारा काम निर्मित क्षेत्र के भीतर करते हैं। यह एक संहित वास-स्थल भी है जिसमें प्राथमिक व्यवसायों, विशेषतया कृषि को छोड़कर विभिन्न प्रकार की व्यवसायिक संरचना पाई जाती है। ऐसी बस्तियों को प्रायः नगर या शहर के नाम से पुकारा जाता है।

नगरों की स्थिति हमेशा यातायात मार्गों के मिलन बिन्दु पर होती है। नगर ऐसे स्थान पर स्थित हो सकते हैं, (1) जहां विभिन्न दिशाओं से सड़कें आकर नदी के पार करने के स्थान, पर्वतीय दर्रे, किसी बड़ी झील के शीर्ष या किसी नदी की नाव्य सीमा पर आकर मिलती है, (2) जहां नदी मार्गों का संगम हो या नदी

के मुहाने पर जहां तटीय यातायात और नदी यातायात दोनों आकर मिलते हों, (3) जहां प्रमुख यातायात मार्ग आकर मिलते हों, समुद्री व्यापार के लिए पोताश्रय संबंधी पर्याप्त सुविधाएं हों तथा नगर के विकास के लिए पर्याप्त स्थान हों, तथा (4) जहां विभिन्न दिशाओं से रेल मार्ग आकर मिलते हों। इस प्रकार की स्थितियों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि कच्चा और तैयार माल आसानी से बाजारों तक लाया जा सकता है। इसके साथ ही ऐसी स्थिति के नगरों में विभिन्न प्रकार का उत्पादन बड़ी मात्रा में इकट्ठा किया जाता है और वह थोड़ी-थोड़ी मात्रा में नगर के आस-पास के क्षेत्रों में वितरित किया जाता है। इस प्रकार नगर कच्चे और तैयार माल के संग्रह एवं वितरण के केन्द्रों का काम करते हैं।

नगरों के प्रकार्य

नगरों को उनके प्रकार्यों के आधार पर अलग-अलग श्रेणियों में बांटा जाता है। नगरों के प्रकार्य प्रशासनिक, औद्योगिक, सांस्कृतिक, प्रतिरक्षा संबंधी अथवा धार्मिक हो सकते हैं। नीचे के अनुच्छेदों में नगरों का उनके प्रकार्य अनुसार विवरण दिया जा रहा है :

प्रशासनिक नगर : देशों और राज्यों की राजधानियां तथा जिलों एवं अन्य प्रशासनिक इकाइयों के मुख्यालय प्रशासनिक नगरों के अन्तर्गत आते हैं। लन्दन, इस्लामाबाद, ओटावा, कैनबरा, दिल्ली और चंडीगढ़ प्रशासनिक नगरों के कुछ उदाहरण हैं। प्रशासनिक नगरों का मुख्य संबंध जन प्रशासन से होता है और यहां बहुत सी सरकारी इमारतें, मंत्रालयों के दफ्तर, सरकार के विभिन्न विभागों जैसे रेल, डाक-तार, बैंक, न्यायालय आदि के मुख्यालय तथा व्यापारिक प्रतिष्ठानों के मुख्यालय होते हैं। इन नगरों में सरकारी कार्यालयों तथा अन्य दफ्तरों में काम करने वाले बहुत से अधिकारी एवं कर्मचारी रहते हैं। नवीन निर्मित प्रशासनिक नगरों में योजनानुसार निर्माण कार्य होता है और इनमें दृश्यभूमि को सुन्दर बनाने में विशेष बल दिया जाता है।

प्रतिरक्षा नगर : बहुत से देश अपनी प्रतिरक्षा के लिए स्थल सेना, नौ सेना एवं वायु सेना [illegible] जिस स्थल पर सैनिकों के रहने के लिए [illegible] अभ्यास एवं प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त [illegible] प्राय: कैन्टूनमेन्ट कहते हैं। प्रतिरक्षा [illegible] खेल-कूद के भी महत्वपूर्ण [illegible] फीरस, जोधपुर, अम्बाला [illegible], पुणे, [illegible] रक्षा नगरों के कुछ उदाहरण हैं।

सांस्कृतिक नगर : बहुत से नगरों के [illegible] प्रकार्य भी होते हैं। इनमें शिक्षा, कला [illegible] शिक्षा के विकास की अनेक सुविधाएं होती हैं।

(i) शिक्षा के नगरों में विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों की इमारतों के अतिरिक्त खेलने के मैदान, पुस्तकालय, छात्रावास एवं दुकानों के स्थल होते हैं। कहीं-कहीं विश्वविद्यालय नगर के साथ मिले होते हैं, जैसे अलीगढ़, रुड़की, आगरा आदि, लेकिन बहुत से शैक्षिक नगरों में शिक्षा के स्थल मुख्य नगर से बाहर होते हैं, जैसे कैम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, हार्वर्ड, शान्तिनिकेतन, पन्त नगर आदि।

(ii) कुछ नगरों का कार्य मुख्यत: कला एवं मनोरंजन होता है। यहां आमोद-प्रमोद के अनेक स्थल होते हैं। यहां अनेक थियेटर, ओपेरा तथा आर्ट गैलरीज या कला भवन होते हैं। भूमध्य सागर के तट पर फ्रांस के दक्षिण में स्थित मोनाको और संयुक्त राज्य अमेरिका का मयामी नगर मनोरंजन के केन्द्र हैं। हालीवुड और बम्बई नगर चलचित्र बनाने के प्रमुख केन्द्र हैं।

(iii) धार्मिक नगर कई प्रकार के होते हैं। वे धार्मिक गुरुओं वास-स्थल भी हो सकते हैं जैसे रोम (वेटिकन सिटी) जो पोप का मुख्यालय है और तिब्बत में लाहसा जो कभी दलाई लामा का निवास स्थान था। बहुत से धार्मिक नगर तीर्थ स्थान होते है, जैसे जेरुसलाम, मक्का, हरिद्वार, वाराणसी, अजमेर आदि। तीर्थ स्थानों में अनेक पूजा स्थान; धार्मिक पुस्तकों, चित्रों एवं वस्तुओं को बेचने की अनेक दुकानें; तीर्थ यात्रियों के ठहरने के लिए अनेक धर्मशालाएं एवं होटल आदि होते हैं।

संग्रह केन्द्र : संग्रह-केन्द्रों के अन्तर्गत खनन, मत्स्य और लकड़ी काटने के केन्द्र आते हैं। इन नगरीय केन्द्रों

में युद्ध सामग्री संग्रह की जाती और उसे कारखानों में भेजने से पूर्व आंशिक रूप में संसाधित किया जाता है।

(i) **खनन केन्द्र** मुख्यत: सोना और चांदी जैसी बहुमूल्य धातुओं या लोहा, तांबा, टिन, अल्यूमीनियम, और जस्ता जैसी औद्योगिक धातुओं या कोयला, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस जैसे खनिज ईंधनों पर निर्भर करते हैं। खानों वाले ये नगर एक प्रकार से छोटी-छोटी बस्तियों के समूह होते है जिनका मुख्य कार्य खनन क्रिया में संलग्न लोगों की सेवा करना है। जोहन्सबर्ग, काल-गूर्ली, कूलगार्डी, कोलार, रानीगंज, झरिया खेतड़ी आदि खनन-नगरों के कुछ उदाहरण हैं।

(ii) **मत्स्य पत्तन** भी एक प्रकार के संग्रह केन्द्र है जो मछलियों के संग्रह, संसाधन और उनके वितरण का कार्य करते हैं। इन केन्द्रों पर मछली उद्योग से संबंधित सभी कार्य—जैसे मछलियों को उतारने-चढ़ाने, हिलाने, सुखाने, सफाई करने, डिब्बा बन्दी करने, जमाने, और उनसे उर्वरक बनाने आदि की सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। सीटिल, हैलीफैक्स, ग्रीम्सबी, नोवा स्कोतिया, एबरडीन, कालीकट, कोचिन, पांडिचेरी, आदि मत्स्य नगरों के उदाहरण हैं।

(iii) **काष्ठकर्तन नगर** में आसपास के वनों से लकड़ी के लट्ठे रेल या ट्रक द्वारा या नदी द्वारा बहाकर लाए जाते हैं। इन नगरों का मुख्य कार्य लट्ठों का संग्रह, लकड़ी को आंशिक रूप में संसाधित करना और काटकर विभिन्न आकार के तख्ते बनाना है। इन नगरों में अनेक आरा मिलें होती हैं और कुछ में कागज और कागज की लुगदी बनाने के कारखाने भी होते हैं। कनाडा में ग्रेंडफाल और कार्नरब्रूक तथा भारत में नेपा नगर, काठगोदाम तथा हल्द्वानी काष्ठ नगरों के कुछ उदाहरण हैं।

उत्पादन केन्द्र : उत्पादन के केन्द्र मुख्यत: वे नगर हैं, जहां विशाल पैमाने पर औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन होता है। नगर का आकार दृश्यभूमि और उसका नियोजन मुख्यत: निर्माण उद्योग के आकार-प्रकार पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए पिट्टसबर्ग और जमशेदपुर नगरों में मूलतया इस्पात का उत्पादन होता है, अत: इन नगरों में बड़े-बड़े इस्पात के कारखाने हैं। इन नगरों में धुएं की विशाल मात्रा निकालती हुई कारखानों की ऊंची-ऊंची चिमनियां दूर से ही देखी जा सकती हैं। जिन नगरों में बिजली की वस्तुओं या सूती वस्त्र का उत्पादन होता है वे अधिक साफ-सुथरे दिखाई देते हैं। उत्पादन के नगरों में श्रमिकों के रहने के लिए मकान, बड़े-बड़े गोदाम, वेयर हाऊस, बैंक एवं व्यापार स्थलों की सुविधा होती है। इनके कारखानों को कच्चा माल लाने और वहां से निर्मित माल ले जाने की सुविधाएं एवं यातायात के अच्छे-अच्छे साधन उपलब्ध होते हैं। जमशेदपुर, भिलाई, राउरकेला, अहमदाबाद, बड़ौदा, सूरत, बर्मिंघम, पिट्टसबर्ग, आदि उत्पादन नगरों के कुछ उदाहरण हैं।

वितरण केन्द्र : मंडी या बाजार नगर, पत्तन एवं वित्तीय नगर वितरण केन्द्रों के अंतर्गत आते हैं। इन नगरों का मुख्य कार्य कच्ची या निर्मित्त वस्तुओं का एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण अथवा वितरण करना है।

(i) **बाजार नगर** या मंडी में मुख्यत: दुकानें और व्यापारी होते हैं। इनके अलावा यहां बैंक, कार्यालयों एवं स्टाक एक्सचेंजों तथा बीमा कम्पनियों और अन्य वित्तीय संगठनों के कार्यालय भी होते हैं। हापुड़, मोगा, मुजफ्फर नगर, चंदौसी, मेरठ आदि बाजार नगरों के उदाहरण हैं।

(ii) **पत्तन नगर** विश्व के सबसे महत्वपूर्ण व्यापारिक एवं वितरण केन्द्र हैं। इन नगरों में पत्तन संबंधी सारी सुविधाएं—डॉक, वेयर हाऊस, आयात-निर्यात करने वाली कम्पनियों के दफ्तर आदि एवं सुव्यवस्थित यातायात की सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। टोकियो, हांगकांग, न्यूयार्क, लन्दन, बम्बई, कलकत्ता, सिंगापुर, आदि पत्तन नगरों के कुछ उदाहरण हैं।

(iii) **वित्तीय नगरों** में व्यापार अथवा वस्तुओं के वितरण की अपेक्षा वित्तीय क्रियाएं अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। इन नगरों में मुख्यत: सट्टा बाजार, शेयर के खरीदने-बेचने के केन्द्र, नीलामी घर, बैंक, बीमा कम्पनियां, स्टाक एक्सचेंज, धन का लेन-देन करने वाली समितियां, व्यापारिक एवं ट्रेवल एजेन्सियों के कार्यालय होते हैं। जर्मनी में फ्रंकफर्ट, स्विटजरलैंड में ज्यूरिख,

नीदरलैंड में एमस्टरडम और लेबनान में बेरुत वित्तीय नगरों के कुछ उदाहरण हैं।

विनोदप्रिय नगर : जिन नगरों का प्राकृतिक वातावरण बहुत ही मनोहारी होता है और जिसके कारण पर्यटक वहां बड़ी संख्या में मनोरंजन करने आते हैं, वे विनोदप्रिय नगर कहलाते हैं। विनोदप्रिय नगरों में स्वास्थ्यप्रद खनिज जल के स्रोत, मनोरंजन के लिए समुद्र का सुन्दर किनारा, चढ़ने का आनन्द लेने के लिए ऊंचे पर्वत, हिमानियां या भ्रमण के लिए सुन्दर-सुन्दर दृश्य या स्कैटिंग स्थल हो सकते हैं। विनोदप्रिय नगरों में बहुत से होटल, स्कैटिंग रिंक, स्कैटिंग और पर्वत पर चढ़ने का प्रशिक्षण देने के लिए स्कूल, थियेटर, सिनेमा, नाइट क्लब, बच्चों के खेलने के लिए खुली भूमि और स्मृति उपहार खरीदने के लिए दुकानों की सुविधाएं होती हैं। ये नगर पर्यटकों को बहुत आकर्षित करते हैं। इसलिए इनको पर्यटक केन्द्रों के नाम से पुकारा जाता है। दार्जिलिंग, नैनीताल, मंसूरी, कोवलाय बीच, मियामी बीच, वेनिस आदि विनोदप्रिय नगर के कुछ उदाहरण हैं।

निवास नगर : कुछ नगरों का मुख्य कार्य विशाल शहरी जनसंख्या को निवास-संबंधी सारी सुविधाओं को प्रदान करना है। ऐसे नगर अधिकतर बड़े-बड़े नगरों के सीमान्तों पर उपनगरों, कस्बों या गांव के रूप में होते हैं। फरीदाबाद, शाहदरा, सोनीपत, नरेला, नांगलोई और गाजियाबाद ऐसे ही नगर हैं जो दिल्ली के चारों ओर स्थित हैं।

ऊपर दिऐ गए नगरों के अतिरिक्त बहुत ऐसे बड़े-बड़े नगर हैं जो लगभग सभी प्रकार्य करते हैं। ऐसे नगरों में अनेक प्रकार की क्रियाएं होती रहती हैं। अत: इन नगरों को विविध प्रकार्य के नगर कहते हैं। दिल्ली, लन्दन, न्यूयार्क, टोकियो, पेरिस आदि विश्व के वे बड़े-बड़े नगर हैं जिनके बहुत से प्रकार्य हैं। अत: इन नगरों को किसी विशिष्ट वर्ग में नहीं रखा जा सकता।

नगरीय पदानुक्रम

बस्तियां—मकानों की संख्या, उनमें रहने वाले लोगों और परिवारों की संख्या तथा उपलब्ध सेवाओं के अनुसार विभिन्न आकार की अर्थात छोटी-बड़ी होती हैं। [illegible] पदानुक्रम में पल्ली या छोटा गांव, नगरीय ग्राम, कस्बा, नगर और महानगर में बांटा जाता है।

कुछ मकानों के एक समूह को पल्ली या छोटा गांव कहते हैं और इसमें 100 से अधिक लोग नहीं रहते। पल्ली में बहुत कम सेवाएं उपलब्ध होती हैं। यहां सम्भवत: चाय और आटा-दाल बेचने की एक दुकान हो सकती है। डाकखाना, गिरजाघर, मस्जिद या मंदिर या पंसारी अथवा बिसाती की दुकान पल्ली मे नहीं पाई जाती। वास्तव में पल्ली मे लोग ग्राम में काम करने जाते है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के एक नगरीय ग्राम में 60 से 70 मकान और इमारतें होती हैं। इनमें पेट्रोल पम्प, जलपान गृह, एक या दो पंसारी की दुकानें और एक लिफ्ट आदि को मिलाकर एक छोटा सा संकुल होता है। ऐसा नगरीय ग्राम पल्ली से अधिक बड़ी बस्ती की सेवा करता है।

2500 की जनसंख्या वाली बस्तियों को कस्बा कहते हैं। कस्बे में पल्ली और गांव से अधिक सेवाएं उपलब्ध होती हैं। यहां डाक्टर, दांत के डाक्टर, ड्राई क्लीनर, विभिन्न प्रकार के स्टोर और दुकानें, बैंक, पोस्ट-आफिस आदि की सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। ये सेवाएं पल्ली या नगरीय ग्राम में नहीं मिलती अत: कस्बा इनसे अधिक बड़े क्षेत्र को सेवा प्रदान करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कस्बा वह बस्ती है जो पल्ली और नगरीय ग्राम से अधिक सेवाएं प्रदान करता है।

नगरीय पदानुक्रम में कस्बे से बड़ा नगर, नगर से बड़ा महानगर और महानगर से भी बड़ा सन्नगर होता है। इनका विभाजन या पदानुक्रम जनसंख्या के आधार पर न करके, उनके द्वारा बढ़ते हुए क्रम से दी जाने वाली सेवाओं के आधार पर किया जाता है। सन्नगर व्यापार और वाणिज्य का एक बहुत बड़ा केन्द्र होता है जो विविध प्रकार की सर्वोत्तम सेवाएं प्रदान करता है। इसका सेवा प्रदान करने का क्षेत्र भी बहुत बड़ा होता है।

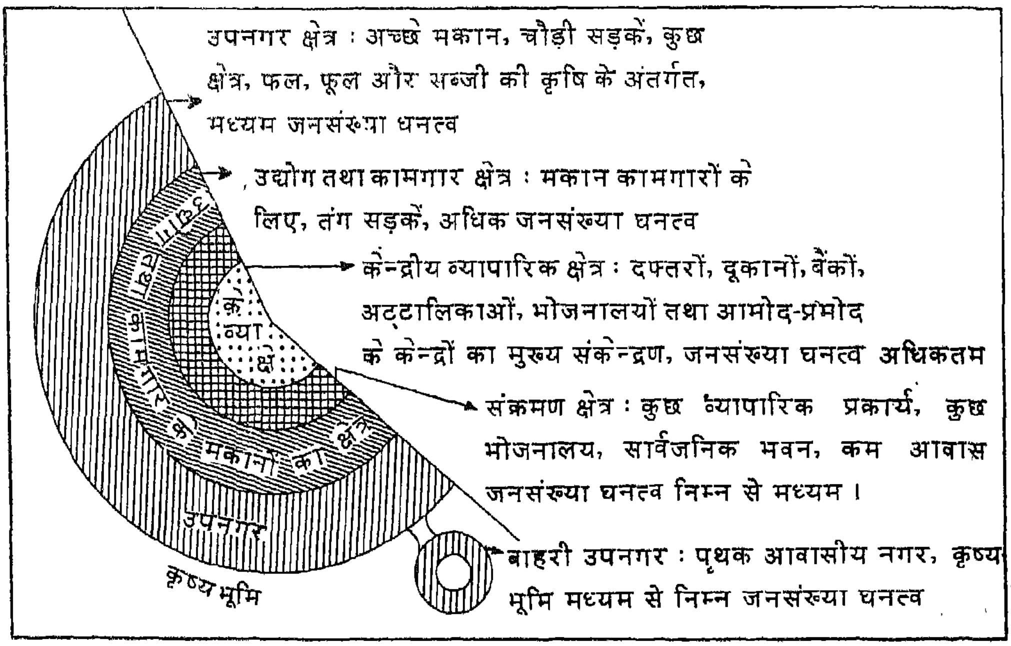
नगरों की संरचना

नगर इमारतों तथा लोगों के अव्यवस्थित समूह

नहीं हैं, वरन् उनमें प्रकार्यात्मक संरचनायें होती है। ये सरचनाएं क्षैतिजतल या स्थानिक विस्तार में इस प्रकार संगठित होती हैं कि वे अलग-अलग कार्य करती हैं। यदि एक क्षेत्र या संरचना का काम वस्तुओं के बेचने और खरीदने के लिए उपयुक्त स्थान प्रदान करना है तो दूसरी संरचना उत्पादन के लिए स्थान देती है, तीसरी शिक्षा और चौथी निवास के लिए प्रर्याप्त सुविधा प्रदान करती हैं। हर नगर का एक केन्द्रीय क्षेत्र होता है, जहां भूमि का मूल्य सबसे ऊंचा पाया जाता है। इस केन्द्रीय क्षेत्र से दूर जाने पर भूमि का मूल्य घटता जाता है। केन्द्रीय क्षेत्र में सर्वाधिक क्रियाएं और भूमि के सबसे ऊंचे दाम होने के कारण यहां रहने के लिए खुले विस्तृत भूभागों की कमी है।

जब हम किसी नगर के संदर्भ में कहते हैं कि नगर का अमुक भाग वाणिज्य और व्यापार का क्षेत्र है, दूसरा निवास का है, तीसरा मनोरंजन का और चौथा उद्योग का है, तो ऐसा कह कर हम नगर के विभिन्न भागों या संरचनाओं का कार्य बताते हैं। नगर के ये सभी प्रकार्यात्मक क्षेत्र एक दूसरे के किनारे स्थित हैं और एक क्षेत्र से दूसरे में जाने पर एक क्षेत्र का कार्य शनै: शनै: समाप्त होकर दूसरे में विलीन हो जाता है।

विभिन्न नगरों के खाके या विन्यास के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक नगर में एक केन्द्रीय क्षेत्र होता है जिसमें मुख्यत: नगर का मध्यवर्ती व्यापारिक क्षेत्र शामिल होता है। दूसरा बाहरी क्षेत्र है जहां कई उप-नगर और क्रय केन्द्र विकसित हो रहे हैं (चित्र 34)। आंतरिक और बाहरी क्षेत्रों के बीच एक ऐसा मध्यवर्ती क्षेत्र होता है जिसकी सीमाएं निर्धारित नहीं की जा सकती, परन्तु इस क्षेत्र में परिवर्तन की क्रिया सबसे अधिक होती है। इससे ज्ञात होता है कि नगरों में संकेंद्री संरचना होती है। **प्रो० बरजिस, ई० डब्लू०** के मतानुसार नगरों में पांच संकेंद्रीय क्षेत्र होते हैं। सबसे अन्दर के क्षेत्र को केन्द्रीय व्यापारिक क्षेत्र कहते हैं। यह नगर का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है। इसमें बड़ी-बड़ी दुकानें, कार्यालय, बैंक, सिनेमाघर, होटल और बहुमंजिलीय इमारतें पाई जाती हैं। यातायात की प्रमुख रेखाएं यहां आकर



चित्र 34 : नगरों के प्रकार्यात्मक क्षेत्र

मिलती हैं (चित्र 34)।

केन्द्रीय व्यापारिक क्षेत्र के चारों ओर एक संक्रमण क्षेत्र पाया जाता है। इसमें आवासीय रूप विलुप्त होता है और उसका स्थान व्यापार तथा हल्के उद्योग लेते हैं। यह नगरीय दुर्दशा, किराए के मकानों, गन्दी-बस्तियों और न्यूनतम सेवाओं का क्षेत्र है।

संक्रमण क्षेत्र के बाद कामगार के मकानों का क्षेत्र आता है, जिसमें मकान एक दूसरे से बिलकुल सटे हुए होते हैं और इनमें नगर के श्रमिकों के रहने के लिए पर्याप्त जगह होती है (क्षेत्र 3)।

क्षेत्र 4 के अंतर्गत नगर के सीमांतों की बस्तियां और उपनगर आते हैं, जहां मध्यम वर्ग के लोग रहते है। यहां मकान पर्याप्त खुले, हवादार और दूर-दूर होते है। यहां दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्रय-केन्द्र विकसित होते दिखाई पड़ते हैं।

क्षेत्र 5 नगर का बिलकुल बाहरी सीमांत है जहां केन्द्रीय व्यापारिक क्षेत्र पूंजीपतियों और अमीर लोगों के वैभवशाली मकान हैं और जहां वे रोज अपने-अपने काम पर निजी वाहनों द्वारा आते-जाते रहते हैं। इस क्षेत्र में नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों का मिलन होता है। नगरीकरण की वृद्धि के परिणामस्वरूप यहां छोटे-छोटे ग्रामीण नगर विकसित हो जाते हैं।

नगर के ये विभिन्न क्षेत्र स्थायी नहीं हैं, वरन् वे एक-दूसरे पर अपना प्रभाव डालकर बदलते रहते हैं। नगर का जैसे-जैसे विकास होता जाता है, सभी क्षेत्र बाहर की ओर बढ़ते रहते हैं।

नगर के बढ़ने के साथ पेयजल, यातायात, घरों के कचरे को फेंकने गन्दी बस्तियों, जल, वायु और शोर प्रदूषण आदि से संबंधित समस्याएं भी बड़ी तीव्रता से बढ़ती हैं और ये नगरवासियों के स्वास्थ्य और उनकी कार्यक्षमता पर बुरा प्रभाव डालती हैं। इन समस्याओं को सुलझाने के लिए नगर प्रशासन भारी-भारी टैक्स लगाता है, जिससे नगरीय जीवन बहुत महंगा हो जाता है और वह अनेक कुंठाओं से भरने लगता है।

ग्रामीण बस्तियां और उनके प्रकार

ग्रामीण बस्तियां उन लोगों का निवास-स्थान है जो अपनी जीविका के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में भूमि पर पूर्णतया निर्भर रहते हैं। अतः ग्रामीण बस्ती एक प्रकार की कृषीय कार्यशाला है जिसका भूमि से गहरा संबंध है। ग्रामीण बस्ती का आकार और इसका स्वरूप, काम के प्रकार, कृषि तकनीकों और भूमि उपयोग के अनुसार होता है। किसी ग्रामीण बस्ती की स्थापना और उसके विकास में पेय जल की पूर्ति, ऊंची भूमि, बाढ़ सीमा से ऊपर शुष्क क्षेत्र, मकान बनाने की सामग्री की उपलब्धता एवं प्रतिरक्षा संबंधी स्थिति आदि विभिन्न कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

ग्रामीण बस्तियां दो प्रकार की होती हैं, (1) संहत बस्तियां और (2) परिक्षिप्त बस्ती।

संहत बस्तियां : संहत बस्तियां मुख्यतः उपजाऊ मैदानों और नदी घाटियों में विकसित होती हैं। यहां उत्पादन इतना अधिक होता है जिस पर बड़ी जनसंख्या का भरण-पोषण आसानी से हो जाता है। इस प्रकार की बस्तियां किसी केन्द्रीय स्थल के चारों ओर विकसित होती हैं और बाहर की ओर बढ़ती रहती हैं। मकान एक दूसरे से सटे हुए और उनमें रहने का स्थान बहुत कम होता है और गलियां बहुत संकीर्ण होती हैं। संहत बस्तियों का आकार निकटवर्ती क्षेत्रों में पाए जाने वाले साधनों की प्रकृति और उनकी मात्रा पर निर्भर करता है। जब भूमि-साधन कम और अच्छी किस्म के नहीं होते तो बस्तियां अर्थात् गांव छोटे होते हैं। उदाहरण के लिए मरुस्थलों के सीमांतों पर एक संहत बस्ती में पांच या छः झोंपड़ियां पाई जाती हैं। इसके विपरीत अति उपजाऊ भूमि पर बड़ी-बड़ी संहत बस्तियां विकसित होती हैं और उनकी जनसंख्या 500 से 1000 तक पाई जाती हैं। भारत के उत्तरी विशाल मैदान में बड़े-बड़े संहत गांवों का बाहुल्य है। संहत बस्तियों में लोग अपनी रक्षा हिंसक पशुओं और डाकुओं से करने के साथ खेती के विभिन्न कार्यों में एक दूसरे को सहयोग देते हैं। फसल को बोते और काटते समय वे एक-दूसरे की सहायता देते हैं, जिससे सारा काम समय पर समाप्त हो जाए। बाढ़ अथवा किसी अन्य दैवी प्रकोप के समय मिल-जुलकर समस्याओं का मुकाबला करते हैं। संहत बस्तियों के कुछ अवगुण भी हैं। इनमें प्रायः गंदगी बहुत होती है और जल

निकास का ठीक प्रबंध नहीं होता, जिससे बस्तियों के गड्ढे और नालियां कीचड़ तथा पानी से भरी रहती हैं। ये दशाएं ग्राम-बस्तियों के स्वास्थ्य और उनकी कार्य-क्षमता पर बुरा प्रभाव डालती हैं।

परिक्षिप्त बस्ती : परिक्षिप्त बस्ती ऐसे क्षेत्रों में पाई जाती हैं जहां किसान को अपने खेत पर रहना आवश्यक होता है। ऐसी बस्तियां उच्च भूमि के क्षेत्रों में पाई जाती हैं, जहां किसान का मुख्य व्यवसाय पशुओं को पालना है। विरल जनसंख्या के क्षेत्रों में जहां खेत बहुत बड़े-बड़े होते हैं, वहां परिक्षिप्त बस्तियाँ पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए मध्य आस्ट्रेलिया, उत्तरी कनाडा और पश्चिमी संयुक्त राज्य में परिक्षिप्त बस्तियां अधिकता से पाई जाती हैं।

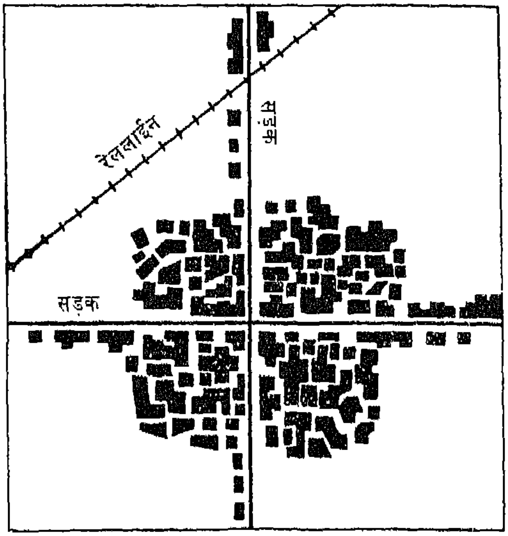
परिक्षिप्त बस्तियां केवल विकसित देशों की ही विशेषता नहीं है। एशिया और अफ्रीका के देशों में भी ऐसी बस्तियां पाई जाती हैं। अफ्रीका के दक्षिणी और पूर्वी भागों में यूरोपीय लोगों ने बड़े-बड़े बागान और रैंच लगाए हैं जहां परिक्षिप्त बस्तियां मिलती हैं। कभी-कभी अत्यधिक जनसंख्या भी परिक्षिप्त बस्ती के विकास में सहायक होती है। यदि गांव के कुछ लोग अन्यत्र कहीं रहने के लिए नयी-नयी बस्तियां बनाते हैं तो ये नयी बस्तियां ही परिक्षिप्त बस्तियां कहलाती हैं। इसी प्रकार लोगों के दलदली क्षेत्रों या उच्च भूमियों के सीमांतों पर बसने से ऐसी बस्तियां विकसित हो जाती हैं।

संहत और परिक्षिप्त बस्तियों के वितरण में बहुत अंतर है। संसार के अधिकांश क्षेत्रों में संहत बस्तियां पाई जाती हैं। इसके कई कारण हैं। पहला, मनुष्य अकेलापन पसंद नहीं करता और वह मिल-जुलकर रहना चाहता है। दूसरा, कृषि के कार्यों में बहुत से लोगों का मिलजुलकर काम करना ज्यादा लाभकर होता है। तीसरा हिंसक पशुओं और डाकुओं आदि से प्रतिरक्षा हेतु साथ-साथ रहना जरूरी है। चौथा, अधिकतर गांव उन क्षेत्रों में स्थापित किए गए जहां भूमि वनों से साफ की गई। प्रारंभ से ऐसी साफ की गई भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में थी। अत: बस्तियां संहत रूप में स्थापित हुईं। अत: संहत बस्तियों का जन्म अति प्राचीन काल से हुआ है।

ग्रामीण बस्तियों के प्रतिरूप

ग्रामीण बस्तियों के प्रतिरूपों में बड़ी विविधता है। वे एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदलते रहते हैं। ग्रामीण बस्तियों के प्रतिरूपों को पांच श्रेणियों में बांटा जाता है।

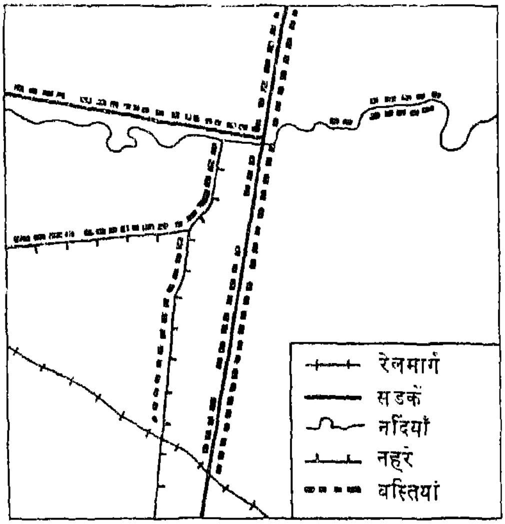
1. आयताकार प्रतिरूप
2. रैखिक प्रतिरूप
3. त्रिभुजाकार प्रतिरूप
4. तारक प्रतिरूप
5 गोलाकार प्रतिरूप



चित्र 35 : ग्रामीण बस्तियों का आयताकार प्रतिरूप

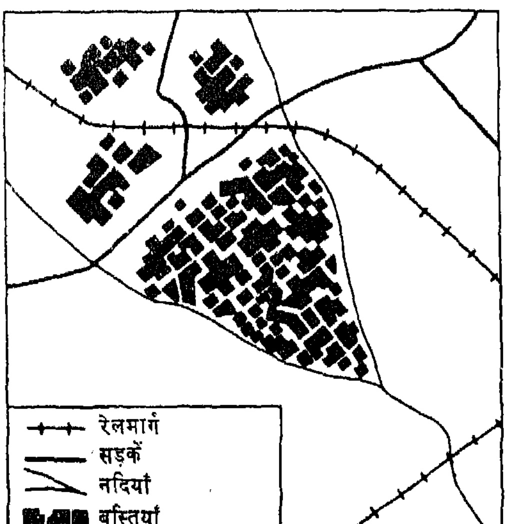
ग्रामीण बस्तियों के विभिन्न प्रतिरूपों को चित्र 35 से 39 में प्रदर्शित किया गया है। ग्रामीण बस्तियों का सबसे सामान्य प्रतिरूप आयताकार होता है। इस आकृति में गलियां मुख्यत: सीधी मिलती हैं और वे एक दूसरे को समकोण पर काटती हैं। भारत के उत्तरी मैदान में गांव मुख्यत: सड़कों के चौराहों पर विकसित होते हैं, वे इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं (चित्र 35)।

ग्रामीण बस्तियों के रैखिक प्रतिरूप में मकान सड़कों रेलमार्गों या नदियों के किनारे अथवा किसी घाटी



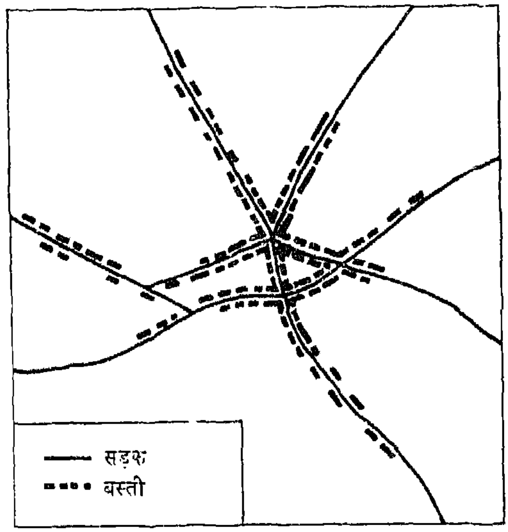
चित्र 36 : ग्रामीण बस्तियों का रैखिक प्रतिरूप

में बाढ़ सीमा के सहारे अथवा समुद्र तट के सहारे बने होते हैं (चित्र 36)।

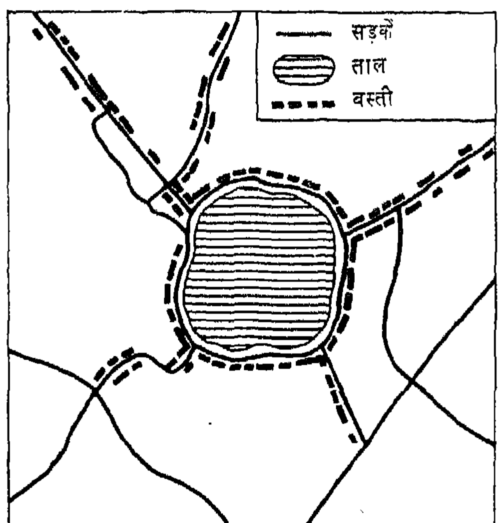


चित्र 37 : ग्रामीण बस्तियों का त्रिभुजाकार प्रतिरूप

ग्रामीण बस्तियों का त्रिभुजाकार प्रतिरूप मुख्यतः उन क्षेत्रों में विकसित होते हैं जहां बस्तियां दो नदियों के संगम पर स्थापित की जाती हैं। ऐसी स्थिति में गांव का पार्श्व प्रसार दोनों नदियों तथा उनके मिलन बिन्दु



चित्र 38 : तारक आकृति के ग्राम



चित्र 39 : गोलाकार प्रतिरूप के ग्राम

द्वारा प्रतिबन्धित हो जाता है। अतः यह दोनों नदियों के बीच की भूमि पर अन्दर की ओर बढ़ता है (चित्र 37)।

तारक आकृति के ग्राम में मकानों का विकास विभिन्न दिशाओं में होता है। इस प्रकार का प्रतिरूप ग्रामों और कस्बों में समान रूप से पाया जाता है। बस्तियों में तारक आकृति का विकास उस समय होता है जब मकानों का निर्माण अभिसरण सड़कों के किनारे किया जाता है। (चित्र 38)।

ग्रामीण बस्तियों की गोलाकार आकृति का विकास किसी तालाब या झील के चारों ओर मकानों के निर्माण के परिणामस्वरूप होता है। प्रारंभ में गांवों की आकृति अर्धगोलाकार होती है, बाद में मकान जलीय भाग के चारों ओर बनने शुरू हो जाते हैं और कालान्तर में गांव गोलाकार प्रतिरूप प्राप्त करता है (चित्र 39)।

ग्रामीण बस्तियों के प्रकार्य

अधिकांश ग्रामीण बस्तियों का प्रकार्य कृषीय होता है। एकाकी बस्ती प्राय: खेतों पर होती हैं, परन्तु गांव का मुख्य कार्य ग्रामीण जनसंख्या को निवास स्थान प्रदान करना है। गांव प्राय: स्वयं एक छोटा सा क्रय-केन्द्र होता है। इसमें एक या दो दुकानें तथा पोस्ट आफिस भी होते हैं। ग्रामीण जनसंख्या का यह महत्वपूर्ण सामाजिक केन्द्र होता है। बहुत से गांव प्रशासनिक प्रकार्य भी करते हैं। ग्राम पंचायतों का छोटे पैमाने पर प्रशासनिक कार्य होता है। जो गांव झीलों, नदियों या समुद्रों के किनारे बसे होते हैं उनका प्रकार्य मछली पकड़ना होता है और वनीय क्षेत्रों में स्थित ग्रामों का प्रकार्य लकड़ी काटना होता है। मछली पकड़ने और लकड़ी काटने के ग्राम बहुत कुछ कृषि ग्रामों के समान होते हैं।

अभ्यास

समीक्षात्मक प्रश्न

1. ग्रामीण और नगरीय बस्तियों की व्याख्या कीजिए और उनमें अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. नगरों का प्रकार्यात्मक वर्गीकरण बताइए।
3. नगर जनसंख्या और क्षेत्रफल में क्यों बढ़ रहे हैं? नगरों की तीव्र गति से वृद्धि होने के परिणामस्वरूप क्या-क्या समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं?
4. ग्रामीण बस्तियों के प्रकार एवं उनके विभिन्न प्रतिरूप बताइए। संहित एवं परिक्षिप्त बस्तियों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. संसार के शुष्क, अतिशीत, अति आर्द्र एवं पर्वतीय भागों की जनसंख्या विरल क्यों है?
6. मानसून एशिया और उत्तर-पश्चिम यूरोप के प्रदेशों में ही संसार की सबसे घनी जनसंख्या क्यों है?

7. विश्व में जनसंख्या के असमान वितरण के क्या-क्या कारक हैं ? अपने उत्तर को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
8. विश्व की जनसंख्या वृद्धि का वर्णन करते हुए भारत की जनसंख्या परिस्थिति पर विशेष प्रकाश डालिए।
9. किसी देश में द्रुतगति से जनसंख्या बढ़ने पर वहां के आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

ज्ञात कीजिए

(i) 1971 की जनगणना के अनुसार भारत के सभी राज्यों की जनसंख्या मालूम कीजिए और सभी राज्यों के नाम जनसंख्या के बढ़ते हुए क्रम से लिखिए।

(ii) विश्व के दस सबसे घने और दस सबसे विरल आबाद देशों के नाम मालूम कीजिए।

मानचित्र कार्य

संसार के रूपरेखा मानचित्र में विश्व की घनी जनसंख्या एवं विरल जनसंख्या वाले क्षेत्रों को दर्शाइए।

अतिरिक्त अध्ययन

1. डिकंसन **ह्यूमन इकोलोजी**, (रोनल प्रेस) न्यूयार्क 1950
2. जोन्स, इमरी, **ह्यूमन ज्योग्राफी**, लन्दन 1972
3. मेयर, एच० एम० एंड कोहन, सी० एफ, **रीडिंग्स इन अरबन ज्योग्राफी**, शिकागो, 1959
4. मैकगी, टी० जी०, **दि सिटी इन साउथ ईस्ट एशिया**, (बेल), 1967
5. परपिलन, ए० वी०, **ह्यूमन ज्योग्राफी**, लन्दन, 1971
6. सैलीस, ए० ई०, **दि ज्योग्राफी ग्राफ टाउन्स** (हरचिनसन), 1960
7. स्टैम्प, एल० डी०, **अवर डिवोलपिंग वर्ल्ड** (फेवर एवं फेबर) 1960
8. यंग, के०, **पापुलेशन प्रोबलम्स**, शिकागो, 1954
9. जेलिस्की, डब्लू, **प्रोलोंग टू पापुलेशन ज्योग्राफी**, (प्रिंटिसहाल), 1966